बालबख्श-राजपूत-चारण-पुस्तकमाला—८

प्रकाशक—
काशी नागरीप्रचारिणी सभा,

मुद्रक:—ना० रा० सोमण,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

निवेदन

जयपुर राज्य के अंतर्गत हणोतिया ग्राम के रहने वाले बार-हट-नृसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालाबख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ जिसमें हिंदी साहित्य के भांडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिये रक्षित हो जायँ। इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवंबर सन् १९२२ में ५०००) रु० काशी नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२३ में २०००) रु० और दिए। इन ७०००) रु० से ३।।) वार्षिक ब्याज के १२०००) अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद कर ट्रेजरर, चैरिटेबल एंडाउमेंट फंड्स, युक्तप्रांत के पास जमा कर दिए गए हैं। इनकी वार्षिक आय ४२०) रु० होगी। बारहट बालाबख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की बिक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायतार्थ और कहीं से मिले उससे "बालाबख्श-राजपूत-चारण-पुस्तकमाला" नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्यग्रंथ प्रकाशित

किए जायँ और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्यात आदि छापे जायँ जिनका संबंध राजपूतों अथवा चरणों से हो। बारहट बालाबख्शजी का दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है। उसकी धाराओं के अनुकूल काशी नागरीप्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है।

भूमिका

'रघुनाथ रूपक' डिंगल भाषा के साहित्य में एक अत्यंत उपयोगी और प्रामाणिक रीति-ग्रंथ है। डिंगल भाषा के रीति-ग्रंथ, इस भाषा के परम मान्य आचार्यों के बनाए हुए, बहुत कम मिलते हैं। जो हैं भी उनको चारण लोग या तो छिपाते हैं या सहसा दूसरों को बताना या सीखना पसन्द ही नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में इस ग्रंथ का सुलभ होना एक देन ही समझना चाहिए। धन्य है स्व० कविवर जियालालजी जिन्होंने बहुत परिश्रम और खोज के साथ इस ग्रंथ की टीका करके, संवत् १९५६ वि० में स्व० पं० कृष्णलालजी की देख-रेख में कृष्णगढ़ (राजपूताना) के "शार्दूलशरण छापाखाना" में छपवाया। अब इसकी छपी प्रतियाँ भी दुर्लभ हो चलीं। सुतरां हम लोगों ने इसका पुनः संपादन करके अन्य हस्त-लिखित प्रतियों से मिलान करके टीका को भी ठीक करके, इस "बालाबक्स राजपूत चारण पुस्तक माला" में प्रकाशित कराना आवश्यक और उचित समझा।

इस संपादन में जयपुर के सुप्रसिद्ध अयाचक कविया बारैठ श्रीमुरारिदानजी (साँड़ियाँ का टीबा वालों) ने दो हस्तलिखित प्रतियाँ दीं। उनके मिलान से मूलपाठ में कहीं कहीं अंतर निकले। उनसे संशोधन में सहायता मिली और मुद्रित की एक प्रति लाला श्रीनारायणजी * कायस्थ ने, जो जयपुर में डिंगल भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं, दी थी और उन्होंने टीका में भी अनेक स्थलों पर बहुत सहायता दी। दूसरी मुद्रित प्रति अनेक शास्त्र-निष्णात और भाषाओं के विद्वान् पंडित त्र्यंबकरामजी * (ध्रांगध्रा, काठियावाड़-निवासी) ने दी और इसमें कई

* शोक है कि ये दोनों पुरुष अब संसार में नहीं हैं—लेखक।

संकेत बताए। इस ग्रंथ के संशोधन और टीका का काम अर्थात् आद्योपांत प्रायः समग्र संपादन का काम साहित्य-विशारद बाबू महतावचंदजी खारैड़ का है; और इसकी टीका लिखने में संपादक को बहुत कुछ सहायता उक्त बारहट मुरारिदानजी से मिली है। अनेक कठिन स्थलों का अर्थ और भावार्थ बताने में जयपुर के नामी चारण कवि बारहट श्रीहिंगलाजदानजी सेवापुरा वालों ने सहायता की है। परतु प्रधान तो जियालालजी का संस्करण ही है, जिसके विद्यमान हुए बिना आज इतनी और अच्छी टीका कदापि नहीं हो सकती थी। अतः इस ग्रंथ के संपादक और उनके सहकारी उपर्युक्त सर्व महानुभावों के अत्यत कृतज्ञ हैं । उनकी सहायता से डिंगल का यह बहुमूल्य ग्रंथ इस सटीक रूप में फिर प्रकाशित होता है और अपने भावुकों और इच्छुकों को संतुष्ट करने में समर्थ होता है।

ऊपर कविवर जियालालजी का नामोल्लेख करके ही हम नहीं ठहर सकते हैं। पाठको को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ये जियालालजी महाकवि वृंद के वंशज थे। वृंदजी भारतवर्ष के नामी कवियों में गिने जाते हैं। 'मिश्रबंधु विनोद' ने इनको 'तोष' की श्रेणी में रखकर संतोष कर लिया सो ठीक नहीं किया। वृंदजी के वंशजों ने उनका हाल कुछ खोज के साथ, "पारीक" पत्र में नवंबर सन् १९२६ में तथा "शाकद्वीपीय ब्राह्मण बधु" वर्ष ४ अंक १ में दिया है। विनोद के कर्त्ता वहाँ देखने की कृपा करके इस महाकवि को यथार्थ मानदान देने की चेष्टा करें तो न्याय होगा। जियालालजी के संबंध में लिखने के पूर्व अति संक्षेप में वृंदजी का वृतांत अप्रासंगिक न होगा; क्योंकि इतने महिमा-प्राप्त पूर्वज के वृत्तांत के बिना वंशज का हाल अभीष्ट गौरव न दिखा सकेगा, यद्यपि जियालालजी स्वयं अच्छे कवि थे और उन्होंने कई ग्रंथ बनाये और संशोधन, संपादन किए, जिनमें से एक "नागर समुच्चय" भी है जिस पर स्व० बाबू राधाकृष्ण-

दासजी ने पांडित्यपूर्ण भूमिका लिखी है और जो 'ज्ञानसागर प्रेस' में संवत् १९५५ में पं० कृष्णलालजी के प्रबंध से छपा था।

महाकवि वृंदजी

महाकवि वृंद का असली नाम वृंदावन (दास) था, जिसको कवि ने अपने रचना-कलाप में वृंद ही रखा। ये शाकद्वीपी (मग) भोजक वा सेवक ब्राह्मण थे। इनके पिता 'रूपजी' सोलहवीं शताब्दी में बीकानेर से मेड़ता (जोधपुर राज्य) में आए। पिता की प्रौढ़ आयु में देवी के वरदान से यह महामहिम कवीश्वर-पुत्र मिति आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, गुरुवार, संवत् १७०० विक्रमी में जन्मा था। इनमें बाल्यावस्था से ही शुभ लक्षण विद्यमान थे। इन्होंने प्रथम पिता से, फिर काशी में 'तारा' नामी पंडित से पढ़ा। गुरु-कृपा से सरस्वती का अनुष्ठान किया, जिससे साक्षात् सिद्धि प्राप्त हो गई। भगवती इनकी रक्षा करती थीं। मेड़ता के कवि माधोदास ने * 'शक्ति भक्ति प्रकाश' में कहा है—"पति राखी मेड़ता के वासी कवि वृंद की।" जोधपुर के महाराज श्री बड़े जसवंत-सिंहजी ने वृंदजी को भूमि आदि देकर सत्कार किया था। ये डिंगल भाषा के भी अच्छे कवि थे। औरंगजेब बादशाह के दरबार में भी इनकी कदर हुई थी। इन्होंने "पयोनिधि पैरयौ चाहै मिसरी की पुतरी" समस्या पर दो कवित्त कहे तब बादशाह ने इनका बड़ा सत्कार किया था। बादशाह ने इनको अपने शाहजादे अजीमुश्शान के पास रखा। ये उनके साथ अनेक देशों में गए और अनेक ग्रंथ बनाए। म० जसवंत सिंहजी के मरने पर बादशाह औरंगजेब ने जोधपुर के मंदिर तुड़वाए और जोधपुर पर चढाई की, तब वृंदजी ने कई कवित्त

---

* ये माधवदास बाराय कायस्थ मुंशी थे। इन्हीं की बनाई प्रसिद्ध 'करुणा-बत्तीसी' है, जो इन्होंने आपत्काल में लिखी थी और उससे मुक्त हुए थे।

कह ललकारा था। उन्हीं में से अंतिम पाद यह है—"राजा जसवंत जू के आयु बल खूटत ही, खूट गयो खूनी को खजानो पातिशाही को।"

संवत् १७३८ में वृंद कवि कृष्णगढ़ के महाराजा श्रीमानसिंहजी द्वारा सम्मानित हुए। यही नहीं, वहाँ के महाराजाओं ने इनको ऐसा पकड़ा कि संवत् १७६४ से ये वहीं जा बसे और इन्होंने आयु के शेष दिन वहीं बिताए। इसीसे इनके वंशज इस कृष्णगढ़ के ही कहलाए और अब भी यहीं हैं।

राजा बादशाहों से अति मान प्रतिष्ठा पाकर, अनेक ग्रंथ और फुटकर रचनाएँ बनाकर, अच्छी आयु पाकर, संवत् १७८० वि० में कृष्णगढ़ में, मिति भादों बदी अमावस्या, रविवार को यह हिंदी का रवि (वृंद कवि) अस्त हो गया। वृंदजी के ग्रंथ इस प्रकार जाने गये हैं:—

(१) भाव पंचाशिका—स्थान औरंगाबाद में—संवत् १७४३ में।

(२) शृंगार-शिक्षा—स्थान अजमेर में—संवत् १७४८ में।

(३) यमक-सतसई—स्थान यात्रा में—संवत् नहीं दिया।

(४) पवन-पचीसी—स्थान यात्रा में—संवत् नहीं दिया।

(५) हितोपदेशाष्टक—स्थान यात्रा में—संवत् नहीं दिया।

(६) भाषा हितोपदेशक—ढाका (बंगाल) में—संवत् १७५६ में।

(७) वृंद-विनोद-सतसई—ढाका (बंगाल) में-संवत् १७६१ में।

(८) वचनिका-स्थान—किशनगढ़ का चंपूरूप में इतिहास—किशनगढ़ में—संवत् १७६४ में।

(९) सत्य स्वरूप रूपक (सुलतानीजंग—स्यात् रूपसिंहजी का इतिहास)—स्थान अज्ञात—संवत् १७६४ में।

(१०) फुटकर कविताएँ, चित्रकाव्य, अंत्याक्षरी, दोहे—हजारों की संख्या में बनाए, जो इनके वंशजों के पास विद्यमान हैं।

'सत्य स्वरूप रूपक' में स्पष्टवक्ता के गुण ने बादशाह से इनको

"सच्ची कहने वाला कविराज" की पदवी दिलाई थी। इन्होंने 'वचनिका' को अपने पुत्र 'वल्लभजी' द्वारा महाराज को सुनवाया तब इनको जागीर मिली जो अद्यापि इनके वंशधर भोग रहे हैं। वृंदजी का हिंदी साहित्य में बड़ा उच्च स्थान है। ऐसे महाकवि के वंश में कवि जियालालजी हुए हैं। वृंदजी से इनकी वंशपरंपरा इस प्रकार है:—

कवि रूपजी के पुत्र कवि वृंदजी। वृंद के दो पुत्र हुए—१-सुकवि वल्लभ, २-कविराम। कविराम के दो पौत्र थे—१-साधुराम, २-दौलतराम। दौलतराम के चार पुत्र थे। उनमें अखैराज के हंसराज हुआ और दूसरे पुत्र मगनीराम के पौत्र जियालाल हुए।

कवि जियालालजी ने कई रचनाएँ की हैं। ये कविता मे अपना नाम 'जय' रखते थे। इनके बनाए ग्रंथ ये हैं:—'प्रतिष्ठा प्रकाश', 'छप्पनभोग चंद्रिका पूर्वार्द्ध', 'कविसार समुच्चय', 'मगशिष भाष्य' इत्यादि। इन्होंने मंछ कवि कृत 'रघुनाथरूपक' की टीका की भी थी। ये कृष्णगढ़ राज्य के 'इतिहास विभाग' के अध्यक्ष थे। इन्हीं के परिश्रम से कृष्णगढ़ में इतिहास-कार्य आरंभ हुआ। इनको 'प्रतिष्ठा प्रकाश' बनाने पर 'हाथी सिरोपाव' का संमान मिला था। भूतपूर्व कृष्णगढ़-नरेश महाराज श्रीमदनसिंहजी जब योरोपीय युद्ध से लौट आए तब इनको 'काव्यालंकार' की पदवी मिली थी। इन्होंने भक्त-शिरोमणि महाराजा सामंतसिंहजी, उपनाम श्रीनागरीदासजी के समस्त ग्रंथों का राजाज्ञा से संपादन करके 'नागर समुच्चय' के नाम से, प्रकाशित कराया था, जो भाषा साहित्य में एक गणना के योग्य 'क्लासिक' (Classic) पुस्तक है। वैद्यक शास्त्र में भी जियालालजी की गति थी। आप पर कृष्णगढ़ के बड़े महाराज जवानसिंहजी बहुत प्रसन्न रहा करते थे। सोमयाग में कविजी ने बहुत काम किया था। निदान जियालालजी कवि किशनगढ़ के एक चमकदार रत्न थे।

इन्होंने "रघुनाथरूपक" की टीका के अंत में महाकवि वृंदजी

की डिंगल कविता दी है। वह अति सरस और ओजस्विनी है। उसे हम पाठकों के रंजनार्थ यहाँ उद्धृत किए बिना नहीं रह सकते।

त्रकूट वंध गीत

दल दिखण मिल दिल्ली दलां। वध वेध खेद दुहूँ वलां॥
धर लियण धूपट दियण धस मस, रूक रथ राजान॥
अवरंग संगर आहुरे। फव फौज गज धज फरहरे॥
धर फसर हैवर धूज धर। मद झरर कुंजर सिर चमर॥
नर निजर नाहर डर निडर। तन पहर बगतर छिलम छर॥
हर समर हसवर कस कमर। धर सरध सर धर कर सिफर॥
बद कँवर बीरत बान॥१॥

अणभंग पौरस ऊलसे। अहराण अरि सिर ऊससे॥
धुव रूप बंस असंक धारण, धींग दोमज धीर॥
त्रंमाल नोबत त्रत्रहे। गण भूत भैरव गह गहे॥
वठ नाल अरड़ड़ गज गरड़। नड़ अनड़ घड़ हड़ भड़ निबड़॥
छुट बाँण छड़ छह तूट छड़। अस उरड़ अड़ वड़ घूम घड़॥
झड़ त्रिझड़ ओझड़ झूम झड़। धर कीजवे हड़ धार घड़॥
बड़ बिरच राजड़ वीर॥२॥

कुल किसन कलहण कोपियो। अँग रंग अदभुत ओपियो॥
रिम राह वाह अथाह रिमहर, जोध से रजवांण॥
गह पूर गय घड़ घोडणों। मन मेल हथ थट मोडणों॥
घण बरण रण बण सघण घँण। खग खिवण छँण छँण तीर छण॥
जुध जुड़े जँण जँण दूठ जँण। हुय बँण हँण हँण मच गहँण॥

घण दिखण दपटण रोस घॅण । किय कमध तिण खिण दुयण कॅंण ॥
रण मॉन तॅंण महरॉण ॥३॥

भाराथ लख दळ भंजणों । गह फौज मोजॉ गंजणों ॥
जगमाळ भारह माल जेहीं, बीर हर बानैत ॥
अस पत्त छळ बळ आयरे । पिसणॉ पछाड़े पाधरे ॥
खग बाज खड़ खड़ खाट खड़ । तड़ तिंड़ तड़ तड़ ताड़ तड़ ॥
बध बड़ड़ ऊबड़ कंध कड़ । लुथ लुत्थ लड़ थड़ प्रॉण पड़ ॥
जुख ग्रीध झड़ फड़ अंत अड़ । हस बीर हड़ हड़ भॉज हड़ ॥
जॅंण जुद्ध धूहड़ जैत ॥४॥

गीत सपंखरो

मचे दिलीरां चकत दिली दिसां धम चक्कां मच्चे ।
सॅंभाले कायरॉ घरॉं सूरॉ चढ़े सोह ॥
धवैं नाला भड़ा भड़ी घड़ा घड़ी धूजै धरॉ ।
छूटै बाणां गोळी रामचंगियां छछोह ॥ १ ॥
तड़ा तड़ी तठै बगतरॉं तणी तूटै कड़ी ।
धमां धमी ऊठै घणॅं सेलांरा धमोड़ ॥
झड़ा झड़ी जठै तरवारियॉ थी पड़ै झीक ।
रमै खगॉं महाराजा राजसी राठौड़ ॥ २ ॥
आजम का कटकॉं झटकॉं तणॉ बॉड छड़ै ।
जोरावरां पाड़े की अजीम तणीं जीप ॥
बकारे इकारे हाथी भिड़ाये बरच्छी बोह ।
पछाड़ियो हाड़ो राम मांन रै महीप ॥ ३ ॥

घसे जठी तठी घणाँ वैरियाँ विधूँसे धीठाँ।
चाचराँ घपाये धरा रङ्गी घणू चोळी ॥
पाड़े घणाँ उमीराँ हमीराँ होदा बिचाँ पाड़े।
रूपहरै कीधी फतै वैरियाँ विरोळ ॥ ४ ॥

इनको उद्धृत करने के पूर्व कवि जियालालजी ने यह नोट दिया है:—
"हमारे प्रपिता 'वृंद-सतसई' के कर्ता कवि वृंदजी भी डिंगल कविता करते थे जिनका बनाया हुआ यह 'त्रकूट वध' गीत कृष्णगढ़ महाराजा श्रीराजसिंहजी का 'सुलतानी जंग' अर्थात् आजमशाह और मोअज्जम शाह में युद्ध हुआ, इसका भाव है; और जैसा कि ऊपर दरसाया गया है, इस युद्ध का वृंदजी ने 'सत्यरूपक' नामक ग्रंथ वनाया। यह युद्ध धौलपुर के 'जाजुवा' नामक मैदान में संवत् १७६४ में हुआ।"

यह युद्ध दिल्ली के तख्त के लिए औरंगजेब के पुत्रों, वहादुरशाह (मुअज्जमशाह) और आजमशाह में हुआ था। और म० राजसिंहजी आजमशाह की ओर से हरोल होकर लड़े थे। उन्होंने इस युद्ध में विजय पाई थी। इस युद्ध में आजमशाह (जिसके पक्ष में स० जयसिंहजी और कई राजा नवाव थे) अपने पुत्र वेदार बख्त सहित मारा गया। और बहुत से राजा और नवाब भी मारे गए। इनमें कई राजसिंहजी के हाथ से मारे गए और राजसिंहजी खुद भी घायल हुए। वहादुरशाह ने विजय पाने पर राजसिंहजी को "उमदये राजहाय बुलद मकान महाराजा वहादुर" की पदवी दी और कवि वृंद को 'सच्ची कहने वाले कविराज' की पदवी दी। राजसिंहजी के माँगने पर वादशाह ने वृंद कवि को उन्हें बख्श दिया।

(१) नोट—स्व० बारैठ रामनाथजी रत्नू के "इतिहास राजस्थान" में यह लिखा है:—

"सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'वृंद सतसई' के कर्त्ता कवि, मेढ़ता निवासी, वाद-

शाह के पास रहा करते थे। वहाँ से राजसिंहजी उनको अपने पितामह रूपसिंहजी का इतिहास छंदबद्ध बनवाने के लिये किशनगढ़ लाए। वृंदजी बहुत उत्तम कवि थे। उनके प्रपौत्र जयलालजी किशनगढ़ में अब भी बहुत उत्तम कवि हैं और आजकल महाराज साहिब की आज्ञानुसार किशनगढ़ का इतिहास लिख रहे हैं।" यह 'इतिहास राजस्थान' सं० वि० १९४८ (सन् १८९२ ई०) में छपा था। अतः उस समय जियालालजी वर्तमान थे।

(२) नोट—'शिवसिंह सरोज ग्रंथ' में और 'मिश्रबंधु विनोद' में जो वृंदजी के संबध में भूलें लिखी गई हैं वे संशोधनीय हैं।

(३) नोट—कृष्णगढ़-पति महाराज राजसिंहजी स्वयम् भी कवि थे। इनका रचा हुआ 'बाहु विलास' नामक काव्य स्व० मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी हिंदी पुस्तकों की खोज नामक सूचीपत्र (मुद्रित) में संख्या १६६ पर लिखा है। यह ग्रंथ श्रीकृष्ण की उस लीला का है जो कंसवध से संबंध रखती है। इस हिसाब से यह काव्य वीर रसमय होने से शृंगार के काव्यों की अपेक्षा उच्चतर है। राजसिंहजी कृष्णभक्त राजा थे। यहाँ के राजा सदा से वैष्णव होते आए हैं। 'मिश्रबंधु विनोद' में इनके विषय में लिखा है कि इनका राज्यकाल सं० १७६३ से १८०५ तक था। ये महाराज साँवतसिंहजी (उपनाम 'नागरीदासजी' कवि भक्त) के पिता थे। इनके बनाए ये ग्रंथ हैं:—(१) राजप्रकाश, (२) रसपाय नायक और (३) बाहुविलास। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है।

मंछ कवि

अब हम ग्रंथकर्त्ता कवि मंछ का थोड़ा सा वृत्तांत लिखते हैं जो प्रायः उनके ग्रंथ और उनके वंशज कवि माईमलजी से, विद्यारत्न पं० श्रीरामकर्णजी की कृपा से, प्राप्त हुआ। मंछ कवि का असली नाम (या शिष्टनाम) मनसाराम था। 'मंछ' उनका काव्योपनाम है।

संभ्भवतः बचपन में माँ-बाप ने लाड़ से यह नाम दे दिया हो और उसीका फिर सस्कार कर मनसाराम कर दिया हो। ये सेवग (भोजक व्यास वा पाराशर) जाति के ब्राह्मण थे। इनका गोत्र 'कुवारा' था। इस प्रकार ये वृंदकवि के सजातीय ही थे। इस सेवग जाति में बड़े-बड़े विद्वान्, कवि, ज्योतिषी और गुणी हुए हैं और अब भी है। मंछ कवि के पिता का नाम बखशीराम (वा बगसीराम) था। बखशीराम का जन्म संवत् १७९३ में हुआ था और मृत्यु संवत् १८५५ में हुई थी। पिता की ३४ वर्ष की अवस्था में, अर्थात् संवत् १८२७ वि० में, यह पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बाल्यावस्था से ही मंछ बुद्धिमान थे। इनको इनके चचा हाथीराम ने पढ़ाया था। मंछ की माता का नाम रुक्मिणी था। इनका कोई भाई या बहिन थी या नहीं, इसका पता नहीं है। इनका विवाह जोधपुर में ही तेजकरण सेवग की पुत्री 'राधा' के साथ संवत् १८४५ में हुआ था। मंछ को हिंदी कविता और डिंगल कविता का बड़ा चसका था। यह युग कवियों के सम्मान का था; विशेषतः गुण के ग्राहक महाराज मानसिंहजी के पास, जो जोधपुर में राज्य करते थे, अनेक कवि रहते थे। महाराज मानसिंहजी नाथ जोगियों के भक्त थे। उन्होंने अपने गुरु नाथों की प्रशंसा और स्तुति में अनेक ग्रंथों की रचना भी की थी।

यहाँ महाराज मानसिंहजी के इस विषय के कुछ ग्रंथ दिए जाते हैं:—(१) जलधरनाथजीरा चरित्र (२) नाथ-चरित्र (३) श्रीनाथजी (४) नाथ प्रशंसा (५) नाथजी की वाणी (६) नाथकीर्त्तन (७) नाथ-महिमा (८) नाथपुराण (९) नाथ-संहिता (१०) जलंधरचंद्रोदय (११) नाथचंद्रिका (१२) सिद्धगंगा (१३) नाथधर्म-निर्णय (१४) सिद्धमुक्ताफल (१५) सिद्ध संप्रदाय (१६) नाथजी के पद। इत्यादि। फिर उनको जो पुरुष वा कवि अपने गुरु की प्रशंसा में कविता करे वह क्यों न प्रिय

हों ! * मंछ कवि ने नाथों की स्तुतिमय काव्य रचकर महाराज को सुनाया। महाराज ने प्रसन्न होकर संमान किया और मंछ कवि के पुश्त दर पुश्त २) रु० रोज—अर्थात् ७२०) रु० सालाना नियत कर दिया। राज-संमान से मंछ कवि का और भी मान बढ़ा। मंछ कवि श्रीरघुनाथ जी के परम भक्त थे और रामायण के प्रेमी थे। उन्होंने सोचा कि डिंगल भाषा में भी श्रीरामचद्रजी का यश-वर्णन होना चाहिए। अतः उन्होंने यह ग्रंथ बनाया और इसका नाम "रघुनाथरूपक गीताँरो" रखा। डिंगल भाषा में गीत-रचना ही प्रधान है, और कवि ने 'सोना और सुगंध' की कहावत चरितार्थ कर दिखाई। इस एक ही ग्रंथ में डिंगल भाषा की कविता की रीतियाँ, छदभेद, छदलक्षण, अलंकार, गुणदोष, काव्य रचना है—इन सब में (थोथे नायिका भेद में नहीं, वरन)

---

* नोट—म० मानसिंह जी के समय के कुछ कवि, जिनमें सेवक भोजक भी हैं, जाने गए हैं जिन्होंने इस विषय में कविता की है:—(१) लक्ष्मीनारायण चौड़ा कृत 'भजन विलास' (जलधरनाथजी के भजन), (२) तिलोक सेवक कृत 'मानबत्तीसी' (राधिका-मान वर्णन), 'राजविलास' (म० मानसिंहजी के राज्य का वर्णन), (३) दौलतराम सेवक कृत 'जलंधरनाथजी का राजस' (जलंधरनाथजी की कथा), (४) संतोकीराम कृत 'जलधरनाथरा रूपक' (जलधरनाथजी की स्तुति), (५) मनोहरदास सेवक कृत 'जसआभूषणचंद्रिका' (पिंगल और अलंकार), (६) बषसीराम गाडूराम सेवक कृत 'जसभूषण' (जलधरनाथजी का जस), 'जसरूपक' (जोधपुर महाराज मानसिंहजी का यश), 'जूनीख्यात' (राजा बादशाहों का पुराना इतिहास), (७) ताराचंद व्यास कृत 'नाथानंद प्रकाश' (जलधरनाथजी की कथा), (८) 'रिझवार' कवि जोधपुर कृत 'नाथजी के कवित्त' (जालधरनाथजी की प्रशंसा)। इससे प्रगट होगा कि उस समय सेवग लोग कितने कवि होते थे और महाराज भी कवियों के कितने ग्राहक थे तथा उनके यहाँ योगी नाथों के मत का कितना गौरव और प्रचार था।

प्रभु का यशगान और साहित्य के सिद्धांतों का निरूपण साथ-साथ है।

इस रघुनाथ-रूपक ग्रंथ को कवि ने संवत् १८६३ मि० भादों सुदी १०, सोमवार को समाप्त किया था, अर्थात् अब (संवत् १९८७) से १२४ वर्ष पूर्व रचा था। कवि ने अपने ग्रंथ की समाप्ति में लिखा है:—

ग्रंथ को संवत् गोत्रजात वास आदि वर्णनं

कुंडलियो

रूपक यह रघुनाथरो पिंगल गीत प्रमाण।
कहियो मंछाराम कवि जोधनगर जग जाण॥
जोधनगर जग जाण वास गूँदी विसतारा।
वगसीराम सुजाव जात सेवग कूंवारा॥
संवत् ठारैं सतक वरस तेसठौ वखाणौं।
सुकळ भादवी दसम वार ससि हर वरताणौं॥
मत अनुसारै मैं कह्यो सुध कर लियो सुजाण।
रूपक यह रघुनाथरो पिंगल गीत प्रमाण॥ १॥

इसकी टीका में कवि जियालालजी ने सेवग जाति पर इतना अधिक लिखा है:—"(भोजक) सेवग इतने नामों से प्रसिद्ध हैं। इस जाति की उत्पत्ति भविष्यपुराण में है। मारवाड़ में सेवग तथा भोजक ब्राह्मण कहलाते हैं। पूर्व में पांड़े कहलाते हैं। जयपुर तथा साँभर में व्यास कहलाते हैं। दिल्ली में मिश्र कहलाते हैं। कृष्णगढ़ में पोकरने सेवग कहलाते हैं। प्रायः इस जाति में ओसवालों की वृत्ति है।"

मंछ कवि ने जोधपुर के नामी भंडारी किशोरदासजी से भी डिंगल काव्य पढ़ा था—ऐसा प्रतीत होता है। उक्त भंडारीजी ने ही इस कवि को राजा तक पहुँचाया—ऐसा भी प्रतीत होता है, क्योंकि ये महाराजा के

आमात्यों में थे। कवि ने अपने गुरु की पादवंदना और कृतज्ञता ग्रंथ के आरंभ में, प्रतिज्ञा में, निदर्शित की है:—

श्रीहनुमानजी श्रीसरस्वतीजी श्रीगुरांजीरी स्तुति

छप्पय

बंद वीर बजरंग कीसवर मंगलकारी।
समर मात सरसती विमळ कविता बिसतारी॥
सदगुर प्रणाम किसोर सचिव अमरेस सवाई।
करे पिता जिम कृपा तिकण गुण समझ बताई॥
मो मत प्रमाण कवि मंछ कह सुकवि बांण ग्रंथांण सुण।
रसगाथ गीत पिंगल रचौ गहर कहौं रघुनाथ गुण॥१॥

इसकी टिप्पणी में कवि जियालालजी लिखते हैं:—"जोधपुर के ओसवाल भंडारी अमरसिंहजी के पुत्र किसोरदासजी के पास ग्रंथकर्त्ता कवि मंछारामजी पढ़े थे।"

मछ कवि के रचित 'रघुनाथ-रूपक' की प्रशंसा में जोधपुर के भंडारी कवि उत्तमचंदजी ने जो छद बनाया है वह इस ग्रंथ के अंत में दिया है, यथा:—

भंडारी उत्तमचंदजी कृत

सोरठा

आछो कीध इसोह, रसले साहित सिंधुरो।
जग सह पियण जिसोह, रूपक राम पयोधरुष॥ १॥

दोहा

मनसाराम प्रबंध मझ, राखे मनसाराम।
कियो भलो हिज काम कवि, कियो भलो हिज काम॥२॥

इस पर कवि जियालालजी ने टीका की है:—"ये उत्तमचंदजी

भंडारी जोधपुर महाराज के प्रधानों में थे और कविता अच्छी पढ़े थे। इन्होंने स्वयम् एक छंदों का ग्रंथ बनाया है जिसमें षोडशकर्म तथा गण-बद्ध प्रस्तार, दोहे का प्रस्तार, आर्या का प्रस्तार आदि भले प्रकार से दिखा गया है।"

इससे विदित हो गया कि मंछकवि एक असाधारण कवि थे और राजा के गण्यमान्य कवियों में से थे। यह भी स्पष्ट है कि ओसवाल जाति के भंडारी कुल पर इस कविता देवी की कितनी कृपा थी। संभवतः राजाओं के प्रेम और व्यवसाय का भी यह प्रभाव हो सकता है और कुछ उस युग का भी प्रभाव था। हमारे मंछ कवि को भी ऐसे पुरुषों और ऐसे युग का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। भंडारी कुल के ओसवाल जोधपुर में बहुत प्रबल, बुद्धिमान, और नीतिमान हुए हैं और उनसे राज्य के बहुत बड़े-बड़े काम बन आए हैं। इसीसे उनका राज्य में बहुत आदर और बड़ी भारी प्रतिष्ठा रहती रही है। परंतु इस गुणावली के साथ ही कवि होना सोने में सुगंध की सी बात है। शक्ति, सरस्वती और लक्ष्मी मानों तीनों एक स्थानी थी। जब ऐसे लोगों के मंछ कवि शिष्य, आश्रित और कृपापात्र थे तब सहज में यह समझ में आ जाता है कि मंछ कवि एक विशिष्ट कवि थे।

'मिश्रबंधुविनोद' में उत्तमचंदजी भंडारी (सं० ११२४) पर जो नोट है उसका सार यहाँ देते हैं—उत्तमचंदजी का कविताकाल संवत् १८६४ तक है। ये महाराजा भीमसिंहजी जोधपुर नरेश (सं० १८५० गद्दी—सं० १८६० मृत्यु) के मंत्री थे और उनके पीछे महाराजा मानसिंहजी (सं० १८६०—१९००) के भी मंत्री रहे। इनके रचे ये ग्रंथ हैं:—(१) नाथचंद्रिका, (२) अलंकारआशय, जो संवत् १८३७ का है, (३) तारकतत्व, (४) नीति की बात, (५) रत्नाहमीर की बात और (६) नाथपंथियों की महिमा। कविता इनकी साधारण है।

मंछ कवि ने रघुनाथरूपक के अतिरिक्त जो अन्य बनाए उनका

पता हमें नहीं लगा। उनके वशज माईमल्ल है परंतु वे शिथिल और उत्साह-हीन पुरुष हैं। उन्होंने हमसे वादा करके भी अन्य रचनाओं का व्योरा नहीं भेजा।

मंछ कवि जोधपुर ही में (महाराज मानसिंहजी के समय में) संवत् १८६७ में कालवश हो गए। अपनी दिव्य रचना को संसार में छोड़कर अपना नाम अमर कर गए। डिंगल भाषा के नामी आचार्यों में इनका मान है। इनके पुत्र रामनाथ का जन्म संवत् १८४६ में हुआ। ये भी कवि थे, परंतु इनका विशेष हाल ज्ञात नहीं हो सका। इनकी मृत्यु संवत् १८६८ में अपने पिता के एक वर्ष पीछे ही हो गई। रामनाथ के पुत्र श्रीराम हुए, जिनका जन्म सं० १८८६ और मृत्यु सं० १९५२ जाने गए हैं। इनके माईमल सं० १९२४ में जन्मे और अभी विद्यमान हैं। परंतु इनमें कविता करने की शक्ति नहीं है। माईमल के तीन पुत्र हैं:—१–फतेराज, २–फोजराज, और ३–अजैराज। जो २) रु० रोज मंछकवि को महाराज से मिल रहे थे वे उनके वंशजों को सं० १९३४ तक मिलते रहे। महाराज प्रतापसिंहजी (मुसाहिब आला मारवाड़) ने घटाकर १) रु० रोज कर दिया, जो अबतक मिलता है और श्रीराम को गऊखाना और शुतुरखाने की दारोगाई भी दी गई थी।

रघुनाथरूपक की विशेषताएँ

यह 'रघुनाथरूपक' ग्रंथ जैसा कि ऊपर कहा गया है, डिंगल भाषा का मान्य और प्रामाणिक रीति-ग्रंथ है। इसमें डिंगल के प्रचलित वा प्रशस्त छंदों के लक्षण और फिर उन छंदों में रामचरित्र का वर्णन है। इस ग्रंथ में नव विलास (अध्याय हैं)। प्रथम दो अध्यायों में तथा तृतीय अध्याय के प्रहास छंद के पहिले तक मंगलाचरण, पूर्वपीठिका तथा छंदोनिरूपण का उपोद्घात और रामचरित्र की भूमिका थोड़ी-थोड़ी दी गई है। तथा वर्ण, गण, दग्धाक्षर, दुगण, अक्षर त्याग, फला-फल, और "वयण-सगाई", काव्य के दश दोष, अक्षर घरन, अखरोट

मोहरामेल, (१ अ०), एवम् 'उक्ति' के लक्षण, और भेद, साथ ही रसों के नाम भेद और लक्षण (२ अ०) और आगे ७ विलासों में रामायण के सातो कांड संक्षेप में वर्णित हैं और विभिन्न छंदों के "वरतारे" वृत्तांत वा लक्षण—और उदाहरण दिए हैं। उदाहरण के छंदों में ही रामायण का सार अति संक्षेप से, परंतु बहुत सुंदरता से, दिया गया है। इनके नामकरण के संबंध में कवि स्वयम् कहते हैं:—"इण ग्रंथमों रघुनाथगुण अत भेद कविता भाषियो। इणहीज कारण नाम ओ 'रघुनाथरूपक' राषियो।" इस ग्रंथ में कौन-कौन से छंद और गीत आदि के लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं—वे विस्तार से ग्रंथ के ही पढ़ने और विचारने से ज्ञात होंगे। परंतु इस संबंध में स्वयम् कवि ने जो कुछ कहा है वह इतना सा ही है—

छंद गीया

"कह मंछ श्रीरघुनाथरूपक पढ़े जो नर प्रीतसूं।
मुरभूम भाषा तणों मारग रमै आछी रीतसूं।।
इण मांहि लघु गुरु दगध अक्षर सुभासुभगण साजिया।
दुगणादि वरणे दसे दोषण मित्त बरण समाजिया।।
अरु त्रिविध मोहरा नवे उकतां अवर नवरस ओपिया।
गिण दाषवे विध जथा ग्यारह रूप छंदो रोपिया।।
चहुं जात दोहा चार छप्पय जात बहुतर गीतरी।
दुय दवावैतां बचनका त्रिध स्री च्यारूं रीतरी।।
नीसाणियां दस-दोय निरमल कुंडल्या पँच केवळे।
इक आद गाथा छंद अंतह जुगत कर करजेवळे।।
उर ग्यान भगती नीत उपजैं चातुरी लह चोजसूं।
अवधेस चिरतां हुवै वाकब मिलै सदगत मोजसूं।।"

इन छदों से कवि का अभिप्राय स्पष्ट प्रगट होता है, तथा ग्रंथ में क्या क्या विषय वर्णन किए हैं और कितने तथा किस भेद और जाति के छंद कहे हैं सो भी दिग्दर्शन रूप से कथित हुए हैं। "सूरभूम भाषा तणों मारग" अर्थात् डिंगल भाषा वा काव्य की रीति की विधि इस शास्त्र के ज्ञान से भली भाँति अध्ययनकर्ता को प्राप्त हो सकती है। यह कुछ भी अत्युक्ति नहीं है, अपितु यह निर्विवाद और सर्वसमत है कि अद्यावधि डिंगलभाषा के साहित्य और काव्य की रीति और छंदों के लक्षण उदाहरणों सहित सिखानेवाला इतना अच्छा, सुगम और सिद्धांत ग्रंथ और प्राप्त नहीं है। इसमें सर्वोत्तम विशेषता ही नहीं, उत्तमता यह है कि अन्य रस-ग्रंथों वा नायिका-भेद के ग्रंथों से प्रतिकूल मार्ग का अवलंबन करनेवाला यह एक अद्वितीय सत्काव्य है जिसमें परमपावन श्रीरामचरित्र की कथा का सार उत्तम छंदों में उदाहरण के लिये दिया गया है। यह ढंग बहुत थोड़े कवियों ने अपनाया है। डिंगल में वीररस के वर्णन में तो छंदों के प्रयोग बहुत हैं, परंतु रीति-ग्रंथ ऐसे विरले ही हैं जिनमें यह शुद्ध प्रकार रचनाकार ने ग्रहण किया हो। इस हेतु यह ग्रंथ इस अवस्था और समय में डिंगल-काव्य-शिरोमणि कहा जाय तो अनुचित न होगा। हमको अब तक इससे बढ़कर अन्य उत्तम रीति-ग्रंथ डिंगल भाषा का नहीं मिल सका है इसीसे स्यात् हमारा यह मत हो, ऐसा नहीं है अपितु ऐसा मत अनेक डिंगल के विद्वानों का है, जो हमने उनसे ही जाना है। इसीसे हमने यहाँ ऐसा लिखने का साहस किया है।

अपने अभिप्राय ही को नहीं अपने ग्रंथ की उत्कृष्टता को, तुलसीदासजी की नाईं, मंछ कवि ने भी प्रारंभ में कैसा अच्छा बताया है—

"मो मत प्रमाण कवि मंछ कह सुकवि बांण ग्रंथांण सुण।
रसगाथ गीत पिंगळ रचौ गहर कहों रघुनाथ गुण॥"

पाठक विचार करें कि कवि रसभरे गाथ (गीत की कथा) गीत

पिंगल (डिंगल के गीतों में छंदों के प्रकार) में रामचंद्रजी के गुणानुवाद के गहरे विषय को वर्णन करे अथवा गहरेपन से (काव्य की उच्चकोटि की शैली से) कहे, यह प्रतिज्ञा है। इसका महाकवि श्रीतुलसीदासजी की उक्ति से कितना सादृश्य है यह 'मानस' के पंडित विचार सकेंगे—

"नानापुराण निगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमति मंजुलमातनोति ॥"

"मैं पुनि निजगुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।"

"भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जे होई।
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे। तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे॥"

अपने ग्रंथ में सूची के रूप में कवि ने छंदों और उनमें वर्णित कथा का सार कहीं नहीं दिया है। जो कुछ दिया है सो ऊपर के छंदों में ही दिया है। इससे ग्रंथ के यावत् छंदों और उनके विषयों का सारवत् ज्ञान होने का कोई साधन नहीं है। अतः हम (क) प्रत्येक विलास के छंद और (ख) कांड के अनुसार कथाभाग का सार सारिणी में दे देते हैं जिससे ग्रंथों की संख्या और उनके नाम तथा कथाप्रसंग का दिग्दर्शन सहज में पाठकों को हो जायगा। इस सारिणी से जाना जायगा कि ग्रंथ में प्रयुक्त छंदों की संख्या ७२ ही नहीं है, इससे अधिक है। यद्यपि ग्रंथकार ने ७२ की संख्या देकर अन्य छंदों का भी नामोल्लेख किया है तथापि ऐसी तालिका के बिना पाठकों को संदेह रह जाने का अवसर न पैदा होने देने के लिये ही हमने यह प्रयास किया है।

(क)—विदित हो कि बहत्तर छंद तो हैं ही, जिनकी सूक्ष्मतया संख्या नहीं देते हैं। इनके अतिरिक्त गाहाचौरस और पालवणी ये दो तो गीत छंद हैं। और इनके अतिरिक्त ४ प्रकार के दोहे (सोरठा

सहित), ४ प्रकार के छप्पय, ५ प्रकार के 'कुंडल्या' छंद, १२ प्रकार के नीसाणी छंद, ४ प्रकार के दवावैत छद, और वचनिकाएँ और ११ प्रकार की जथाएँ। (यों ७२ + २ + ४ + ४ + ५ + १२ + ४ + ११=११४) एक सौ चौदह छंद आदि भेद हैं। ७२ गीतों की सारावली यह है—

३ विलास—बालकांड—१८ छंद गीत सख्या
४ विलास—अयोध्याकांड—५ गीत छद संख्या
५ विलास—वनकांड—१६ गीत छद संख्या।
६ विलास—किष्किंधाकांड—७ छद गीत संख्या।
७ विलास—सुंदरकांड—५ छद गीत संख्या।
८ विलास—लकाकांड—१६ छद गीत सख्या।
९ विलास—उत्तरकांड—१ गीत छद सख्या।

इस प्रकार ९ विलास—७ कांड—७४ संख्या हुई। इनमें १२ तो लक्षण उदाहरण वाले गीत हैं, और २ विना उदाहरणवाले (गाहा चौरस और पालवणी)। * और यह भी विदित हो कि जहाँ कवि ने चौपाई, लीलावती, चौबोला, चंद्रायणा, गीया, पद्धरी, ककुभा, चरण कुलक, चौपई, गीतक, सोरठा दिए हैं वहाँ छंद पडषा [व कडषा] भी दिया है। छप्पै और कुडल्या का जिक्र ऊपर आ ही चुका है।

इस प्रकार डिंगल के विशेष छदों के साथ पिंगल के छंदों का प्रयोग भी कवि ने किया है। परतु पिंगल छदों (दोहे, सोरठे, छप्पै, चौपई आदि) के लक्षण नहीं लिखे, क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं थी। डिंगल भाषा में पिंगल के छंदों का प्रयोग बहुतायत से होता है। इसके लिये कुछ निषेध नहीं है।

---

*नोट—'गाहा चौरस' गीत 'सावक अडल' का भेद है, जो पाँचवें विलास में चौथा छंद है। तथा 'पालवणी', आठवें विलास में, 'झडलुप्त' छंद का भेद है और इस छंद की संख्या चौथी है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि छंदों की तालिका देने के पीछे प्रत्येक विलास के छंदों के नाम और उसमे वर्णित कथासार हम देंगे। परंतु इससे पहले हम "रघुनाथरूपक" के डिंगल छदों को अन्य किसी डिंगल छंदों के रीति ग्रंथ से थोड़ा सा मिलाने की चेष्टा करेंगे। छंदों की संख्या का उल्लेख कुछ ऊपर (क) में आ ही चुका है। हमारे पास इस समय इस रघुनाथरूपक के समान अन्य डिंगल छदों का डिंगलभाषा में कोई रीति ग्रंथ उपस्थित नहीं है। इसलिये संप्रति हम "रणपिंगल" का आश्रय लेते हैं। यह ग्रंथ गुजराती भाषा मे तीन भागों में दीवाण रणछोड़जी द्वारा संगृहीत है और हमारे देखने में इससे बढ़कर "एंसाइक्लोपीडिक" (सर्वंकष-कोष-रूपी) अन्य ग्रंथ नहीं आया है। इसमें प्रथम भाग में लौकिक छद, दूसरे मे पिंगलानुसार छदों का प्रस्तार, तीसरे में वैदिक, डिंगल तथा फारसी अरबी के छदों और उनका हिंदी छंदों के साथ साम्य या तुलना दी गई है। इतने श्रम के साथ भारतवर्ष मे और किसी ने इतना काम नहीं किया है। इसके तीसरे भाग में जो डिंगल के छद दिए हैं उनकी तुलना "रघुनाथरूपक" से की गई है। तथा "बुध विलास" और "लखधीर पिंगल" के भी उदाहरण हैं।

यद्यपि "रणपिंगल" के प्रथम भाग की प्रस्तावना में (पृ० ११— १६) और भी कुछ डिंगल के छंदःशास्त्रों के नाम आए हैं फिर भी न तो वे उपस्थित ही हैं न उनके उदाहरण ही 'रण पिंगल' (भाग ३) मे दिए हैं। अब हम रघुनाथ रूपक के गीत आदिक छंदों को 'रणपिंगल' के क्रम आदि से थोड़ा मिलाते हैं, जिससे इन छदों की कुछ प्रामाणिकता प्रतीत हो।

इस "रघुनाथरूपक" में गीत छदों के लक्षण तृतीयोल्लास से प्रारंभ होते हैं। ग्रंथकार प्रथम गीत का लक्षण देता है, उस लक्षण को (एक साणोर छोड़) दूसरे छद में लिखता है फिर उदाहरण रामायण की कथा का (उसी छंद में) देता है। और 'रण-पिंगल' में यह क्रम है कि प्रथम छंद का नाम, फिर उसका लक्षण

मात्राओं वा अक्षरों के हिसाब से, प्रति पाद की मात्रा आदि की गणना करके और फिर प्रस्तार देता है। गुरु, लघु वा यति आदि के संकेत भी साथ ही लिखता है। इसके नीचे गुजराती भाषा में (या कहीं कहीं डिंगल में) छदोवद्ध लक्षण लिखता है। इसके नीचे डिंगल के ग्रंथों से उदाहरण देता है। उदाहरण रघुनाथरूपक, बुध विलास और लखपत पिंगल या जससिंधु से देता है।

यहाँ हम दोनो ग्रंथों से एक दो उदाहरण दे देते हैं जिससे इनके क्रमों का मेल वा भेद प्रगट हो जायगा।

(१) प्रथम प्रहास साणोर गीत (विलास तीसरा) रघुनाथ रूपक से—

"अथ प्रहास गीत। इण ने गरवत हीं कही जै। वर्तारो छद च्वोवोला। गुर सम चरण प्रहास गीत गिण तव कल सतरै तिकण तणों। बीजी मात्रा सरव बराबर भेद इतों इज मंछ भणों॥ २॥ उदाहरण। पारबती शिव प्रश्नोत्तर। दूहा। उमा कह्यो इम ईस नैं उपज्यो विभ्रम एह। किंकर ऊपर मह्हर कर संकर मेट संदेह॥ ३॥ गीत। दुहू जोड़ कर पूछियो सकत सगत एकण दिवस आखजै जगत पति भेद इणरो। आपरो ध्यान नित करै सारी इला करो नित ध्यान सो आप किणरो॥ १॥...... इत्यादि ७ दुवाले॥

"रण पिंगल" में इस प्रहास गीत का क्रम इस प्रकार है—

"६३. प्रहास साणोर अथवा गर्भित साणोर। (पृ० १०८—भाग ३)—

पहलो दवालो—
१—६+५+५+७=२३
२—५+५+७=१७
३—५+५+५+५=२०
४—५+५+७=१७

दूजो दवालो—
१—५+५+५+५=२०
२—५+५+७=१७
३—५+५+५+५=२०
४—५+५+७=१७

"ऊपरना बीज़ा दवाला प्रमाणे बाकीना दवाला करवा ते मां अन्ते गुरु आवै।" उदाहरण मे एक प्रमाण देकर वही साणौर गीत दिया है— कुछ शब्दों के फेर से—उमाशिव संवाद। "दोउ कर जोड़ पूछियो...... ।" फिर उदाहरण में औरंगजेब बादशाह पर राणा राजसिंह की चढ़ाई का वर्णन दिया है—"दिल्ली उपराँ रायसी राण चढ़ियो जदन...... ।" और एक अन्य उदाहरण डिंगल भाषा-काव्य का दिया है।

(२) फिर उदाहरण में "पाड़गत" वा पहाड़गत गीत देते हैं। (विलास ८ वाँ लंकाकांड वाले में—छंद १४ वाँ)—"गीत जात पाड़गत वरतारो छंद चार्नाकुलक, विषम चरण उगणीस विचारे। आणैं सम पद कला अठारे॥ प्रथम चरण इक बीस पढीजे। दीरघ लघु मोरा सज दीजै॥ आगै यौं मोरा सम आवैं। गुणीं पहाड़गत गीत गिणावैं॥ उदाहरण—

गंगा गड़दी दहुँ ओडां दळ गाजैं। ता गडदी तबल बाजैं रिण तूर॥
रा गड़दी राम रावण जुध रोपै। सा गड़दी समाम अडै सज सूर॥१॥
भा गड़दी भूत जोगण गण भैरव। आ गड़दी अमर अपछर गण आंण॥
पा गड़दी प्रबल परचर दुरपेषत। वा गड़दी व्योम सुर छया बिवाण॥२॥

इस छंद में मोरा (मोहरा) कहने से अक्षर के आगे "आ गड़दी" इस शब्द को लगावे। पहिले के अक्षर के अगाड़ी मिलावे—जैसे गागड़दी, तागड़दी, रागड़दी इत्यादि। तथा आगे के अक्षर में आद्यक्षर रहे॥

"रण पिंगल" ग्रंथ में इसको "चूडामणि गीति" भी कहा है और "पाडगति" नाम भी दिया है। उदाहरण में यही छंद "रघुनाथ-रूपक" का भी दिया है। और नियम में छंद का लक्षण वही दिया है। नोट में लिखा है कि—"आगीतनि दरेक कड़ियाँ प्रारंभ माँ नीचे लख्या शब्दो आवे—घागड़दी, जागड़दी, रागड़दी, पागड़दी,

स + भा + डा + हा + का + आ + फा + मा + घा + छा + ता + डा + बा + (गड्दी प्रत्येक के आगे लगा कर)। परतु "बुद्धि विलास" ग्रंथ का प्रमाण देकर इसका लक्षण भिन्न दिया है और उदाहरण भी पृथक दिया है जिसमें "आगड्दी" का मेल नहीं रखा है। (पृ० १११-११३)। इन दो उदाहरणों से "रघुनाथ रूपक" का मेल "रण-पिंगल" से यों दिखाया है कि रणपिंगल के कर्त्ता ने "रघुनाथरूपक" को प्रमाण माना है, यद्यपि उसमें अन्य डिंगल के छंद-ग्रथों से भी काम लिया है।

"रणपिंगल" ग्रथ के तृतीय भाग के (जिसमें डिंगल के छंदों का निरूपण है) मिलान के अनंतर हमने बूंदी के महाकवि की श्रीसूर्यमल्ल जी के वशज कवि मुरारिदानजी रचित "डिंगलकोश" ग्रंथ (मुद्रित) के अंदर प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, खंडों से छंदःशास्त्र प्रकरणो को लेकर इस रघुनाथरूपक ग्रंथ में, परिशिष्ट रूप में, लगा दिया है जिससे उन पाठकों को लाभ होगा जिनके पास यह ग्रंथ नहीं है।

मुरारिदानजी के उक्त ग्रंथ में भी "रघुनाथरूपक" को प्रमाण मान कर उदाहरण दिए हैं। और कुछ छंदों और गीतों के लक्षण दिए हैं। तथा प्रस्तारादिक और पिंगल के कुछ छंदों के लक्षण भी दिए हैं। अतः यह परिशिष्ट पाठकों के काम का है।

इस ग्रंथ मे कथित रामायण की कथा बहुत संक्षेप में है। परंतु काव्य बहुत सुदर और मनोहर है। रस, भाव, अलंकारादि अच्छे प्रकार से गूँथे और वर्णन किए गए हैं। डिंगल भाषा की छटा भी दर्शनीय और श्लाघनीय है। इसका आनंद विलक्षण और बड़े मजे का है। भावुक, रसिक और साहित्य के प्रेमी बड़े चाव भाव से पढ़ते हैं। कंठ भी करते हैं। कभी गाते भी हैं। कथा-प्रसंग तुलसीदास जी की मानस रामायण से सक्षेपांश में प्रायः मिलती है। परंतु कहीं कहीं नहीं भी मिलता है। पाठक दोनों का मिलान करके देखेंगे तब यह ज्ञात होगा।

यदि कोई पुरुष इस रघुनाथरूपक के छंदों और गीतों को उनके केवल लक्षणों को उठाकर उदाहरणों से पृथक कर ले तो यह केवल लक्षण-ग्रंथ बन जाय। यदि इसके उदाहरणों को ही एकत्र कर ले तो बड़े मजे की एक रामायण की कथा बन जाय। परंतु ग्रंथ में दोनों बातें साथ रखी हैं। यही तो इसकी एक प्रधान विशेषता है। इसके तीसरे विलास में पार्वती प्रश्नोत्तर से कथा-प्रसंग प्रारंभ होता है। उससे पूर्व डिंगल साहित्य के पांडित्य पूर्ण प्रकरण बड़ी उत्तमता से दिए हैं, जिनको गुरु-द्वारा भली भाँति पढ़ने और समझने से आदमी पंडित हो जाय तथा डिंगल साहित्य के नियम, विषय और रीतियों का विशेष ज्ञान प्राप्त कर ले।

पंडित जीयालालजी ने संवत् १९५६ में कृष्णगढ़ (राजपूताने) के "शार्दूल शरण" छापाखाना में "रघुनाथरूपक" सटीक छपवाया। उसके प्रारंभ में उन्होंने जो विज्ञापन और सूचना दी है उनको यहाँ इसलिये लिख देते हैं कि वह मुद्रित ग्रंथ तो अब मिलता नहीं और उसके बिना इसकी जानकारी पाठकों को नहीं हो सकती।

(१) "विज्ञापन"—"पाठकगण महाशयों से प्रार्थना है कि यह ग्रंथ (रघुनाथरूपक) संवत् १९२७ के आषाढ़ में अजमेर में, सोजत के शाकद्वीपी मग भोजक पोकरणे सेवग बालचंदजी शर्मा से मैंने पढ़ा था। इनकी अवस्था वर्ष ७० के लगभग थी, और इनने यह ग्रथ रघुनाथरूपक के कर्त्ता कवि मनसाराम जी (मंछाराम जी) से पढ़ा था। मैंने पढ़ा जब मेरी अवस्था वर्ष १८ के लगभग थी, परंतु मैंने उनके सामने पुस्तक पर टिप्पन अर्थात् शब्दों के पर्याय अर्थ-वाचक शब्द लिख लिए थे। फिर मैंने इस समय भी विचारांश के साथ लिखा है। तो भी कहीं कहीं अवश्य भूल रही होगी, क्योंकि इस ग्रंथ का छपने का प्रारंभ संवत् १९५३ में हुआ था, फिर कई दिन बंद रहा, फिर इस छापेखाने पर हमारे मित्र श्रीयुत् कृष्णलालजी का अधिकार

हुआ तब फिर छापना जारी हुआ। परंतु फिर भी एक प्रकार से विघ्न पड़ा। जब कृष्णलालजी स्वयं बंबई से आए और उनको मालूम हुआ तब उनने मुझसे कह के फिर जारी किया। इस प्रकार इसमें बहुत दिनों का अरसा पड़ने से चित्त की एकाग्रता नहीं रही, इससे जो भूल हो वो क्षमा करें और मुझे कृपा करके लिख भेजें, सो दूसरी बार छपवाई जायगी जिसमें भूल निकाल दी जाय।

कृष्णगढ़ राज्याश्रित-शाकद्वीपी मग भोजक द्विजकवि जयलालशर्मा।"

नोट—इस विज्ञापन से टीका की प्रामाणिकता और ग्रंथ के सटीक संपादित होने का संवत् और हाल जाना जाता है। और दग्धाक्षरों पर जो कवि जयलालजीने "सूचना" वहीं ग्रथ के प्रारंभ में छपवाई है उससे दग्धाक्षरों के संबंध में उनका विचार ज्ञात हो जायगा। उसे हम यहाँ अविकलरूप में दे देना उचित समझते हैं—

(२) "सूचना"—"पृष्ठ २ पंक्ति १८ में दग्धाक्षर लिखे जिसका विचार।—दग्धाक्षर ८ तथा १८१४ लिखे हैं (सो तीन प्रकार से तीन मत कहे हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि १८ दग्धाक्षर कहे उनकी व्यवस्था १४ दग्धाक्षर कह के समझाई है)।—एक मत तो यह है कि ह–झ–ध–र–ष–न–ख–भ–ये ही आठ अक्षर प्रथम गण में (अक्षर) नहीं होने चाहिए।—दूसरा मत यह है कि ह–झ–ध–र–ष–न–ख–भ–। ग–ड–ठ–ट–थ–ण–द–ल–प–म—ये अठारह अक्षर प्रथम नहीं होने चाहिएँ। क्योंकि पृष्ठ २ पक्ति ८ मे लिखा है—"शुभ अशुभ आद गण जे सुघर वेदग दुगण विचारिए"। इस दोटी छप्पय मे आदि में धरने का निषेध लिखा, इसमें दग्धाक्षर नहीं कहे, ऐसा नहीं समझें क्योंकि दग्धाक्षर अशुभ है, अशुभ का निषेध कहा है।—३ तीसरा मत यह है कि गण के तीन अक्षर होते हैं, जिसमें प्रथम गण के अक्षर ह–झ–ध–र–ष–न–ख–भ–ये आठ नहीं होवें। और प्रथम गण का दूसरा अक्षर म–ढ–र ये तीन अक्षर नहीं होवें। और प्रथम गण का तीसरा

झ–ट–क ये तीन नहीं होवें ।— सूचना —(फिर) इन दग्धाक्षरों का विचार लिखने का तात्पर्य यह है कि एक महाशय ने मुझसे पूछा था कि १८ अक्षर छोड़ना कहा, जिसमे ८ तो आदि में और ३ मध्य में और ३ अंत मे ऐसे १४ छोड़े, ४ बाकी रहे वो कहाँ छोड़ने चाहिए ? उनने यह नहीं विचारा कि ढ क इन १४ मे हैं और १४ में तो नहीं है और यह मत जुदा है। और डिंगल भाषा में तो वयण सगाई मिले पीछे दग्धाक्षर गण अगण आदि का दोष ही नहीं रहता। इसमें ख ष लिखे हैं सो पाठकगण अर्थांश से समझ लेवें ।–गुरु को कहीं कहीं लघु पढ़ा जाता है उसे भी पाठकगण अर्थांश मे समझ लेवें ।– इस ग्रंथ को छपने के पीछे मैंने मेरे भतीजे को पढ़ाना शुरू किया तब टिप्पणी में कई जगह न्यूनता मालूम हुई वह दूसरी वेर छपने में निकाली जायँगी ।– इति सूचना संपूर्णम् ।

कृष्णगढ़ राज्याश्रित–शाकद्वीपी मग–भोजक द्विजकवि जय-लाल शर्मा ॥"

नोट—दग्धाक्षर संबंधी इस सूचना से एक प्रकार से एक काम की बात ज्ञात होती है। छपने के पीछे ग्रंथ की टीका में स्वयं कवि को जो भूलें ज्ञात हुईं उनको ठीक करने का उनके पास क्या साधन रह गया था ? दूसरे मुद्रक तक प्रतीक्षा करना ही एक उपाय हो सकता है।

हमारे इस संस्करण में वे कई भूलें आईं, वे निकलीं भी, परंतु फिर भी कई एक रह गई होंगी। उनका स्पष्टीकरण अब असंभव ही सा है।

"रघुनाथरूपक" "सुमेर प्रेस" जोधपुर मे, संवत् १९८८ (सन् १९३२) में, मूल मात्र छपा था। वह भी उसी वर्ष मँगवा कर हमने देखा। छपाई ठीक ही है। इसमें मूल स्थूलाक्षरों मे छापा गया है। पाठ प्रायः शुद्ध है। इसकी भूमिका में लिखा है कि पहले यह ग्रंथ कृष्णगढ़ राज्य में ग्रंथकर्ता के वंशजों द्वारा ही छपा था, फिर इसका

दूसरा संस्करण कच्छ भुज के कवि इरदान जसा भाई द्वारा छपा था। २० वर्ष से ग्रंथ अप्राप्य था। इत्यादि। फिर ग्रंथकर्त्ता का वंश-परिचय दिया है। इसको हमने अपने प्राप्त वंश-परिचय से मिलाया। प्रगट हुआ कि प्रकाशक को जोधपुर में ग्रंथकर्त्ता के वंशजों से ही सामग्री मिली। और हमको भी पं० रामकर्णजी द्वारा कवि के वंशजों से मिली। परंतु इसमें कवि का जन्म मि० आसोज सुदि १४ संवत् १६३० में हुआ और मृत्यु मिति कार्तिक बदि ११ संवत् १६६५ में हुई—ऐसा लिखा है। हमको जो संवत् मिले वे इस प्रकार हैं (जो ऊपर भी लिख चुके हैं)–जन्म संवत् १६२७, और मृत्यु संवत् १६६७ (महाराज मानसिंहजी के समय) में होना लिखा है। इन दोनो संवतों ही में भेद है। हम नहीं कह सकते कि कौन से संवत् ठीक है। अब समय नहीं कि इसका हम अनुसंधान करें। पाठकों में जो इसका निश्चय करना चाहें, कृपा करके अवश्य करें। उक्त वंश-परिचय में एक विशेष बात यह भी मिली है कि "आप (मंछकवि) के कविता–कौशल के कारण गुणग्राही महाराजा श्रीमानसिंह जी ने आपको "ऊँट वाडिया" नाम का ग्राम जागीर में दिया था, जो कई वर्षों तक रहा। फिर ग्राम के बदले राज से २) रु० रोज की तनख्वाह कर दी," जो वंशजों को संवत् १६३४ तक मिली।

वर्तमान संपादन कोई १० वर्ष पूर्व, संवत् १६८७ से पहिले से, तैयारी पर आ चुका था। परंतु उसमें कई बातों को और करने तथा कई विघ्न उपस्थित हो जाने, सभा द्वारा अन्य ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य हो जाने, "बाँकीदास ग्रंथावली" के दूसरे-तीसरे भाग वा "हरिरस" ग्रंथों आदि की तरफ ध्यान आकर्षित रहने आदि कारणों से इसको प्रकाशन के लिये अब भेजना पड़ा है। "हरिरस" का काम पूर्ण हो गया होता तो इस "रघुनाथरूपक" की बारी उसके पीछे संसार के सामने आती। परंतु होना यही था कि यह "रघुनाथरूपक" "हरिरस"

के पूर्व प्रकाशित हो। सो यह पाठकों के सामने आ रहा है। भूमिका का बहुत सा विभाग और कवि का जीवन तभी लिखा जा चुका था। अब तो परिशिष्ट और अवशिष्ट-भूमिका-विभाग. लिखकर कार्य को समाप्त किया जा रहा है।

पाठक महानुभावों को सूचना दी जाती है कि "रघुनाथरूपक" के प्रकाशित हो जाने के पीछे "हरिरस" सटीक (महात्मा ईश्वरदासजी का) प्रकाशित होगा। ऐसा समिति का निश्चय है। आगे 'हरेरिच्छा बलीयसी'। ईश्वरदास जी के अन्य ग्रंथ भी ("देवी दीवायण", "हालाँ झालाँ का कुण्डलिया", "निन्दा स्तुति" आदिक) संभवतः शीघ्र ही हाथ में लिए जाँयगे। डिंगल के अन्य उत्तम ग्रंथों की भी वारी अब आ जायगी, ऐसी आशा है। ऐसे कुछ ग्रंथों के नाम नीचे इसलिये हम दे देते हैं कि पाठक महाशयों को उनसे थोड़ी जानकारी हो जाय, और यदि वे इनके अतिरिक्त अन्य उत्तम ग्रंथों का संपादन, प्रकाशन कराना चाहें तो हमको अथवा काशी नागरी-प्रचारिणी सभा वा वारहट मुरारीदानजी कविया अयाचक मुहल्ला सांडियों का टीबा वालों को सूचना देने का कष्ट करें और तत्संबंधी पत्रव्यवहार करके प्रयोजन वा उद्देश्य को स्पष्ट कर लें।

(१) स्व० बारहट बालाबख्शजी की ग्रंथावली।
(२) लावारासा, सटिप्पण और भूमिका सहित।
(३) बाँकीदास ग्रंथावली, चौथा भाग।
(४) बाँकीदासजी संग्रहीत ऐतिहासिक बातें।
(५) जमकछत—पालावत भेदराम का।
(६) वीरसतसई—म० क० सूर्यमलजी की।
(७) केसरी सिंह विलास—कविया गोपाल का।
(८) बेलरुक्मणीरी पृथीराजजी रचित—प्राचीन टीका सहित।
(९) कविकुलबोध।

(१०) उदैराम ग्रंथावली।
(११) रतनरासा कविकुंभकर्ण रचित।
(१२) भागवतदर्पण—रतनवीर भाण रचित।
(१३) वंश भास्कर ऐतिहासिकसार।
(१४) जसवंत जसोभूषण—द्वितीय संस्करण।
(१५) भारत कथा—कविकुंभकर्णरचित।
(१६) अवतारचरित—नरहरिदास रचित—सटीक।
(१७) हम्मीरायण—प्राचीनकाव्य।

इत्यादि अनेक डिंगल वा पिंगल के प्राचीन ग्रंथ यथासंभव, यथावसर, प्रकाशित हो सकेंगे यदि सब ओर से सहयोग होता रहेगा।

अब आगे उपर्युक्त सारिणी दी जाती है:—

रघुनाथरूपक के गीतों और कथा की सारिणी

३—तीसरा विलास।

बालकांड

गीतों की संख्या और नाम—(तीसरे विलास के प्रारंभ में) १ सैणोर बड़ा। २ शुद्ध सैणोर। ३ प्रहासगीत। ४ हुमेलगीत। ५ अरटगीत। ६ अरटियो। ७ दोढो। ८ भारवरी। ९ पंखालो। १० गोखो। ११ दूसरो गोखो। १२ गोख। १३ अर्धभाखरी। १४ प्रोढ। १५ दूजा प्रोढ। १६ सिंहचलो। १७ सालूर। १८ झमालगीत।

कथा की सारिणी—कथा प्रसंग चलता है—शिव पार्वती संवाद—पार्वतीजी ने शिवजी से पूछा कि आपका ध्यान तो सब संसार करता है किंतु आप किसका ध्यान किया करते है। तब शिवजी ने उत्तर दिया

कि मैं जगदीश्वर रामचंद्रजी का ध्यान करता हूँ जिनकी कथा तू सुन।

कथासार—रामचंद्रादि चारों भाइयों का जन्म और बाललीला। दशरथराज्य वैभववर्णन। विश्वामित्र का आगमन। राम लक्ष्मण का उनके साथ जाना। ताड़का वध। मारीच से युद्ध। अहल्या तारण। मिथिला गमन। सिया स्वयंवर। राजाओं का वर्णन। जनक प्रतिज्ञा। धनुष भंग। सियाजी का वरमाला पहनाना। विश्वामित्र से जनक की स्तुति। अयोध्या को दूत भेजना। पत्र पढ़कर दशरथ का बरात सजाना। विवाह का आरंभ। चारो भाइयों का विवाह होना। इंद्र का शाप मोचन। विवाह की रस्म-रिवाजें। दहेज। बरात की विदाई। परशुराम आगमन। राम और परशुराम का संवाद। परशुराम का, विष्णु का अवतार जानकर, वन गमन। बरात का अयोध्या में लौट आना। अयोध्या में आनंद मंगल बधाई रंग वर्षा। बरातियों की अयोध्या से उचित विदाई।

(इति तीसरा विलास—बालकांड समाप्त)

४—चौथा विलास।

अयोध्याकांड

गीतों की संख्या और नाम—१ छोटा सैणोर गीत। २ वेलियो। ३ सोहणों। ४ सुपंखरो। ५ इकखरो।

कथा की सारिणी—स्वर्ग से आकर देवताओं का रामचंद्रजी से भू-भार उतारने के लिये प्रार्थना करना। भरत शत्रुघ्न को ननिहाल भेजना। रामचंद्रजी को युवराज करने का विचार और तैयारी। मंथरा का कैकेयी को बहकाना। रानी कैकेयी का दशरथ से वचन लेना। रामचंद्रजी को वनवास के लिये कहना। रामचंद्रजी का आज्ञापालन कर

माता कौशल्या के पास आना। वन-गमन की आज्ञा माँगना। रामचद्र सीता संवाद। राम लक्ष्मण संवाद।

(इति चौथा विलास—अयोध्याकांड समाप्त)

५—पाँचवाँ विलास।

वनकांड

गीतों की संख्या और नाम—१ दीपकगीत। २ सावक अडल। ३ सावक अडल दूसरो। ४ गाहा चौसर। ५ त्रबंकडो। ६ हेलो। ७ एकलबैणों। ८ एकलबैणों दूसरो। ९ भाखं। १० अर्ध भाखं। ११ गजगत। १२ धमाल। १३ चोटियाल। १४ उमंग। १५ सेलार। १६ अरध गोखो। १७ सतखणो। १६ झड़मुकट। १९ अमेल।

कथा की सारिणी—राम लक्ष्मण सीता का वन में जाना। मार्ग में भील गुह से मिलना। धीवर को मुक्त करना। नदी पार होना। चित्रकूट जाना। शोक से दशरथजी का मरण। भरत शत्रुघ्न का बुलाया जाना। उनका आना और शोकावस्था देखकर घबराना। कैकेयी भरत संभाषण। कैकेयी को उपालंभ। कौशल्या और भरत का संभाषण। पिता की मृत्यु से शोक और उनकी अंत्येष्टि क्रिया करना। भरत आदि का रामचद्रजी से मिलने को जाने की तैयारी करना। भरत का का वहां जाना। और वहां रामचंद्रजी से मिलना। अयोध्या लौटने की प्रार्थना करना। रामचंद्रजी का भरत को समझाना। और उन्हें अपनी पावडिया देना। भरत का पावडियां लेकर अयोध्या लौट आना। भरत का अयोध्या प्रवेश। रामचद्रजी का चित्रकूट से रवाना होना। और अत्रि ऋषी के आश्रम में आना। रामचद्रजी का कबध राक्षस को मारना और पंचवटी मे आना। शूर्पणखा का आकर निर्लज्जता दिखाना। लक्ष्मण द्वारा

उसके नाक कान का काटा जाना । उसका निकटवर्त्ती राक्षसों के पास पुकारना। रामचंद्रजी द्वारा खरदूषण त्रिखर का वध। शूर्पणखा का रावण के पास जाना और सीताजी को उठा ले जाने के लिये रावण को उसकाना। रावण का मारीच को बुलाकर हैममृग बनकर सीताजी के आगे होकर निकलने को मजबूर करना। और इसका उधर से निकलना। सीताजी का रामचंद्रजी से उसे मारकर लाने को हठ करना। रामचंद्रजी का उसे मारने को जाना। मरते समय उसका "लक्ष्मण लक्ष्मण" शब्द उच्चारण करना। सीताजी का लक्ष्मणजी को उधर भेजना। पीछे से रावण का आकर सीताजी को उठा ले जाना। रावण का गीध से युद्ध। गीध का बिना पंखों का होकर गिरना। सीताजी का बंदरों को देखकर अपने नूपुर उतारकर डालना, संदेशा के लिये कहना। रावण का लंका पहुँच कर सीताजी को अशोकवाटिका में रखना। लंका में लंका के लोगों का रावण की निंदा करना। सीताजी के वियोग में रामचंद्रजी का विलाप करना। सीताजी को ढूँढते समय मार्ग में जटायु गीध का मिलना। रामचंद्रजी द्वारा उसका उद्धार होना। दोनों भाइयों का शबरी के आश्रम मे आना। वहां उसकी भक्ति के वशीभूत होकर उसके जूठे बेर खाना।

(इति पाँचवाँ विलास—बनकांड समाप्त)

६—छठा विलास।

किष्किंधा कांड

गीतों की संख्या और नाम—१ काछो गीत। २ हंसावलो। ३ भँवर गुंजार। ४ हूसरो। ५ चोटियो। ६ चितावलास। ७ मंदार।

कथा की सारिणी—दूर से सुग्रीव का रामचंद्रजी को देखना और हनुमान से उन्हें लाने को भेजना। हनुमान का आकर रामचंद्रजी

को सुग्रीव के पास ले जाना और वाली का अत्याचार वर्णन करना। रामचद्रजी का कहना कि यदि सीता को खोज दोगे तो तुम्हारे शत्रुओं को मारकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दूँगा। तब हनुमानजी ने रामचंद्रजी से कहा कि एक नूपुर पहाड़ के ऊपर पड़ा है। रामचंद्रजी का वहाँ जाकर नूपुर को देखना और सुग्रीव के कहने से सप्तताड़ों को बेधना। सुग्रीव का वाली को युद्धार्थ ललकारना। वाली का युद्ध के लिये आना। रामचद्रजी का वाली को मारना। वाली का रामचद्रजी से कहना कि मुझे बिना अपराध क्यों मारा? रामचंद्रजी का उसे कहना कि यदुवंश में जब मैं अवतार लूँगा तब तुमको बदला दूँगा। रामचद्रजी का लक्ष्मणजी को सुग्रीव के पास भेजना। लक्ष्मणजी का वहाँ जाना और सुग्रीव को सीता की खोज न करने के कारण फटकारना। सुग्रीव का सीताजी की खोज के लिये चारों ओर दूत भेजना।

(इति छठा विलास-किष्किंधाकांड समाप्त)

७—सातवाँ विलास।

सुंदर कांड

गीतों की संख्या और नाम—१ कैवार गीता। २ चितहिलोल। ३ पालवणी। ४ कविइलोल। ५ त्रिपंखो।

कथा की सारिणी—लंका की ओर अंगद आदि १२ सुभटों का जाना। मार्ग में संयमप्रभा से और संपात नाम गीध से मिलना। रामचंद्रजी का यश सुनकर गीध के पंख आ जाना। उसका आकाश में उड़कर सीताजी को देखना। वहाँ से उतरकर अगद से कहना कि सीताजी लंका में अशोक वाटिका में हैं। सबका समुद्र के किनारे

आना और समुद्र को देखकर पार जाने से घबराना। अंत में हनुमान का समुद्र को लाँघ जाना। लंका में सीताजी को देखना। अशोक वाटिका में सीताजी के दर्शन करके मूँदरी देकर रामचंद्रजी की कुशल कहना। बाग का नाश करना। अक्षयकुमार को मार डालना। लंका को जलाना। लौटते समय सीताजी से सीसमणि माँग लाना। मंदोदरी का रावण को समझाना। विभीषण का रावण को समझाना। रावण द्वारा विभीषण का अपमान होना। विभीषण का रामचंद्रजी के पास आ जाना। रामचंद्रजी का विभीषण को "लंकेश" कहना।

(इति सातवाँ विलास—सुंदरकांड समाप्त)

८—आठवाँ विलास।

लंका कांड

गीतों की संख्या और नाम—१ मनमोदगीता। २ झडलुपत। ३ त्रवंकड़ो। ४ पालवणी। ५ सावभूडो। ६ अर्द्धसावझड़ो। ७ जागड़ो। ८ खुड़दसाणोर। ९ वीरकंठ। १० सवैयोगीत। ११ सपंखरो। १२ सुवग। १३ अठतालो। १४ त्राटको। १५ लहैचाल। १६ पाड़गत। १७ त्रकूटबंधा। १८ दूसरा त्रकूटबंधा। १९ लघुचित्तविलास।

कथा की सारिणी—रामचंद्रजी की सेना का युद्ध के लिये रवाना होना। समुद्र पर पाज बाँधना। लंका के बाहर डेरा डालना। मंदोदरी का रावण को फिर समझाना। रामचंद्रजी का रावण को समझाने के लिये अंगद को भेजना। अंगद का रावण की सभा में जाना और उसे समझाना। रावण का उसकी बात को न मानना। अंगद का वापस आना। राम की सेना का युद्धार्थ तैयार होकर व्यूह रचना। युद्ध। विभीषण पर शक्ति का वार करना। उसके आगे लक्ष्मणजी

का आकर गिरना। रामचंद्रजी का विलाप। लक्ष्मणजी का उपचार किया जाना। लंका से पतूख वैद्य को उठाकर लाना। उसके द्वारा संजीवनी का भेद पाना। हनुमान का सजीवन लेने द्रोणाचल को जाना। मार्ग में कालनेम को मारना। द्रोणाचल पर्वत को जड़ी सहित ले आना। उस जड़ी से लक्ष्मणजी का मूर्च्छा त्यागकर चंगा हो जाना। रावण का कुंभकर्ण को जगाना। उसका, जागकर, रावण को समझाना। राम और कुंभकर्ण युद्ध। कुंभकर्ण का मरण। इंद्रजीत का युद्धार्थ आना और युद्ध में मारा जाना। पुनः रावण को मंदोदरी का समझाना। रावण का सीताजी को मारने को उद्यत होना और युद्ध के लिये सलाह देना। रावण का युद्ध में विजय के अर्थ होम करना। अंगद आदि का मदोदरी का, रावण के सामने, अपमान करके होम का भ्रष्ट करना। राम-रावण युद्ध वर्णन। युद्ध में रावण का रामचद्रजी के हाथ से मारा जाना। विभीषण का राजतिलक। सीता मिलाप। मंदोदरी का विभीषण को पति स्वीकार करना। रामचद्रजी का रावण को मारकर विभीषण को लंकपति बनाना और वरदान देकर सर्वलंकार राज्य की विभूति प्रदान कर देना।

(इति आठवाँ विलास-लंकाकांड समाप्त)

९—नवाँ विलास।

उत्तर कांड

गीतों की संख्या और नाम—१ ललतमुकर गीत। इस प्रकार १८+५+११+७+५+१९+१=७४ संख्या गीतों की होती है। कोई दो गीत दुहार माने गए इससे कवि ने ७२ ही गीत गिनाए हैं— "कहे वोहोत्तर ७२ मंछकवि गीत प्रबंध गिनाय"॥ आगे दवावैत—२

प्रकार की—१ पदवंध (शुद्धवंध) २ गदवंध। और दो प्रकार की वचनका—१ पद वंध। २ गद वंध। फिर ११ प्रकार की जथाएँ, १२ प्रकार की नीसाणिया तथा ५ प्रकार के कुंडलिया छंद लक्षण उदाहरण सहित दिए हैं।

कथा की सारिणी—अयोध्या नगरी की शोभा का उत्तम वर्णन। रामचंद्रजी के राजतिलक आदि का वृत्तांत। रामचंद्रजी के मुख से हनुमान आदि की प्रशंसा। बहुत सुंदर काव्य है। इन छंदों में रामचंद्रजी की गुणावली, वैभव, सुयश और विजयों आदि का खोल कर वर्णन है। इनमें कई प्रकार के अलंकार आए हैं जिनको सुविज्ञ सुजान पाठकगण मूल और टीका से देख विचार कर आनंद लेंगे तो बड़ा ही अमृत बरसेगा और हृदय सरसेगा। कविता बहुत ही अनूठी और सरस सुंदर है।

टिप्पणी—इस रघुनाथरूपक में छंदों (गीतों) के लक्षण (बरतारे) और रामायण की कथा लेकर जो उदाहरण दिए है वे, जैसा कि इस सारिणी से विदित हो रहा है, तीसरे विलास से दिए गए हैं। प्रारंभ में सैरणोर (साणोर) गीत के उदाहरण में रामायण का व्याख्यान नहीं दिया है। आगे प्रहासगीत से, पार्वती शिव प्रश्नोत्तर से, रामायण की कथा देकर उदाहरण दिए गए हैं। इसलिये उक्त दोनों विलासों का सार इस सारिणी में नहीं दिया गया। सातों विलासों का सार, गीतनाम और संख्या तथा कथा की सूची देकर यह सारिणी बनाई गई है। प्रथम और द्वितीय विलासों में डिंगल साहित्य के इतने विषय हैं कि जिनका सार लिखा जाना पिष्टपेषण होने से अनावश्यक विडंबना मात्र होता। अतः उनका जानना सूचीपत्र तथा स्वयं उन विलासों के अध्ययन ही से पाठकों को सुकर और हितकर होगा।

ग्रंथ के अंत में एक कुंडलिया में कवि ने आत्मपरिचय और ग्रंथ-

निर्माण का समय दिया है और आगे कुंडलिनी छंद में तथा फिर गीया छंद में ग्रंथ का माहात्म्य और भार भी कहा है। ग्रंथ के नामकरण का कारण भी बताया है—"इण ग्रंथमो रघुनाथगुण अतभेद कविता भाषियो। इण हीज कारण नाम ओ रघुनाथरूपक राखियो"। 'रूपक' शब्द का अर्थ वस्तुतः गुण प्रकाश काव्य ही समझें। दो कवित्तों में कवि अपनी वाञ्छना कहकर प्रार्थना करता है और एक सोरठे पर ग्रंथ की समाप्ति कर देता है। अनंतर कवि के गुरु-मित्र भंडारी उत्तमचंदजी की कही हुई प्रशस्ति का एक सोरठा और एक दोहा है।

इस प्रकार से और रूप में यह डिंगल साहित्य का परमोत्तम काव्य और गीत छंदादि का रीतिग्रंथ अतीव निपुणता, योग्यता, प्रौढ़ता आदि गुणों से विभूषित होकर समाप्त हुआ है। अकेले इसी ग्रंथ को उत्तम गुरु द्वारा भलीभाँति पढ़ने, विचारने, याद रखने और प्रयोग करते रहने से साहित्यप्रेमी पुरुष डिंगल-साहित्य का अच्छा पंडित हो सकता है। यह ग्रंथ डिंगल भाषा का बहुमूल्य रत्न और परम आदरणीय पदार्थ है।

इस सस्करण में, संभव है, मूल वा टीका में अथवा अन्यत्र दोष हों। उनको पाठक कृपया सुधार ले। कोई ऐसी विशेष बात हो कि उसकी सूचना आवश्यक हो तो कृपाकर इस भूमिका-लेखक को वा नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के मंत्री को लिखें।

तहवीलदार का रास्ता,
जयपुर,
सौर १४ भाद्रपद सं० १९९७।

पुरोहित हरिनारायण
(बी० ए०, विद्याभूषण)

"रघुनाथरूपक" पर डा० ग्रियर्सन की सम्मति।

डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन साहब, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० (सुपरिंटेंडेंट, लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया) ने इंपीरियल गजेटियर की दूसरी जिल्द के अध्याय (चेप्टर) ११ में पृ० ४३० पर 'राजस्थानी साहित्य' प्रकरण में जो लिखा है उससे इस "रघुनाथरूपक" ग्रंथ की महिमा पाठकों को ज्ञात होगी—

"In Marwar, both that dialect (Dingal) & Marwari have, for centuries, been employed for poetry, the former being locally known as *Pingal* and the latter as *Dingal.* The most admired Dingal work is the "Raghunath Roopak" of Mansa Ram, written at the commencement of the nineteenth century. It is a prosody with copious original examples, so arranged that they give a continuous history of Rama"

"मारवाड़ में दोनों भाषाओं, डिंगल और मारवाड़ी, में सैकड़ों वर्षों से कविता होती रही है। मारवाड़ी मे पहली को पिंगल कहते है और पिछली को डिंगल कहते हैं। डिंगल का सबसे अधिक प्रशंसित ग्रथ मनसाराम का "रघुनाथरूपक" है, जो १६ वीं शताब्दी के प्रारंभ मे लिखा गया था। यह एक छंदःशास्त्र है, जिसमें मौलिक उदाहरण इस ढंग से प्रयुक्त हुए हैं कि रामचंद्र का इतिहास (रामायणाख्यान) धारा प्रवाह रूपेण दे दिया गया है।"

अथ रघुनाथरूपक गीताँरो

प्रथमो विलासः

गाथा

श्रीनिधआगमसारं, वारिज्जनयणं च ज्यानकी वल्लभ ।
अखिल जगत आधारं, सारँगधरण जयो अवधेस ॥ १ ॥

शब्दार्थ—आगमसारं = वेद शास्त्रो के सार। वारिजनयणं = कमल जैसे नेत्रवाले। सारँगधरण = शार्ङ्ग नामक धनुष के धारण करने वाले। जयो = जय हो।

भावार्थ—लक्ष्मी (अथवा शोभा) के भंडार, शास्त्रो के सार, कमल नेत्रवाले, सीता के प्यारे, सारे संसार के आधार और शार्ङ्ग-धनुषधारी, अवधेश (श्रीरामचंद्रजी) की जय हो।

दोहा

चरस करत लिषमण चमर, सरस अगर सामीर।
इम सियजुत जन-मंछ-उर, बसो सदा रघुवीर ॥ २ ॥

शब्दार्थ—चरस = रीति अनुसार, कुलाम्नाय से। अगर = आगे। सामीर = समीर (पवन) के पुत्र, हनुमान। मंछ = कवि मनसाराम-ग्रंथकर्त्ता। उर = हृदय।

भावार्थ—(सीतारामजी पर) लक्ष्मणजी रीत्यनुसार (रघुकुल की आम्नाय के अनुसार छोटा भाई बड़े की सेवा करै) चॅवर करते हैं। और (परमभक्त) हनुमान जी (हाथ जोड़े हुए) आगे खड़े शोभा पाते हैं। ऐसे सीता के सहित रामचंद्र जी भक्त "मंछ" (कवि) के हृदय में बसैं।

सोरठा

जळज प्रभूपद जॉण, दै सुगंध निरवाण पद।
मो मन भँवर प्रमाण, रात दिवस विलम्यो रहै ॥ ३ ॥

भावार्थ—रामचद्र के चरणों को कमल समझो जो मोक्षपद-रूपी सुगंध देते हैं। मेरा मनरूपी भँवरा रात दिन उनमें लगा रहै।

नोट—इन छंदों में आशीर्वादात्मक और ध्यानात्मक मंगलाचरण है।

दोहा—अंतमेल को वड़ा दोहा भी कहते हैं:—

जपैं समुझ नित जाप, सागर-भव तिरवो सहल।
जल तिरिया पाहण सुजड़, पतसिय नाम प्रताप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सहल = सहज, सरल। पाहण = पाषाण, पत्थर। पत = पति। पतसिय = सीतापति, रामचद्र।

भावार्थ—जो नित्य जाप करते है उनके लिए संसारसागर से पार हो जाना सहज है। रामचंद्रजी के नाम के प्रताप से जड़ पाषाण भी जल के ऊपर तिर जाता है। (फिर चेतन जीव का क्या कहना)।

दोहा—मध्यमेल को तूँवेरी भी कहते हैं:—

राम वरण जुग रूप अै, सह वरणॉ सिरताज।
रहैं मुकुटमणराज, आखर अवरॉ ऊपरै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अै = यह। सह = सब। वरणां = वर्ण। सिरताज = छत्र। मुकट मणराज = मुकुटमणियों में राजा (सर्वश्रेष्ठ) आखर = अक्षर। अवरा = अन्य।

भावार्थ—'राम' शब्द के दोनों वर्णों में से एक तो सब वर्णों का छत्र है। और दूसरा अन्य वर्णों के ऊपर श्रेष्ठ मुकुटमणि के समान है। ('राम' शब्द के दोनों अक्षर रकार और मकार हैं जिनमें से रकार अन्य अक्षरों पर छत्र की भाति (ॅ) रहता है, और मकार अन्याक्षरों पर मणि भाति (०) रहता है * ।

नोट—'अंतमेल' जिसे वड़ा दोहा, और 'मध्यमेल' जिसे तूंवेरो छंद कहते हैं इसमें मात्रा की गणना इस प्रकार है:—अंतमेल में प्रथम दो पद सोरठा छंद के होते हैं और अंतिम दोपद दोहा छद के होते हैं। प्रथम पद और चतुर्थ पद के तुकांत मिलाये जाते हैं। मध्ममेल ठीक अंत मेल का उलटा है, अर्थात् इसके प्रथम दो पद दोहा छन्द के और अतिम दो पद सोरठा के होते हैं और दूसरे और तीसरे पद का तुकान्त मिलाया जाता है।

[छप्पय-हनुमानजी की स्तुति]

पवननंद परचंड जीत दारुण खल जंगी
अजर अमर अणभंग बजर आयुध बजरंगी।
रिण बलवन्तां रूप परमसंतां प्रतिपालां।
तूझ भुजां हरितणां तहक बाजंत त्रमालां।
दइवाण रुद्र एकादसां प्राणपूर पति धरमपण।
कपिराय धीर कवि मंछ कह जय २ श्रीरघुवीरजण ॥६॥

शब्दार्थ—परचड=प्रचड। दारुण=कठिन। जगी=युद्ध करने वाले। अणभंग=अक्षय। वजर=वज्र। बजरंगी=वज्र के समान अंगवाले। रिण=रण युद्ध। तूझ=तेरी। हरितणा=रामचंद्र के।

---

* इसी भाव का गोस्वामी जी का भी एक दोहा है·—

"एक छत्र इक मुकुट-मणि, सब वर्णन पर जोय।
'तुलसी' रघुवर नाम के, वरण विराजत दोय॥"

तहक = त्रहक, नकारे का शब्द। घोर = घणा, बहुत। त्रमालां = नकारे। दइवाण = विशालकाय। प्राणपूर = प्रण को पूर्ण करनेवाले। धरमपण = धर्मपरायण। जण = जन, भक्त।

भावार्थ—हे पवनसुत, हनुमान आप प्रचंड हैं, युद्ध में बड़े २ दुष्टों को जीतनेवाले हैं; जरा (बुढ़ापा) रहित, अमर, अक्षय, वज्रायुध-धारी और वज्र के समान शरीरवाले हैं। युद्ध करने में आप बहुत बली हैं, संतों का पालन करनेवाले हैं। और आप ही की भुजा से रामचंद्रजी के नकारे बजते हैं। आप विशालकाय, ग्यारहवें रुद्र, प्रतिज्ञा पूरी करनेवाले तथा स्वामी-धर्मपरायण है। मंछ कवि कहता है हे धीर कपिराय! रामचंद्रजी के भक्त! आप की जय हो।

छप्पय

(श्री हनुमानजी, श्री सरस्वतीजी तथा श्री गुरुजी की स्तुति।)

वंदवीर बजरंग कीसवर मंगलकारी
समर मात सरसती विमल कविता विसतारी।
सद्गुरु प्रणम किशोर सचिव अमरेश सवाई
करे पिता जिमि कृपा तिकण गुण समझ बताई।
मो मत प्रमाण कवि मंछ कह, सुकवि बाण ग्रंथांण सुण।
रस-गाथ-गीत पिंगल रचे, गहर कहूँ रघुनाथ गुण॥ ७॥

शब्दार्थ—समर = स्मरण। सरसती = सरस्वती। प्रणम = प्रणाम करके। सचिव = मंत्री। तिकण = जिन्होंने। बाण = वाणी। गहर = भीर। सवाई = (सिवाई) पुत्र। जोधपुर महाराज के मंत्री अमरसिंहजी केपुत्र किशोर दासजी। ये कवि मंछाराम के काव्य गुरु थे।

भावार्थ—मंगल करनेवाले, कवियो में श्रेष्ठ, वीर और वज्र के समान अंगवाले हनुमानजी को प्रणाम करके, विमल कविता का

विस्तार करनेवाली सरस्वती माता को स्मर्ण करके, और अमरसिंहजी के पुत्र किशोरीदासजी को जिन्होंने पिता के समान कृपा करके गुणों को समझा कर बताया है, प्रणाम करके, मंछ कवि कहता है कि श्रेष्ठ कवियों की वाणी को ग्रंथों में जैसे सुना है उसी प्रकार मेरे मतानुसार गीतों का पिंगल रसीली गाथाओं से युक्त बनाकर रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करता हूँ।

ग्रंथ पोठिका।

दोहा

पहली छन्द प्रबन्ध में, लघुगुरु दगध अलेप।
गण शुभ अण शुभ दुगण गण, सो बरणूं संषेप ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—दगध = दग्धाक्षर। अलेप = निर्दूषणं। अणशुभ = जो शुभ नहीं हो, अशुभ। सषेप = संक्षिप्त में।

भावार्थ—प्रथम कविता मे जो लघु, गुरु, दगधाक्षर, निर्दोष वर्णं, शुभाशुभगण और द्विगण आते हैं उनका सक्षिप्त में वर्णन करता हूँ।

छप्पय दोढ़ी

किवलो पिच्छू कहैं लहू लघुअंक लहावैं।
गिणै छन्द बस गुरू कवी लघु चार कहावैं ॥
बीजा दीरघ वरण जपै गुरु आदि सँजोगी।
विसरग अग सिर बिन्दु भणै तारष सों भोगी ॥
ह ! झ ध र ध न ष भ होय अंक अठ दगध अधीरह।
आखर दग्घ अठार बदैं कवसल वर वीरह ॥
म न भ य सुभ चार गण शुभ अमल अणशुभ सरतज वारिये।
शुभ अशुभ आद गणजे सुधर, वेदग ! दुगण विचारिये ॥९॥

शब्दार्थ—किवलो = केवल लघु अर्थात् केवल आकार की मात्रा-वाले वर्ण—जैसे;—क, ख, च, आदि इनको राजपूताने में कंवलें भी कहते हैं। पिच्छू = ह्रस्व इकार की मात्रा। लहू=लहुर, ह्रस्व उकार की मात्रा। बीजा = दूसरे। जपैं = कहते हैं। अग = आगे। भणैं = कहते हैं। तारप = गरुड। भोगी = सर्प (पिंगल रचयिता का नाम)। अधीरह = अधीर, अत्यंत बुरे। अठार = अठारह। वदैं = कहते हैं। कवसल = कुशल, पिंगल विद्या-विशारद। वरवीरह = श्रेष्ठ, विद्वान्। अमल = निर्मल। वारिये = त्याग दीजिये। वेदग = पंडित।

भावार्थ—केवल लघु जिसे पिच्छू अर्थात् ह्रस्व इकार की मात्रा लहू,—ह्रस्व उकार की मात्रा, और छन्द की चाल बैठाने के लिये गुरु को लघु करना, इस प्रकार चार लघु कविलोग कहते हैं। इनके अलावा जो दूसरे दीर्घ वर्ण है, उनको, सयुक्ताक्षरों के प्रथम वर्णों को, विसर्ग को जिनके आगे दो विन्दु होती है और जिन वर्णों के मस्तक पर विन्दु रहती है—ऐसे वर्णों को पिंगला नामक सर्प गरुड से गुरु कहते हैं। पंडित लोग ह, झ। ध, र, ष, न, ष, और भ इन आठ अक्षरों को दग्धाक्षर कहते हैं। पिंगल-विद्या-विशारद श्रेष्ठ पण्डित लोग अठारह दग्धाक्षर मानते है। (वे ये हैं—ह, झ, ध, र, ष, न, प, भ, ग, ङ, ठ, ट, थ, ण, द, ल, प और म ये अठारह अक्षर छद की प्रथम पंक्ति के आदि मे नहीं लाने चाहिये।) मगण, नगण, यगण, और भगण ये चार शुभ गण हैं। सगण, रगण, जगण और तगण ये चार अशुभ गण हैं अतः इन्हे छन्द के आदि मे नहीं लाना चाहिये। और हे पडित गण! कविता के आदि में गण रखते समय शुभ गण और अशुभ गण का विचार करना चाहिये। यदि गण ठीक नहीं बैठे तब द्विगणों पर विचार करना चाहिये।

विशेष:—(१) इस दोढ़ी अथवा ड्योढ़ी छप्पय में रोला के ६ पद, और उल्लाला के दो पद होते हैं। अतः साधारण छप्पय से ड्योढ़ा होने के कारण इसे दोढ़ी अथवा ड्योढ़ी छप्पय कहते हैं।

(२) गरुड और सर्प के जाति वैर है। एक समय की बात है कि पिंगल नाम के सर्प ने पृथ्वी पर बहुत अत्याचार किया। अतः गरुड़ से यह बात बरदास्त नहीं हुई। इस कारण पिंगल पर वह झपटे और जिस समय उसे खाने लगे तो उसने कहा कि मेरे पास एक विद्या है। उसे आप लेलीजिये तब आप मुझे खाइये। तब पिंगल छन्द विद्या को लिखने लगे। लिखते २ जब "भुजग प्रयात" छन्द लिखने लगे तब वे समुद्र तक पहुँच चुके थे, वहा मे पिंगल ने समुद्र में जाकर कहा—"भुजंग प्रयात, भुजंग प्रयात, भुजग प्रयातं" यह कहता २ जलमग्न हो गया। इस प्रकार से छन्द विद्या का जन्म हुआ।

'दग्धाक्षरफलम्'

छप्पय

हहो करै हित हाण, झझो तन व्याध जगावै।
घधो राज भय धरै, ररो धन नास करावै॥
'घघो घरण घट घाट'* नृफल नर न नो निमाडै।
पय जस करै पकार, भभो परदेश भ्रमाडै॥
अंक आठ कहिया अशुभ, चित्त ध्रुर-धरो विचार।
अवध ईश गुण गावतां, लगै न दोष लगार॥१०॥

शब्दार्थ:—हाण = हानि, नुक्सान। घरण = स्त्री। घटघाट = घट (शरीर) का घाट (घाटा, हानि) निमाडै = नीचा करना। नृफल = निष्फल, व्यर्थ। भ्रमाडै = भ्रमावै, फिरावै। ध्रुर = ध्रुव, निश्चय। लगार = थोडा सा।

भावार्थ—हकार हित की हानि करता है। झकार शरीर में व्याधि उत्पन्न करता है। धकार राजभय कराता है। रकार धन का नाश

* पाठांतर—"घघो घडण घट घात"।

कराता है। घकार स्त्री और शरीर का नाश कराता है। नकार व्यर्थ ही में मनुष्य को नीचा करता है। षकार यश का नाश करता है। भकार परदेश में घुमाता है। ये आठ अशुभ अक्षर हैं, इनको खूब अच्छी तरह मनमें जचा कर रखो। पद्य के आदि में आवैगे तब उक्त प्रकार से फल देंगे किन्तु रामचंद्रजी के गुणगान वाले पद्यों मे किंचित भी दोष नहीं होता है।

दोहा

ग, ङ, ठ, ट, थ, ण, द, ल, प, म, गिणों, ह, झ, घ, र, घ, न, ष, भ, हार।
कहैं अवर ग्रंथां सुकवि, आखर दग्ध अठार ॥ ११ ॥

भावार्थ—सुकवियों ने अन्य ग्रंथो में ग, ङ, ठ, ट, थ, ण, द, ल, प, म, ह, झ, घ, र, घ, न, ष, भ, ये अठारह दग्धाक्षर माने है।

म, द, प, अखर ए मध्य तज, झ, ट, क, अंत मत आण।
ह, ज, घ, र, घ, न, ष, भ, आदि तज, पिंगल कहैं प्रमाण ॥१२॥

भावार्थ—जिन पिंगलाचार्यों ने १४ दग्धाक्षर माने हैं उनका मत है:—मकार, दकार, और पकार यह आद्य शब्द के मध्य में नहीं लाना चाहिये। झकार, टकार और ककार इनको आदि के शब्द के अन्त में नहीं रखना चाहिये और ह, ज, घ, र, घ, न, ष, भ, इन आठ अक्षरों को आदि में नहीं लाना चाहिये।

गण दुगण विचार

दोहा

मगण नगण गण मित्र हैं, भगण यगण भृत लेख।
उदासीय ज, त, धार डर, वल स, र, सत्रु विशेष ॥१३॥

शब्दार्थ—भृत = भृत्य = दास। ज = जगण। त = तगण। स = सगण। र = रगण।

मित्र संज्ञक गणों से सिद्धि की प्राप्ति होती है। दास और दास के मिलने से संसार वश में होता है। दास और उदास मिलकर धन का क्षय करते हैं। दास और शत्रु संज्ञक गण जगत को शत्रु बना देते हैं। उदास और मित्र सज्ञक गण अफल को फल करते हैं। उदास और दास सज्ञक गण मिलकर अचल प्रभुत्व देते हैं। उदास और उदास संज्ञक गण फल को अफल करते हैं। उदास और शत्रु संज्ञक गण बहुत ही अशुभ हैं। शत्रु और उदास संज्ञक गण वंश का विनाश करते हैं। शत्रु और शत्रु सज्ञक गण बंधन में डालते हैं। शत्रु और मित्र संज्ञक गण मिलकर मार्ग में घुमाते हैं। शत्रु और दास सज्ञक गण शोक पैदा करते हैं। अतः हे पंडितो! इन शुभ और अशुभ द्विगणों का आदि में ही विचार कीजिये।

नीचे के नक्शे से द्विगणों का फलाफल भली भांति समझ में आ जावेगा।

मित्र	दास
मगण + नगण = फल।	भगण + यगण = फल।
मित्र + मित्र = ऋद्धि।	दास + मित्र = कार्य सिद्धि।
मित्र + दास = जय।	दास + दास = संसार को वस में करना
मित्र + उदास = सुख का दुःख।	दास + उदास = धन क्षय।
मित्र + शत्रु = सज्जन हानि।	दास + शत्रु = शत्रुता।
उदासीन	**शत्रु**
जगण + तगण = फल।	रगण + सगण = फल।
उदास + मित्र = अफल का फल।	शत्रु + शत्रु = बंधन।
उदास + दास = प्रभुत्व।	शत्रु + मित्र = भ्रमण।
उदास + उदास = फल का अफल।	शत्रु + दास = शोक।
उदास + शत्रु = अशुभ।	शत्रु + उदास = वंश विनाश।

विशेष—ऊपर का द्विगण विचारवाला छंद कुंडलिया नहीं है।

इसमें प्रथम तो एक दोहा है वाद में रोला छंद के ६ पद है जिनके प्रथम पद में सिंहावलोकन है और अव मे एक उल्लाला छंद है। पिंगल के ग्रंथों में तो इस प्रकार का कोई छंद हमारे देखने में नहीं आया। किन्तु एक पुस्तक—"कविता कुसुमकली द्वितीय पखडी" मे दोहा वंध छप्पय अवश्य हमने देखा है। उसीसे हम अपना मत स्थिर करके कह सकते है कि ऊपर का छंद दोहा वंध डोड्यी छप्पय है। छन्द शास्त्र अगाध है। छन्दो का कोई अंत नहीं है। करोड़ों नवीन छद, अव भी वन सकते हैं। मात्रिक विषम प्रकरण में जिस तरह छप्पय कुंडलिया आदि दो २ छन्दो के मिलने से वनते हैं। उसी तरह और भी छद वन सकते हैं। उदाहरणार्थ ऊपर का छन्द प्रस्तुत है। किन्तु इसी ग्रंथ के अंत में कवि ने ५ प्रकार के कुंडलिये छंद लिखे हैं, १ झड उलट, २ राजवट, ३ शुद्ध, ४ दोहाल और ५ कुंडलनी इनके लक्षणों से उक्त कुंडलिया छंद नहीं मिलता है।

प्रश्न

कहिया लघु दीरघ कह्या, वरण दगध विस्तार।
गणशुभ अणशुभ दुगणगण, निज समुझे[1] निरधार ॥१५॥

भावार्थ—लघु, दीर्घ, दग्धाक्षर, शुभगण, अशुभगण और द्विगण अपनी वुद्धि अनुसार निश्चय करके कहे है।

किता हुआ दिग्गज कवी, समुझणहार अशेष।
धुर रूपक ज्यांही धरे, विषमावरण विशेष ॥१६॥

शब्दार्थ—किता = कितने ही। धुर = आदि मे। रूपक = कविता, काव्य। ज्यांहीं = जिन्होंने। विषमावरण = दग्धाक्षर।

भावार्थ—कितने ही अशेप वुद्धिवाले दिग्गज कवि लोग हुये है। जिन्होंने कविता के आदि मे दग्धाक्षर रखे है।

---

१ समुझो भी पाठांतर है।

उत्तर

अंक अशुभ हैं आदितो, शुभगण दोष नसाय।
गण अण शुभ तो दुगण सूं, जिका दोष मिट जाय ॥१७॥

भावार्थ—यदि आदि में दग्धाक्षर हो और शुभगण हो तो दग्धाक्षर का दोष नष्ट हो जाता है। यदि आदि में गण अशुभ हो तो द्विगण से उसका दोष नष्ट हो जाता है।

प्रश्न

आदि चरण में दध अखर, गण अणशुभ गुणगाथ।
दुगण अशुभ दीठां द्रगां, सारा एकण साथ ॥१८॥

शब्दार्थ—दध = दग्धाक्षर। दीठा = देखा। सारा = सब। एकण = एक ही।

भावार्थ—आदि चरण में तो दग्धाक्षर, गुण वर्णन में अशुभ गण और अशुभ ही द्विगण ये सब एक ही साथ आँखो से देखे है।

उत्तर

आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई वेस।
दग्ध अगण वद दुगणरो, लागै नँए लवलेश ॥१९॥

शब्दार्थ—इण भाषा = इस भाषा में अर्थात् मारवाड़ी (डिंगल) भाषा में। अमल = नियम। वद = खराव अशुभ। लवलेश = किंचित। वयण सगाई = डिंगल काव्यका नियम अर्थात् जो अक्षर पद के आदि शब्द में होता है वही पदके अंतिम शब्द के आदिमें आवै। यथा—"बकूं जिका ज्यांरी बिगत"।

भावार्थ—इस डिंगल भाषा में ऐसा नियम है कि यदि अक्षरों की वयण सगाई मिल जाती है तो दग्धाक्षरों का, अशुभ गणों का, और अशुभ द्विगणो का कुछ भी दोष नहीं लगता है।

दृष्टांत

खूँन किया जाणौ खलक, हाड बैर जो होय।
बणै सगाई वयण तो, कल्पंत रहै न कोय ॥२०॥

(१) पाठांतर = कलमत ।

शब्दार्थ—बणै = होना। सगाई वयण = वाग्दान से विवाह—सम्बन्ध। कल्पत = द्वेप, बैर, कल्पना।

भावार्थ—(न० १९ वे दोहे की वयण सगाई की पुष्टि के लिये कहते है) ससार में प्रसिद्ध है कि किसी की हत्या करने से जो वैरभाव हो जाता है तो, यदि वाग्दान से विवाह संबंध हो जावै तो वहां द्वेष की कल्पना नहीं रहती है।

प्रश्न

सोरठा

वयण सगाई वेश, मिल्यां सांच दोपण मिटै।
किणयक समैं कवेस, थपियो सगपण ऊथपै ॥२१॥

शब्दार्थ—किणयक = किसी। समै = समय। थपियो = स्थापित किया हुआ। सगपण = संबन्ध। उथपै = उखड़ जाता है।

भावार्थ—यह बात सत्य है कि 'वयण सगाई' से दोष नष्ट हो जाता है। हे कवीश! किसी समय स्थापित सबंध हुआ भी तो टूट जाता है?

उत्तर

दोहा

पुणजै सुध अखरोट पिण, अै दस दोष असाध।
बकूं जिका ज्यांरी बिगत अवर न कोय उपाध ॥२२॥

(१) ज्यांरै विगर, पाठांतर है।

शब्दार्थ—पुणजै = कहना चाहिये । सुध = शुद्ध । अखरोट = अक्षरावली, कविता । पिण = परन्तु । असाध = असाध्य । वकूँ = कहता हूँ । ज्यांरी = जिनकी । विगत = ब्यौरा तफसील ।

भावार्थ—कविता को शुद्ध ही करनी चाहिये किन्तु ये दस दोष असाध्य हैं (जिनसे वयण सगाई नष्ट होती है) जिनकी तफसील मैं कहता हूँ । और कोई उपाधि नहीं है ।

अथ दोष नाम

छप्पय

रूलै उकतरो रूप, अंध सो नाम उचारैं ।
कहे वले छवकाल, विरुध भाषा विसतारैं ॥
हीण दोष सो हुवै, जात पित मुदो न जाहर ।
निनंग जेणनै निरख, विकल वरणण विन ठाहर ॥
पांगलो छंद भाखै प्रगट वद वट कला वखाण जै ।
विच अवर अवर ढ्रालो वणैं जात विरुध सो जाण जै ॥२३॥

अपस अमूझ्यो अरथ, सबद पिण त्रिण हित साजे[1] ।
नालछेद जिण नाम, जथा हीणों गुण जोझैं ॥
तवैं दोष पखतूट, जोड़ पतली अरु जालम ।
वहरो सो शुभ वयण, मुडै अणशुभ है मालम ॥
मुरभूम पाठ पिंगळ मता, साहित वीदग सार नै ।
कहै मंछ भलां रूपक करो, अै दस दोष निवारनै ॥२४॥

शब्दार्थ—रूलै = खराब हो, बिगड़ जाय । उकत = उक्ति ।

---

१ साजैं भी पाठ है ।

बले = फिर। छवकाल = छपका वाला, दागल। विरुध = विरुद्ध। मुदो = मतलब, (मुद्दआ)। जेणनै = जिसको। विकल = काव्य-कला के प्रतिकूल। ठहर = ठौर, स्थान। वद = अधिक। द्वालो = दल, छंदगीत का भाग। अमूभ्यो = जो खुलासा नहीं हो, दवा हुआ। अपस = अपस्मार, मृगी। त्रिरत हित = निरर्थक। जाभै = बहुत। तवै = कहते हैं। पतली = कमजोर, कोमल। जालम = जबरदस्त। मुडे = मुडना, उलट कर। वीदग = कविता। सारनै = ठीक करके।

भावार्थ—परमुख सन्मुख आदि उक्तियों का रूप बिगड़ जाय वहाँ अंध दोष होता है। जहाँ विकट भाषा अर्थात् डिंगल के सिवा और भी भाषा हो, वहाँ छबकाल दोष होता है। जहाँ पर वर्णनीय के माता, पिता, जाति और मतलब ठीक तरह न हो वहाँ हीण दोष होता है। क्रम भंग जहाँ वर्णन होता है वहाँ निनंग दोष होता है। जहाँ गीत छदों में नियम विरुद्ध मात्रा और वर्ण हो वहाँ पांगला दोष होता है। और जिस गीत में जाति विरुद्ध गीत के द्वाला (छद, वा पद) हों उसे जाति विरुद्ध दोष कहते हैं॥ २३॥

जहाँ निरर्थक शब्द योजना हो और उनका अर्थ साफ २ नहीं झलकता हो वहाँ अपस दोष होता है। जहाँ पर जथाओं (यथाओं) का पूर्णतया निर्वाह नहीं होता वहाँ नालछेद दोष होता है। जिस गीत में बदिश कहीं तो अनुप्रास सहित हो कहीं साधारण ही हो, उसमें पख तूट दोष कहा जाता है। जहाँ पर अच्छे वाक्य भी, किसी शब्द को उलटकर रखने से अशुभ हो जाते हैं वहाँ बहरा दोष होता है। मछ (मनसाराम) कवि कहते हैं—डिंगल और पिंगल के साहित्य ग्रंथों के अनुसार कविता को ठीक करके और ये दश दोष छोड़कर अच्छी कविता कीजिये।

अथ दोषांरा उदाहरण

गीत

अंधदोष

दिलडा ! समझ रे सगलो जग दाखै,
पछै घणो पिछतासी ।
पुरष जनम कद तू पामेला
गुण कद हरिरा गासी ॥१॥
मात-पिता बंधव दौलत-मद,
सुत त्रिय जोड़ संधाणो ।
मायारा आडंबर माँहैं,
बंदा ! केम बंधाणो ॥२॥
समुझै क्यू न अजूं समझाऊं,
भूल मती हिव भाया ।
दौडे ऊमर चटका देती,
छित जिम बादल छाया ॥३॥
सौवै खाय करै नहैं सुकृत,
खोवै दीह खलीता ।
प्रीत करै सिमरे सीतापत,
जिके जमारो जीता ॥४॥२५॥

शब्दार्थ—दिलडा = हेमन । सगलो = सब । दाखै = कहता है । पिछतासी = पश्चात्ताप करेगा । कद = कब । पामेला = पावैगा । हरिरा = ईश्वर के । गासी = गावेगा । संधाणो = मिला हुआ है । माहै = अंदर । बंदा = सेवक । केम = कैसे । अजूं = अब भी । मती = नहीं । हिव =

अब । भाया = हे भाई । चटका = चुटकी । छित = क्षिति, पृथ्वी । नहैं = नहीं । सुकृत = पुण्य । दीह = दिन । खलीता = खाली । सिमरे = स्मरण करे । जिके = जो । जमारो = जीवन ।

भावार्थ—हे मन ! समझ, सम्पूर्ण जगत कहता है, नहीं तो फिर बहुत पश्चात्ताप करेगा । मनुष्य-जन्म फिर कब तू पावैगा, और कब ईश्वर के गुणानुवाद गावैगा ॥ १ ॥

माता-पिता, भाई-बन्धु, धन-मद, पुत्र और स्त्री से तूनै अपना संबंध मिलाया है और हे ईश्वर के सेवक इस माया के आडम्बर में क्या बंधा हुआ है ॥ २ ॥

मैं अब भी तुझे समझाता हूँ, समझता क्यों नहीं है । हे भाई ! अब भी भूल मत कर । यह उम्र पृथ्वी पर बद्दलों की छाया की तरह चुटकी देती हुई दौड़ रही है ॥ ३ ॥

यों तो सब ही खा करके सो जाते हैं, पुण्य नहीं करते है और दिन खाली ही (व्यर्थ ही) खोते हैं किन्तु जो प्रेम से सीतापति (रामचंद्र का) का स्मरण करता है उसने ही जीवन में विजय प्राप्त की ॥ ४ ॥

विशेष—(१) इस गीत के प्रथम और द्वितीय द्वालै (दल में) में परामुख उक्ति है और तृतीय द्वालै में सन्मुख उक्ति है और फिर चतुर्थ द्वालै मे परामुख उक्ति है । इसमें एक ही उक्ति का निर्वाह नहीं हुआ, अतः इसमें अंधदोष है ।

(२) यह डिंगल का नियम है कि प्रत्येक गीत में तीन से कम द्वालै नहीं होते हैं । इससे अधिक कवि की इच्छा पर निर्भर है ।

अथ छवकाल दोष

गीत

बन बैठो भलां चढ़ो गिर-बदरी, धरा भेष के धारो ।
चित नँह लग्यो रामरै चरणां, नँह जब लग निसतारो ॥१॥

प्रीति करै तीरथ रै ऊपर, भोज दिये मनमांनो।
तक्यो न मन हर पग जिंहताई, पार न उतरै प्रानी ॥२॥
कर विधान करवत ले कासी, ले ब्रजरेणूं लेटै।
पग्यो न दिल प्रभुरै पद पंकज, भिसत नत्यांतिक भेटै ॥३॥
भैरव देव अदेव भलांई, निरखो फिर फिर नैनां।
मुगत तणों सातारो मालक, हरि विन दाता है नां ॥४॥२६॥

शब्दार्थ—भलां = चाहे। गिरबदरी = बद्रीनाथजी के पर्वत। धरा = पृथ्वी। के = कितने ही। नॅह = नहीं। निसतारो = छुटकारा। मनमानी = इच्छित। तक्यो = देखा। जिंहताई = जबतक। भिसत = बहिश्त, स्वर्ग। त्यांतिक = तबतब। सातारो = शांति का।

भावार्थ—चाहे वन में जाकर तप करो, चाहे बद्रीनाथजी के पर्वतों पर चढ़कर गलजावो, और चाहे कितने प्रकार के भेस धर कर पृथ्वी में फिरो, किन्तु जबतक रामचद्र भगवान के चरणों में मन नहीं लगा, तब तक इस संसार से छुटकारा नहीं हो सकता चाहे तीर्थों के ऊपर खूब प्रेम हो, और चाहे मन इच्छित आनंद भोगने को मिले हों किन्तु जब-तक ईश्वर के चरणों को मन लगाकर नहीं देखा तब तक प्राणी का उद्धार नहीं हो सकता ॥ २ ॥

चाहे विधि अनुसार काशी में करोत ले और चाहे ब्रजभूमि में लेटे, किन्तु जबतक मन ईश्वर के चरणारविंद में अनुरक्त नहीं हुआ तब तक स्वर्ग नहीं मिल सकता ॥ ३ ॥

चाहे भैरव आदि देव और अदेवों को बार २ नेत्रों से देखो, किन्तु मुक्ति की शांति का मालिक ईश्वर के सिवा और कोई भी देने-वाला नहीं है।

विशेष—इस गीत में प्राणी, भेटै, लेटै, नैना भिसत, त्यांतिक और जबलग ये शब्द ब्रज भाषा और फारसी के हैं। अतः इस प्रकार जो

भाषा विरुद्ध शब्द जहाँ आते हैं वहाँ छब काल दोष होता है। अर्थात् इस गीत में डिंगल ही डिंगल भाषा के शब्द आने चाहिये थे किन्तु अन्य भाषा के भी आये हैं। अतः यह दोष है।

अथ हीण दोष

गीत

मनरा महराण समापण मोजां,
काषण दीनां तरणा कुरंद।
दीजै किसो समो बड़ दूजो,
पेखे चक्रत रहै पुरंद ॥१॥
भिडै सचेत बडाला भारथ,
चवडै खेत करै चित चोज।
अतुली बल झाडे असरांरो,
खागां मार गमाडे खोज ॥२॥
पात सुजस अखियात पयंपै,
दातव असमर वात दुवै।
जग में राम तुहालै जोडै,
हुवो न कोई फेर हुवै ॥३॥२७॥

शब्दार्थ—महराण = समुद्र। समापण = समर्पण, देना। मोजां = आनंद। कापण = काटना। कुरंद = दरिद्रता। किसो = किसको। समोबड़ = बराबर। पेखे = देखकर। चक्रत = चकित। पुरंद = पुरंदर, इंद्र। सचेत = सावधान। बड़ाला = बड़े। भारथ = युद्ध। चवडै = प्रगट में। खेत करै = युद्ध किये। चोज = उमंग। अतुलीबल = बहुत बल। झाडै = नाश किया। खागां = तरवार। गमाडे = खो दिये। खोज = निशान। पात = कवि। अखियात = अक्षय। पयंपै = कहता

है। दातव = दान। असमर = तरवार चलाने में वीर। दुवै = दोनो। तुहालै = तुम्हारे। जोडे = बराबर।

भावार्थ—मन के समुद्र, आनंद देनेवाले और दीनों की दरिद्रता नाश करनेवाले के बराबर किसे रखे जिसे देखकर इंद्र भी चकित होता है ॥ १ ॥

सावधान हो करके बड़े २ युद्धों में भिड़ गये हैं और उत्साह पूर्वक प्रगट में युद्ध किये हैं, राक्षसों के जबरदस्त बल को नष्ट कर दिया है और तरवारों की मार २ कर उनका निशान भी मिटा दिया है ॥२॥

कविलोग दान और तरवार का वीरत्व दोनो बातें और सुयश अक्षय कहते हैं। हे राम तुम्हारे बराबर संसार में ऐसा कोई हुआ न फिर कभी होगा।

विशेष—इस गीत में राम की प्रशंसा है। राम शब्द से यह स्पष्ट नहीं होता है कि परुशराम है वा बलराम है वा रघुवंशी रामचद्र है। और न इसमें उनके माता, पिता, जाति और प्रवाडों (आश्चर्यजनक कर्त्तव्यों) का ही वर्णन है। केवल राम की स्तुति है। जहाँ इस प्रकार का वर्णन होता है वहां हीण दोष होता है।

अथ निनंग दोष

गीत

बसू मांस कादम मचो प्रसत परवत बणे,
रुधिर मिल सरतपत हुओ रातो।
अजोध्यानाथ दसमाथ रावण अडग,
महा बे ओर भाराथ मातो ॥ १ ॥
बरंगा राल वरमाल सूरा बरैं,
त्रिपत पंखाल दिल खुले ताला।

सवल पड भार सिर तणावै अहेसुर,
महेसुर वणावै मुंड माला ॥ २ ॥
कटाला सरांलग सेल खंजर करद,
अंग कट जरद पड़िया अथाहां ।
ओघ सुर असुर वे सरोवर जूटिया,
वरोवर करै सारीस वाहां ॥ ३ ॥
सीस दस झडे धनुधाररै सायकां,
हेर कप भाल अणपार हरपे ।
वसू सारी सुजस पचपै सुवाणां,
विमाणां वैठ सुर सुमन वरपे ॥४॥२८॥

शब्दार्थ—वसू = वसुधा, पृथ्वी । कदम = कीचड़ । मचे = हुआ । असत = अस्थि, हड्डियें । सरतनत = सरितापति, समुद्र । रातो = लाल । अडग = अडिग्ग । वे ओर = दोनों तरफ । मातो = हुआ । वारंगा = अप्सरायें । राल = डालकर । त्रिपत = तृप्त । पंखाल = गिद्ध आदि पक्षी । सवल = बहुत । तणावै = तानते हैं, ऊँचा करने की चेष्टा करते हैं । अहेसुर = शेषनाग । महेसुर = महेश्वर, महादेव । सरां = वाण । जरद = पीले । करद = छुरी । अथाहा = अपार । सरोवर = बराबर । जूटिया = जुड गये, भिड गये, लडे । सारीस = तुल्य, समान । वाहां = वार, चोट । झडे = गिर गये । धुनुधार = रामचद्र । हेर = देखकर । कप = कपि, वंदर । भाल = भालू, रींछ । अणपार = वेहद । सारी = सम्पूर्ण ।

भावार्थ—पृथ्वी पर मास का कीचड हो गया और हड्डियों के पर्वत बन गये । रक्त मिलने से समुद्र लाल हो गया है । रामचंद्र और दश मस्तक वाला रावण दोनों अडिग है । दोनों तरफ से भयानक लड़ाई हो रही है ॥ १ ॥

अप्सराये वरमाल डाल २ कर शूर वीरों को वरती है (अर्थात् अपना पति बनाती है) गिद्ध आदि पक्षियों के मन के ताले खुल गये हैं और वे तृप्त हो गये हैं अर्थात् वे पक्षीगण इच्छित मांस खाकर तृप्त हो गये हैं। शेष नाग बहुत भार पड़ने के कारण अपने मस्तक को तानते हैं। और महादेवजी मुडो की माला बनाते हैं ॥ २ ॥

कटारियां, बाण, सेल, खंजर और छुरी की लगने से अपार अंग कट २ कर पीले पड़ गये हैं। सुर और असुरों के योद्धा दोनो बराबर भिड़ रहे हैं। और आपस मे लगातार एक से वार कर रहे हैं।

(इतने में) धनुर्धारी रामचद्र के बाणों से रावण के दसों मस्तक कट कर गिर गये। यह देख कर बंदर और रींछ बहुत ही प्रसन्न हुये। सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यो ने श्रेष्ठ वाणी से सुयश (जय जयकार) कहा और विमाणों में बैठ कर देव गणों ने पुष्प वर्षा की।

विशेष—इस गीत में क्रम से वर्णन नहीं है। प्रथम दोनों सेनाओं का वर्णन चाहिये था फिर शस्त्र प्रहार का, फिर अप्सराओं का, फिर मांस आदि का, किन्तु ऊपर इस तरह वर्णन नहीं है अतः इसमें निनग दोष है।

अथ पांगलो दोष

गीत

हालैं जिण अगर घूमता हसती,
ताता गयण झूमता तुरंग।
पैदल प्रबल रथां हृदपंगी,
चतुरंगी अत फौज सुचंग ॥ १ ॥
सिंघासण चढ़णैं नर आसण,
सासण सह मानै संसार।
खतम खुसी अनखूट खजानां,
निरमल चंद मुखी ग्रह नार ॥ २ ॥

सुजस आठ दिसां सरसावैं,
आठ दिसां खावै अरिताप ।
परतष ही दीसरै प्राणी,
पिरभू भजण तणों परताप ॥३॥२९॥

शब्दार्थ—हालै=चलते हैं। अगर=आगे। हसती=हाथी। ताता=तेज। गयण=आसमान। हृदपगी=बहुत यशवाले। सुचंग=बलवान। चढणें=चढ़ने के लिये। नर आसण=पालकी। सह=सब। खतम=परम, अत्यत। अणखूट=अटूट। परतख= प्रत्यक्ष। दीसैरै=दिखलाई पड़ता है। तणो=का। परताप=प्रताप।

भावार्थ—जिसके आगे घूमते हुये हाथी आकाश मे उड़ने वाले तेज घोडे, बलवान पैदल फौज, अत्यत शोभा वाले रथ और बहुत बलवान चतुरंगिनी फौजे—चलती है। जिसके पालकी चढ़ने को है, सब ससार जिसका शासन मानता है, जिसको अत्यन्त आनंद प्राप्त है, जिसके पास अटूट खजाना और चन्द्रमुखी गृहदेवी है और जिसका आठों दिशाओं में सुयश छाया हुआ है और आठों दिशाओं मे शत्रुगण जिसको धाक मानते हैं। हे प्राणी उसको ये बाते ईश्वर भजन के प्रताप से प्राप्त हुई हैं, यह प्रत्यक्ष ही दिखलाई पड़ता है।

विशेप—इस गीत के प्रथम द्वालै (छद) के द्वितीय पद मे १६ मात्रा हैं किन्तु १५ मात्रा चाहिये थी और तीसरे द्वालै के प्रथम पद मे १५ मात्रा है और १६ होनी चाहिये थीं। इस तरह जहाँ नियम विरुद्ध अधिक न्यून मात्रा होती है वहाँ पांगला दोप होता है।

अथ जात विरोध दोष

गीत

अवनी में जिके भलांई आया,
करै सदा सुकरतरा काम ।

दान सदा वितसारु देवै,
नित रसणा लेवै हरिनाम ॥१॥
गिणजै सद च्यारी जिंदगाणी,
इमै विरद धरियाँ अखत ।
आरंभै दौलत पुन पाणां,
पुणँ सुजाणां सीतपत ॥२॥
धन वे पुरष वडा पणधारी,
खलक सिरोमण सुजस खटै ।
उमगे दान ऊधमैं आचां,
राम राम मुखहूत रटै ॥३॥
देह जिकण वातां अै दोई,
तिकै सदाई तीखा ।
बीजा जड जंगम वसुधारा
सारा जीव सरीखा ॥४॥३०॥

शब्दार्थ—सुकरतरा = सुकृत के, पुण्य के । वितसारु = यथाशक्ति । रसणां = जिह्वा से । सद = सच्ची । जिंदगाणी = जीवन । अखत = अच्छा । पाणां = हाथ । पुणँ = नवै, कहे । पण = प्रण, प्रतिज्ञा । खलक = संसार । खटै = प्राप्त करै । ऊधमै = देवै । आचां = अंजलिभर, हाथ भर । तिकै = वे । तीखा = तीक्ष्ण, तेज । जंगम = चेतन, चर । सरीखा = बराबर ।

भावार्थ—वास्तव में संसार में वे ही आये हैं जो सदा पुण्य कार्य करते हैं यथाशक्ति दान देते हैं और नित्य भगवान का भजन करते हैं। उन्हीं का जीवन संसार में सच्चा है जो इन दोनों यशों को पूर्णतया धारण करते हैं—हाथ से पुण्य कार्यों में धन देवै और सीतापति रामचंद्र का भजन करै वे महान प्रतिज्ञा धारी पुरुष धन्य हैं जो संसार में सर्व श्रेष्ठ

यश को प्राप्त करते हैं। जो सानंद अंजलि भर कर खूब दान देते हैं और मुख से राम नाम लेते हैं। देह वही है जिसमें ये दोनों बातें हैं और वे ही संसार में तीक्ष्ण है। वरना संसार के चराचर सब जीव समान है।

विशेष—इस गीत में प्रथम द्वाला वेलिया गीत का, द्वितीय द्वाला खुडद सैणोर का, तृतीय सोहण गीत का और चतुर्थ जांगडे गीत का है। अतः जिस जाति का गीत हो उसमें उसी जाति के गीत का द्वाला आना चाहिये। यदि अन्य का लाना है तो वेलिया सहणोर और खुड़द सणोर का लाना चाहिये। अतः इस गीत में जांगडे गीता का द्वाला आने के कारण जाति विरुद्ध दोष है।

अथ अपस दोष

गीत

नदियाँ सुत तासु सुतारो नायक,
जिणनूं काठो झालै।
जलसुत मीत तासु-सुत जिणनूं,
घात कदै नँह घालै ॥१॥
गिरतनया पत सिख प्रभ गंजण,
सुध निसबासर सेवै।
जादव पत राणी बंधव जिहि,
दंड कदै नह देवै ॥२॥
रावण भ्रात जेणरो राजा,
रंग तिकणसूं रेलै।
छाया पुत्र सहोदर छाकै,
छोह न तापर छेलै ॥३॥

गोतम सुता तास सुत नागर,
धीरज सुचितां ध्यावै ।
प्रभु वैसुख जिणरो रिपु प्राणी,
ताह न कदै सतावै ॥४॥२१॥

शब्दार्थ—पत = पति, स्वामी । काठो = मजबूती से । झालै = पकड़ना, भजना । सिष = शिष्य । ग्रभ = गर्व । कदे = कभी । सुध = सुधि, बुद्धिमान । रैलै = रत होना । छायापुत्र = शनिश्चर । छाके = मतवाला । छोह = क्रोध । छेलै = करै । नागर = स्वामी, चतुर । वैसुख = विमुख ।

भावार्थ—नदियो का स्वामी समुद्र, उसकी कन्या लक्ष्मी का पति, विष्णु—उन्हे दृढ़ता से जो भजता है, उसे जल का पुत्र-कमल, और उसका मित्र—सूर्य, उसका पुत्र जम—कभी भी कष्ट नहीं देता है। गिरि (हिमालय) की पुत्री-पार्वती, उसका पति-महादेव, उनका शिष्य-रावण, उसके गर्व को नाश करने वाले रामचंद्र भगवान की जो बुद्धिमान रातदिन सेवा पूजा करता है, उसे-यादवों के स्वामी—श्रीकृष्ण उनकी स्त्री—यमुना, उसका भाई यमराज—दंड कभी भी नहीं देता है। रावण का भाई—विभिषण, उसके राजा—श्रीरामचंद्र भगवान् से जो प्रीति करता है, उसके ऊपर—छाया का पुत्र—शनिश्चर उसका भाई यम—क्रोध नही करता है । गोतम की पुत्री—अंजना—उसके पुत्र का स्वामी—रामचंद्र का जो मनुष्य चित्त लगाकर ध्यान करता है, उसे—ईश्वर से विमुख रहनेवालों का शत्रु—यमराज—कभी नहीं सताता है।

विशेष—उक्त गीत में नदियां का स्वामी (समुद्र) की पुत्री (लक्ष्मी) का पति (विष्णु) आदि जो दृष्टि कूट पद दिये जाने के बजाय यदि सरल रीति से लक्ष्मीपति आदि कहा जाता तो अर्थ स्पष्ट हो जाता किन्तु ऐसा नहीं होने के कारण—अर्थात् अर्थ की अस्पष्टता के कारण इस गीत में अपसदोष है ।

'अथ नालच्छेद दोष'

गीत

नरहर समरतां नह बीते नाणों,
लवसूं तिको न लेवै ।
परनारी निरखै कर प्रीतां,
दाम हजारां देवै ॥१॥
लेता नाम विदाम न लागै,
विगत जिका नह व्यापै ।
आछी त्रिया देख अवरांरी,
सहसां माल समापै ॥२॥
तरसै देख अवर बनतावां,
भूलै रघुवर भोला ।
जद करसी पिसतावो जमरा,
दूत फिरैला दोला ॥३॥
सुचितां होय भजो साहबनै,
पामै सदगत प्राणी ।
बेद पुराण कहै परवामां,
नरकां तणी निसाणी ॥४॥३२॥

शब्दार्थ—नरहर = नरहरि, नृसिंह । समरता = स्मरण करते हुते । नाणो = द्रव्य, दौलत । लव सूं = ध्यान । बिदाम = बादाम-मात्र, कोड़ी मात्र । विगत = बुरी गति । आछी = अच्छी । अवरारी = अन्यों की । सहसां = हजारों का । समापै = समर्पण करना । बनतावा = बनिताओं

१—पाठांतर—छदाम ।

को, स्त्रियो को। भोला = मूर्ख। जद = जब। पिसतावो = पश्चाताप। दोला = चारों ओर।

भावार्थ—ईश्वर का स्मरण करते हुए द्रव्य समाप्त नहीं होता है। किन्तु प्रीति से कोई भी उसका नाम नहीं लेता है। और अत्यन्त प्रीति के साथ पराई स्त्रियों को देखते है और उनके पीछे हजारों ही रुपये दे डालते हैं। ईश्वर का नाम लेने में तो कोड़ी भी नहीं लगती है और बुरी गति भी नहीं मिलती है। किन्तु (मनुष्य ऐसा तो करते नहीं हैं) अन्य पुरुषो की अच्छी सुंदर स्त्री को देखकर हजारों ही का माल समर्पण कर देते हैं।

और अन्य मनुष्यों की स्त्रियों को देखकर तरसते हैं—ऐसे मूर्ख लोग रामचंद्र भगवान को भूल गये हैं। वे मनुष्य उस समय पर पश्चात्ताप करेंगे जिस समय यमराज के दूत चारों ओर फिरेंगे। अतः स्थिर मन से ईश्वर का भजन करो—जिससे जीव अच्छी गति प्राप्त करै। परस्त्री को—वेद और पुराण नरक का चिन्ह कहते हैं।

विशेष—इस गीत में प्रथम ईश्वर भजन और फिर परनारी—प्रेम वर्जित वर्णन दो द्वालों तक क्रमबद्ध है। तीसरे में आकर उसका क्रम भग हो गया। अतः जहां इस तरह जथाओ का क्रम भंग हों वहां नालच्छेद दोष होता है। (जथाओं का वर्णन आगे दिया गया है)

अथ पखतूट दोष

'गीत'

अठी रामरा'सुभड़ नैं सुभड़ रावण उठी,
लंकरे जोरवर खेत लड़वा।
तीर सेलां छूरां झीक तरवारियां,
वाजिया विनै ही रंभ—वरवा ॥१॥

उडै पग हात किरका हुवै अंगरा,
वहै रत जेम सावण वहाला।
आप आपो वरी जोयनै आड़ियाँ,
लड़ै रिण भलभला निराताला ॥२॥
तहक नीसांण गिरवांण हरखांण तन,
चितां सरसाण रँभगाण चालै।
निडर रिषरांण गणपाण वीणा नचै,
भाण रथतांण घमसांण भालै ॥३॥
हणे कुंभेणसा जोधहर श्रोहथां,
करै कुंण तेण परमाण काया।
जगत सारो अजूं साखदे जिकणरी,
खोपरी गुलेचा भीम खाया ॥४॥२३॥

शब्दार्थ—अठी = इधर। उठी = उधर। सुभड = सुभट, योद्धा। जोखर = जबरदस्त। लड़वा = लड़ने को। झींक = चल रही है। बाजिया = लड़े। बिनैं = दोनों। किरका = टुकड़े २। रत = रक्त; खून। बहाला = नाले (घोर वर्षा से मार्ग में जो पानी बहता है उसे बहाला कहते है) वरी = बराबर। जोयनै = देखकर। आडिया = जोडी। रिण = रण। भलभलां = अच्छा। निराताला = निशंक। नीसाण = नकारा। सरसाण = प्रफुल्लित हुये। रंभगाण = अप्सराएँ गाने लगीं। रिषरांण = नारद। घमसाण = घमासान युद्ध। भालै = देखने लगे। रथतांण = रथ को ठहरा कर। कुंण = कौन। तेण = उस। अजूं = आजतक। साष = साक्षी। गुलेचा = गुलाच, डुबकी।

भावार्थ—इधर रामचंद्रजी के योद्धागण और उधर रावण के योद्धागण लंका के जबरदस्त खेत (युद्ध भूमि) में तीर सेल छुरी तरवार से अप्सराओं को बरने के लिए लड़े—पग और हाथ उड रहे है

और शरीर के टुकड़े २ हो रहे हैं, और श्रावण में जैसे मार्ग में पानी के नाले बहते हैं उसी तरह रक्त बह रहा है। अपने २ बराबर की जोड़ी देखकर अत्यंत निशंक होकर युद्ध में वीरगण लड़ रहे हैं। निसाण बज रहे हैं देवगणों के अंग हर्षित हो रहे हैं, चित्त में प्रफुल्लित होती हुई अप्सरायें गा रही हैं, नारद ऋषि हाथ मे वीणा लेकर निशंक नाच रहे हैं और सूर्य निज रथ को रोक कर युद्ध देख रहे हैं। रामचंद्र के हाथों से कुंभकर्ण जैसा योद्धा मारा गया, उसके शरीर का वर्णन कौन कर सकता है। आज भी सम्पूर्ण संसार इसकी साक्षी देता है कि उसकी खोपड़ी में भीम ने कितनी ही गुलांचें (डुबकियें) खाई है।

विशेष—(१) इस गीत के प्रथम दो द्वाले में कच्ची जोड़ है अर्थात् अनुप्रास रहित पदों का समावेश है। आगे पक्की जोड़ याने अनुप्रास सहित पद है। इस प्रकार जहाँ अनुप्रास रहित और सहित दोनों पदो का समावेश हो वहाँ पखतूट दोष होता है।

(२) रामचंद्र ने रावण के मरने पर उसकी रानी मंदोदरी से प्रतिज्ञा की थी कि द्वापर में कृष्णावतार के समय तुम्हें जबरदस्त युद्ध दिखाऊँगा। जब महाभारत युद्ध होने लगा तो श्रीकृष्ण ने वह प्रतिज्ञा याद कर भीम को मंदोदरी के लिवा लाने के लिये लंका भेजा। जब वह लका गया और श्रीकृष्ण का संदेश कह सुनाया तो मंदोदरी ने कहा कि कल यहाँ से रवाना हो चलेंगे। दूसरे दिन प्रातःकाल भीम संध्या आदि कर्मों के लिये लंका से बाहर गये तो उन्हे एक तालाब नजर आया। वे स्नान के लिये उसमें कूदे किन्तु वे वहीं फँस गये बड़ी कठिनता से निकले। जब वे लौटकर मंदोदरी के पास पहुँचे तो उसने इनसे देरी का कारण पूछा। इन्होंने सब बातें बता दीं। तब उसने जवाब दिया कि वह तालाब नहीं है—वह तो मेरे देवर कुंभकर्ण की खोपड़ी है जिसमें वर्षा का पानी भरा हुआ है। यह सुनकर भीम बहुत लज्जित हुये। और मंदोदरी ने पूछा 'कि उस युद्ध में तुम्हारे जैसे ही योद्धा हैं वा

तुमसे भी बड़े बड़े ? इसका उत्तर भीम संतोषप्रद नहीं दे सके तब मंदोदरी ने कहा—जिस युद्ध के बड़े बड़े वीर मेरे देवर की खोपड़ी में गुलाचें मारनेवाले हैं वह युद्ध उस युद्ध की क्या बराबरी कर सकता है। यह कह कर भीम को चलने से इनकार कर दिया।

अथ बहरो दोस

गीत

छके जोम सूं जाय जमराण सा छेडिया,
लड़े अरि रेडिया खेध लागा।
भिडे भाराथ अणपार दल भांजिया,
वीर भागो नहीं सारवागा ॥१॥
दुभल जिण भुजांबलहूत आठूं दिसां,
लंघ सामंद कीधी लड़ाई।
जीत लीधी जमी कठैथी जेणरी,
पराजै हुई नँह फतै पाई ॥२॥
प्रबल सुर असुर जिण लगाया पागडै,
जिको खल चांपड़ैं खेत जारां।
पाडियो राम दसकंठ पीठाण में,
सबद जै जै हुवा लोक सारां ॥३,३४॥

शब्दार्थ—जोम = गर्व। रेडिया = उथल पुथल करना। खेदलागां = घेरकर। सारवागा = तरवार बजने पर। दुभल = जबरदस्त। लंघ = उल्लंघन करके। सामंद = समुद्र। कठैथी = जहाँ कहीं भी थी। फतै = जय। पागड़ैं = चरणों पर। चांपड़ै = प्रकट, दबाया। खेत = युद्ध में। जारां = प्रकट हुआ था। पाड़ियो = गिरा दिया। पीठाण में = युद्ध में।

भावार्थ—यमराज को छेड़ने की तरह गर्व से मतवाले शत्रुओं से जाकर भिड़ गया और उन्हें घेर कर उनकी सेना को मार गिराया। तरवार बजने पर भी वह वीर युद्ध से नहीं भगा। जिसकी भुजाओं के बल से आठों दिशायें कष्ट सहती थी ऐसे वीर से उस वीर ने समुद्र को उलांघ करके (पार करके) युद्ध किया और जहां कहीं भी शत्रु की जमीन थी सब जीत ली। उसकी पराजय (हार) नहीं हुई। उसने विजय प्राप्त की। जिसने बलवान देवताओं और राक्षसों को अपने चरणों पर लगाया था और जो दुष्ट उस जबरदस्त युद्ध में सन्मुख प्रगट हुआ था, रामचंद्र ने उस रावण को युद्ध में दबाया और पटक दिया। इससे सम्पूर्ण लोक में जय २ कार शब्द हुआ।

विशेष—इस गीत में "वीर भागो नहीं सारवागां" और "पराजै हुई नह फतै पाई" दोनों पदों में "नहीं और नह" शब्द दोनों ओर लगते हैं। इनके दूसरी तरफ लगने से अर्थ नितांत उलटा हो जाता है। अतः इस तरह से शब्द योजना नहीं करनी चाहिये। इस गीत में इस तरह दोनों ओर लगते हुए शब्द आने के कारण बहरा दोष है।

ये दश दोष गीतों की वयण सगाई को नष्ट कर देते हैं। इन्हीं दोषों के कारण सगाई भी छूट जाती है। क्योंकि—अंधा, सफेद दागवाला, नपुंसक, पागल, पांगला, जाति विरुद्ध अर्थात् दस्सा, मिरगी रोगवाला, नाल भ्रष्ट, पक्षाघात रोगवाला और बहरा—जो मनुष्य होता है उसे कोई भी अपनी पुत्री नहीं दे सकता।

दोहा

दाखे सो दस दोषरो, निरणैं निपट अनूप।
वयण सगाई वरणवूं रीति किती कविरूप ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—दाखै = कहा है। निरणैं = निर्णय। वरणवूं = वर्णन करता हूं। किती = कितनी ही।

भावार्थ—दश दोषो का वर्णन जो ठीक २ निर्णय करके मैं कह चुका हूँ। अब कवियों के मतानुसार वयण सगाई की कितनी ही रीतियें वर्णन करता हूँ।

अथ वयण सगाई निरूपण।

चौपाई।

आ, ई, ऊ, ऐ, य, व मत, आणौं,
ज, झ, व, ब, प फ, न, ण, ग, घ, विवजाणों।
त, ट, ध, ढ, द, ड, च छ, मंछ जतावै,
वेदग अै अखरोट बतावै ॥३६॥

भावार्थ—आ, ई, ऊ ऐ, य और व अपनी बुद्धि मे लावो। जझ, बव पफ, नण, गघ, तट, धढ, दड, और चछ इन दो २ को जानो। मछ कवि इनको कविता में वयण सगाई के अक्षर बतलाता है।

विशेष—ऊपर आकारादि जो षट् अक्षर हैं उनमें से कोई दो २ वयण सगाई के लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं। और आगे जझ आदि जो अक्षर हैं वे जिनके साथ उनका युग स्थापित किया गया है उन्हीं के साथ वे वयण सगाई में प्रयुक्त हो सकते हैं।

दोहा

आकारादि षट् वरण ये, जुग २ अवर सुजाण।
इधक और सम न्यून इम, चित्त तीनूं पहिचाण ॥३७॥

भावार्थ—मंछ कवि कहता है—हे सुजान अकारादि ये जो षट् वर्ण हैं और अन्य अक्षर युग रूप में हैं इनमें भी अधिक सम, और न्यून तीन प्रकार के अक्षर हैं। उन्हें चित्त में पहिचान लो।

आद तिकोयज अंत में, इधक सु खुलतैं अंक।
अकारादि कहिया यता, सम अखरोट असंक ॥३८॥

जभ्क ववादि आषर जिके, आणैं सुकवि उमाह।
ताहि मंछ कवि कहते हैं, न्यून मित्र निरताह ॥३९॥

भावार्थ—जो वर्ण आदि में हो वही अंत में हो वह तो स्पष्ट ही अधिक है। अकारादि ये जो षट् वर्ण कहे गये हैं ये सम अक्षर हैं। जभ्क बव आदि अक्षरों को जो श्रेष्ठ कवि उत्साह पूर्वक लाते हैं उसे मंछ कवि कहते हैं—हे मित्र यह निश्चय न्यून अक्षर हैं।

'अथ वयण सगाई आखर धरण विधि'।

वरण मित्त जू धरणविध, कवियण तीन कहंत।
आद अधिक सम मध अवर, न्यून अंक सो अंत ॥४०॥

भावार्थ—वर्ण मैत्री के जो रखने की विधि है वह भी कविगण तीन प्रकार की बतलाते हैं। आदि २ में जो अक्षर रखे जाते हैं वह अधिक हैं, आदि मध्य में रखने का नियम सम है और आदि और अंत में रखना न्यून है।

अथ अधिक अखरोट उदाहरण

विकट करो तीरथ वरत, धरा भेष के धार।
विनै नाम रघुवीररै, परत न उतरै पार ॥४१॥

भावार्थ—चाहे कितने ही कठिन व्रत और तीर्थ करो, और चाहे पृथ्वी के अंदर कितने ही प्रकार के भेष धारण कर लो, किन्तु विना रामचंद्र के नाम के पार नहीं उतर सकते।

विशेष—उक्त दोहे में रेखांकित शब्दों के आदि २ के अक्षरों से वयण सगाई मिलाई गई है। अतः यह अधिक है।

'सम अखरोट उदाहरण'

नांम लियां थी मानवां, सरकै कलुष विसाल।
मह जैसे मेटैं तिमिर, रसम परस किरमाल ॥४२॥

शब्दार्थ—सरकै = दूर होय। कलुष = पाप। मह = पृथ्वी। रसम = रश्मि। परस = स्पर्श करके। किरमाल = सूर्य।

भावार्थ—हे मनुष्यो! ईश्वर का नाम लेने से बड़े २ पाप इस तरह दूर हो जाते हैं। जिस तरह पृथ्वी के अंधकार को सूर्य अपनी किरणों से छूकर दूर कर देता है।

विशेष—उक्त दोहे में रेखांकित शब्दों में आदि का अक्षर और अंत में मध्य का अक्षर मिलाया गया है। अतः यह मेल समय है।

'न्यून अखरोट उदाहरण'

मरद जिके संसार में, लखजै जीव विसाल।
रात दिवस रघुनाथरा, लेवै नाम रसाल ॥४३॥

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—उक्त दोहे में रेखांकित शब्दो में अक्षरों का मेल आदि और अत अक्षर से मिलाया गया है। अतः यह मेल न्यून है।

चौथो भेद।

अरध मेल अखरोट इक, चल तुक किण कवि चाल।
नाम हेक नर रामरै, किता कटै जगजाल ॥४४॥

भावार्थ—किसी कवि की यह भी चाल है कि वर्ण सगाई का मेल तुक के अधबीच ही में मिला देता है। हे मनुष्य! एक राम नाम से ही कितने ही संसार के जाल कट जाते हैं।

विशेष—वर्ण सगाई के चौथे भेद मे जैसा रेखाकित शब्दों से प्रतीत होता है कवि लोग बीच ही में अक्षर मिला देते हैं।

'मोहरा मेल'

वरण मित्र दाखे त्रिविध, त्रिय अखरोट, जिलंत।
भणैं मंछ तिण भांत सूं, मोहरा त्रिविध मिलंत ॥४५॥

शब्दार्थ—वरणमित्र = वर्णमैत्री । अखरोट = अक्षरावलि । जिलंत = मिलती है । भांत = भाँति ।

भावार्थ—सरल ही है ।

'अधिक मोहरा उदाहरण'

वारज द्दग वारद वरण, गहर धरण गुणगाथ ।
करुणानिध अकरण करण, नमो नमो रघुनाथ ॥४६॥

शब्दार्थ—वारजद्दग = कमल से नेत्र । वारद = वद्दल । गहर = गंभीर ।

भावार्थ—सरल ही है ।

विशेष—उक्त दोहे मे तुकांत (मोहरा) चार २ वर्णों की होने के कारण अधिक (उत्तम है) है ।

'सम मोहरा उदाहरण'

तिरुो चहै भवपार तो, उवर धार हरि येक ।
तिणरै नाम प्रताप थी, उधरे जीव अनेक ॥४७॥

शब्दार्थ—उवर = हृदय ।

भावार्थ—सरल ही है ।

विशेष—इस दोहे में दो वर्णों की तुकांत के साथ तीन वर्णों की तुकान्त होने के कारण मोहरा (तुकांत) सम (मध्यम) है ।

'न्यून मोहरा उदाहरण'

गुणां करै रीझव गुणी, कव सल राज कंवार ।
जिकण जिसो फिर जगत में, अवरन कोय उदार ॥४८॥

भावार्थ—कौशल राजकुमार—रामचंद्र भगवान्—गुणियों के

गुणों पर रीझ—दान करते हैं। फिर उनके जैसा दूसरा संसार में कौन उदार है !

विशेष—उक्त दोहे में न्यून मोहरा (तुक) है। क्योंकि इनके शब्दों के वर्ण पूर्ण नहीं मिलते हैं।

इति त्रिविध मोहरा समाप्तं।

गुणो नाम आठां गणां, लक्षण कह्या न लाय।
उदाहरण कहसूं अबै, बड़ गुंण[1] गीत बणाय ॥४९॥

इति श्रीरघुनाथ रूपक मुरधर देस भाषा कवि मंछराम
विरचितोयं कविता गुण दोषादिनाम प्रथमो
विलासः समाप्तं।

---

१ गीत प्रबंध गिणाय-पाठांतर है।

अथ द्वितीयो विलासः ।

दोहा

लघु गुरु दधगण दोष लिख, वरणे सकल बणाय ।
मंछ कहैं दाखूं अबै, गीत प्रबंध गिणाय ॥ १ ॥

शब्दार्थ—दध = दग्ध । दाखू = कहता हूँ ।
भावार्थ—सरल ही है ।

बरणों उकतां आदबल, सरस जथावां साज ।
मत अनुसारैं मंछ कह, रचूं गीत कविराज ॥ २ ॥

शब्दार्थ—उकता = उक्तिये । आद = आदि । बल = वलि, फिर ।
भावार्थ—सरल ही है ।

'उक्त लछन'

भाषै धारण बुध भला, सखरा बचन सुजाण ।
कहै मंछ कवि जिकणनूं, उक्त सदाहिज आंण ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे सुजान ! बुद्धिमान पुरुष श्रेष्ठ वचनो द्वारा जो कुछ कहते हैं उसे ही सदा उक्ति जानो ।

उक्त नाम ।

परमुख सनमुख परामुख, श्रीमुख बले सुजाण ।
कहै मंछ कवि जुक्तकर, च्यार उक्त पहिचाण ॥ ४ ॥

भावार्थ—सरल ही है ।

अथ परमुख उक्त

वरणनीयनूं वरणजे, वचन अवरसूं वेस ।
परमुख उक्तसु प्रीतसूं, आखो गुण अवधेस ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—वरणजे = वर्णन करिये। अवर = अन्य। आखो = कहो।

भावार्थ—वर्णनीय का अन्यपुरुष के वचनों से वर्णन कराया जाय—वह परमुख उक्ति है। उसमें रामचंद्र भगवान के गुण प्रीति से कहिए।

उभै भेद परमुख चकल, समझ कहै कवि संत।
पहिलो शुद्ध प्रमानिये, गरवत बियो गिणंत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—उभै = उभय, दो, बियो = दूसरा।

भावार्थ—सरल ही है।

अथ परमुख उक्त

'शुद्धभेद, उदाहरण-शृंगाररस'

छप्पय

वारद विद्युत वरण, पीत अरु धरण नीलपट।
तरह मदन रत तणी, देख दिल दरप जाय दट ॥
पत आलंबन प्रिया, प्रिया आलंबन पीव वर।
हेक प्राण दुय देह, प्रीत अणरेह परसपर ॥
नह हुई न होवैं है नहीं, सो छब जोड़ समानकी।
मिल वसो मंछ मन मंदिरां, जो श्री रघुवर जानकी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—वारद = मेघ। तरह = छवि। रत = रति। तणी = की। दरप = गर्व। दट = दबना। पत = पति। पीव = पति, प्रिय। हेक = एक। दुय = दो। अणरेह = अपार।

भावार्थ—जिनका मेघ और बिजली के समान वर्ण है, जो पीला और नीला वस्त्र पहिनते है। उनकी छवि को देख कर कामदेव और रति का गर्व दब जाता है। पति का प्रिया और प्रिया का पति आलं-बन है। एक प्राण और दो शरीर है और उनकी आपस में अपार

प्रीति है। इस युगल रूप के समान कोई भी न तो हुआ न कभी कोई होगा और न कोई है। मंछ कवि कहता है कि ऐसे राम और सीता मेरे मनमंदिर में निवास करें ।

विशेष—अन्य पुरुष का यश अन्य पुरुषों के आगे वर्णन करना यह शुद्ध परमुख उक्ति है। उक्त छप्पय में यही उक्ति है क्योंकि रामचंद्र और सीता का वर्णन मंछ कवि ने पाठकों के सन्मुख वर्णन किया है।

इस छप्पय में संयोग शृंगार है। पूर्ण प्रीति शृंगाररस के स्थाई भाव रति को प्रकट करती है ।

अथ गरबत (गर्भित) परमुख उक्त और विभछ रस

छप्पय

लीध ओट प्रहलाद, पिता तद कोप प्रगासे ।
जिणरै हित जगदीस, भांज खँभ नरहर भासे ॥
हिरणाकुस नै हणे, निडर फाडे उर नख्खे ।
खलकाया रत खाल, भरे डाचां पल भख्खे ॥
आंतडा तास पहरे उवर, दूर कियो दुख दासरो ।
राख जै नेक आलम रटै, एक उणीरों आसरो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—ओट = आश्रय। तद = तब। भांज = तोड़कर। रत = रक्त। डाचां = क्रोध से दाँतों द्वारा काटना, बटके खाना। खलकाया = बहा दिये। पल = मास। आंतड़ां = अँतड़ियें। तास = उसकी। उवर = हृदय। उणीरो = उसीका। आसरो = सहारा, आश्रय। आलम = संसार।

भाषार्थ—जब प्रह्लाद ने ईश्वर का आश्रय ग्रहण किया तब उसके पिता हिरण्यकश्यप ने बहुत क्रोध किया। उसी प्रह्लाद के लिये ईश्वर ने खंभ को विदीर्ण करके नरहरि रूप से अपने को प्रकट किया। हिरण्यकश्यप को मार नाखूनों से उसका हृदय चीर डाला और रक्त

के नाले बहाये और उसके मांस को मुँह से काट २ कर खाया। उसकी अंतड़ियों को अपने वक्षस्थल पर धारण करी और अपने भक्त का दुःख दूर कर दिया। इसीलिये तमाम संसार कहता है कि एक उसी ईश्वर का आश्रय ग्रहण करो।

विशेष—अन्य पुरुष को अन्योक्ति द्वारा कुछ कहा जाय—वह गरबत (गर्भित) परमुख उक्ति है। इस छप्पय में प्रह्लाद की कथा के मिस से ईश्वर की भक्तवत्सलता कही गई है।

घृणायुक्त कार्य का वर्णन होने से वीभत्स रस है।

दोहा

अण भजिया भजिया तणी, दीखै प्रतष दुसाल।
भिसटा तो वायस भखै, मोती भखै मराळ ॥९॥

शब्दार्थ—अण भजिया = जिन्होंने ईश्वर का भजन नहीं किया है। प्रतष = प्रत्यक्ष। दुसाल = दो बात। भिसटा = भ्रष्टा।

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—इस दोहे में भी गरबत परमुख उक्ति है।

अथ सन्मुख उक्त

दोहा

उभग प्रसंगी सूं वयण, चवैं सुकवि चित चाह।
कहै मंछ कवि जिकणनूं, सनमुख उक्त सराह ॥१०॥

शब्दार्थ—प्रसंगी = जिसका प्रसंग (बात) चल रहा हो। चवैं = कहैं।

भावार्थ—मंछकवि कहता है—जिसका प्रसंग हो उससे ही कवि लोग वचन कहते हैं—उसीकी सनमुख उक्ति से सराहना की जाती है।

परमुख जिम ही पेखजे, सनमुख उक्त सुजाण ।
भेद दोय जिणरा भणां. सुध गरवत सरसांण ॥११॥

शब्दार्थ—पेखजे = देखो ।

भावार्थ—सरल ही है ।

'अथ शुद्ध सनमुख उक्त भयानक रस'

'छप्पय'

चहूँ चक्क चल चलिय सेस चलचलिय सहस सिर ।
कमठ पीठ कलमलिय थह्ण दलमलिय सुचर थिर ॥
दहले दिग्गज दिसा मेर मरजादा मुक्किय ।
अदल वदल जल उदध चंडि सिध आसन चुक्किय ॥
भयभीत हुआ चौदह भुवण, श्रवै गरभ तिय दिस दसिय ।
रघुनाथ कहो सभ्म डवररिण, कमर आज किणपर कसिय ॥१२॥

शब्दार्थ—चक्क = दिशा । थह्ण = स्थान । दहले = डर गये । मुक्किय = त्यागदी । डवर = आडंबर ।

भावार्थ—कवि रामचद्र भगवान से पूछता है—हे रघुनाथ ! बताइये, आज आपने यह आडम्बर सजाकर युद्ध के लिये किस पर कमर बाँधी है जिससे चारों दिशाये चलायमान हो गई हैं, शेष के हजार मस्तक सलसला गये हैं, कच्छप की पीठ कलमला गयी है, चराचर जीवों के स्थान दले गये हैं, दिशाओं के हाथी डर गये हैं, मेरू पर्वत ने अपनी मर्यादा को त्याग दिया है, समुद्र का जल उथल पुथल हो गया है, चंडी देवी और सिद्ध पुरुषों के आसन हिल गये है, चौदह भुवन भयभीत हो गये हैं और गर्भवति स्त्रियों के गर्भ गिर गये हैं ।

विशेष (१) रामचद्र का प्रसंग है और कवि उन्हीं के सन्मुख वर्णन करता है अतः शुद्ध सन्मुख उक्ति है ।

(२) इस छप्पय में भय स्थाई भाव है अतः भयानक रस है ।

अथ गरवत (गर्भित) सनमुख उक्त शांतरस
'छप्पय'

रात दिवस इणरीत, प्रगट घडियाल पुकारै।
मिलियो मिनखा जनम, लाख चवरासी लारै॥
खाली तिकोन खोय, जोय वहतो जग जालम।
पडिया त्यांरी खबर, मिलै नँह की घी मालम॥
चेतरे अजूँ मनडा चतुर, रट रट श्रीसीता रमण।
करुणा निधान सूंगहज कर, गमैं सहज आवागमण॥१३॥

शब्दार्थ—मिनखा = मनुष्य। लारै = पीछे। जोय = गौर से देख। खडिया = चले गये। त्यारी = उनकी। गहजकर = हाथ पकड़, गाढ़ी प्रीति कर। दमैं = खो जाय, छूट जाय।

भावार्थ—रात और दिन घडियाल यह पुकार रहे है कि यह मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों के पश्चात् प्राप्त हुआ है। उसे व्यर्थ मे ही मत व्यतीत कर, गौर से देख यह झूठा संसार यों ही जा रहा है। जो मनुष्य यहां से चले गये है उनकी खोज खबर मालूम करने पर भी नहीं मिलती है। हे चतुर मन! अब भी चेत, और श्रीराम-चद्र भगवान् का भजन कर और उन करुणा निधान से प्रीति कर जिससे सहज ही मे अवागमन छूट जावैगी।

विशेष (१) अन्योक्ति के द्वारा अर्थात् अन्य बात समझा कर सन्मुख पुरुष को कुछ कहा जाय—वह सन्मुख गरवत (गर्भित) उक्ति है। परमुख गरवत और सन्मुख गरवत में केवल यही भेद है कि वहां तो परमुख को अन्योक्ति कही जाती है और यहा सन्मुख कही जाती है। उक्त छप्पय मे अन्य बातें समझा कर मन को कवि समझाता है कि रामचंद्र का भजन कर, सीधे ही कवि ने भजन करने का आदेश नहीं दिया है अतः सन्मुख गरवत उक्ति है।

(२) निर्वेद स्थाई होने से शातरस है।

दोहा

कंठ मधुरसूं कोकिला, कूकै तवू निकाम ।
सुक ! तू धिन संसार में, रटै प्रात उठ राम ॥१४॥

शब्दार्थ—तवू = तो भी । धिन = धन्य है ।

भावार्थ—सरल ही है ।

विशेष—उक्त दोहे में शुक को कोयल का निकम्मापन बतला कर धन्य शब्द कहने के कारण सन्मुख गरवत उक्ति है ।

अथ परामुख उक्त

'दोहा'

वरणनीयनूं कवि बिना, जपै अवर कर जुक्त ।
सुकविमंछ तिणनूं समझ, कहै परामुख उक्त ॥१५॥

शब्दार्थ—जपै = कहै ।

भावार्थ—सरल ही है ।

विशेष—इस उक्ति को पिंगल ग्रंथों में कवि निबद्ध प्रढौक्ति के नाम से कहा गया है ।

तिकण परामुख उक्त नूं, पुणजै दोय प्रकार ।
एक जिका परमुख हुवै, सनमुख दूजी सार ॥१६॥

शब्दार्थ—तिकण = उस । पुणजै = कहना चाहिये । जिका = जो ।
भावार्थ—सरल ही है ।

'अथ परामुख उक्त में परमुख उक्त अद्भुतरस'

'छप्पैय'

सीस सरग सात में, परग सातमें पयाले ।
अरणव सांते उदर, विरछ रोमांच विचालें ॥

नदी सहस नाडियां प्रगट परवत मसपूरज ।
श्रुत दिस पवन उसास सकल लोयण ससि सूरज ॥
शिवसूँ उमंग पूछै सगत, इचरज अत आवत यहै ।
ऊ कहो मोहि प्रभु संत उर रात दिवस किणविध रहै ॥१७॥

शब्दार्थ—सरग = स्वर्ग । परग = चरण । पयाले = पाताल । अरणव = समुद्र । विरछ = वृक्ष । विचाले = बीच २ में । मसपूरज = अस्थि, हड्डी । लोयण = लोचन । सगत = शक्ति-पार्वती । इचरज = आश्चर्य । अत = अति । ऊ = वह बात । किण = किस ।

भावार्थ—(इसमें ईश्वर के विराट स्वरूप का वर्णन है) पार्वती शिव से पूछती है मुझे आश्चर्य होता है कि—जिस प्रभु का मस्तक सातवे स्वर्ग मे है, पैर (चरण) सातवे पाताल में है, सातों समुद्र जिसके पेट है, बीच बीच मे जो वृक्ष है वे उसकी रोमावलि है, हजारों जो नदिये हैं वह उसकी नाड़ियाँ हैं, पर्वत उसकी हड्डियां है, दिशायें कान हैं, पवन उसका स्वासोस्वास है, कलासहित चंद्रमा और सूरज उसके नेत्र हैं, वह ईश्वर संत पुरुषों के हृदय में रात-दिन कैसे निवास करता है ।

विशेष (१) कवि ने ईश्वर की तारीफ पार्वती द्वारा कराई है । अतः यह परामुख उक्ति हुई । ईश्वर के सन्मुख न होने के कारण परमुख उक्ति भी हुई । अतः यह परामुख में परमुख उक्ति है ।

(२) विस्मय युक्त वर्णन होने से अद्भुत रस है ।

'अथ परामुख में सन्मुख उक्त नै-करुणारस'

छप्पय

घणां घाट लंघणां, नदी परवत नद नाळा ।
वन है बेटा विकट, पंथ चालणों उपाळा ॥
कहर भूख काढ़णी, गिणे दुख किसा गुणीजै ।
कहूँ बात यह कंवर श्रवण, बै भ्रात सुणीजै ॥

दंती बराह नाहर दनुज, सो तिण ठां रह सावता।
रे पुत्र घणी विध राखजौ जनक-सुतारा जावता ॥१८॥

शब्दार्थ—घणां = वहुत। घाट = घाटियें, पर्वतों के मार्ग। उपालां = पैदल, बिना जूतों के। कहर = वहुत। वे = दोनों। दंती = हाथी। नाहर = सिंह। दनुज = राक्षस। तिणठां = उस स्थान पर। सावता = पूर्ण, तमाम। जावतां = रक्षा।

भावार्थ—कौशल्या राम और लक्ष्मण से कहती है—वहुत सी घाटिये, नदियें, पर्वत, नाले और समुद्र उल्लंघन करने होंगे, हे पुत्र! वन जाना वड़ा कठिन कार्य है और वहाँ रास्ते में विना जूतों ही के चलना होगा। भूख वहुत सहन करनी पड़ेगी, कौन वहाँ के दुःखों को गिन सकता है। मैं जो यह बात कहती हूँ वह दोनों भाई कान लगाकर सुनो—हाथी, सूअर, सिंह, और राक्षसगण ये सब वहां रहते हैं। इससे हे पुत्र! वहुत प्रकार से सीता की इनसे रक्षा करना।

विशेष—कवि ने कौशल्या द्वारा वर्णन किया है। अतः परामुख उक्ति है। और रामचंद्र और लक्ष्मण की कौशल्या द्वारा सन्मुख कहलवाने से यह उक्ति परामुख में सन्मुख उक्त है।

प्रियजन वियोगजनित शोक से करुण रस प्रकट हो रहा है।

अथ श्रीमुख उक्त

'दोहा'

वरणनीय निज वदन सूँ, वकैं सुभाषत वांण।
कहिजै सोई मंछकवि, श्रीमुख उक्त सुजाण ॥१९॥
अवर सिरीमुख उक्तरा, उभै भेद अखियात।
पहिलो कल्पत पेखजै, समझ वियो साख्यात ॥२०॥

शब्दार्थ—वदन = मुँह। वकैं = कहै। अखियात = कहै है। वियो = दूसरा।

भावार्थ—सरल ही है।

अथ श्रीमुख उक्ति में कल्पत उक्त उदाहरण

'छप्पय'

वाजिद ताण विभांण भांण तक रहैं अचंभा ।
वीर बडालां बरण रचै वरमाला रंभा ॥
डहरू संकर डहैं, करैं जोगण किलकारां ।
रुडैं सिंधुडो राग, पड़ै सर सोक अपारां ॥
राघव उमंग हँस हँस रटै, खेलूँ खगां खतंगरो ।
रिमहणे आज पूरूँरती, जुडूँ अखाडो जंगरो ॥२१॥

शब्दार्थ—वाजिंद=घोड़े । तांण=खैंचकर, ठहराकर । तकरहैं=देखेंगे । बडालां=बड़े । डहरू=डमरू । डहैं=बजावेंगे । रुडैं=बजाया जावैगा । खतंगरो=तेज तीक्ष्ण । रिम=शत्रु । पूरूँ=पूर्ण करूँगा । रती=इच्छा । सोक=एकदम चलाना ।

भावार्थ—रामचद्र हँस हँस के कह रहे है—जिस समय मैं तीक्ष्ण तरवार से खेलूँगा और शत्रुओं को युद्ध के अखाड़े में मारकर अपनी इच्छा पूर्ण करूँगा उस समय सूर्य सताश्वों को रोकर आश्चर्य से देखेंगे, बड़े २ वीरों को वरण करने के लिये अप्सराये वरमाला गूँथेंगी, शंकर डमरू बजावेंगे, योगिनियें किलकारियें मारेंगी, सिंधु राग गाया जावैगा और एकदम से बहुत बाणों की बर्षा होगी ।

विशेष (१) कवि ने कल्पना करके रामचंद्र के मुख से उक्त बात कहलवाई है । अतः यह कल्पत (कल्पित) श्रीमुख उक्ति है ।

(२) रामचद्र के उत्साह पूर्ण वाक्य होने से वीर रस है ।

'अथ साख्यात श्रीमुख उक्त रौद्ररस'

'छप्पय'

आज करूँ आरांण निकसतां तबल निसाणां ।
बीस भूजा दस बदन विहंडरालूं तज बाणां ॥

परगह सह परवार अरी सहमार उडाणूँ ।
सुरगण अंदप सुपह डहै बंध तासु छुडाणूँ ॥
निरबीज करूँ राकस निकर, मेटूँ फिकर त्रिलोक मिण ।
धारूँ बभीखलकां धणी, तो हूं दशरथराव तण ॥२२॥

शब्दार्थ—आराण = युद्ध । विहंडरालूँ = नष्ट कर डालूँ । परगह = सभा सहित । सह = सब । अंदप = गंधर्व । सुपह = राजा लोग । डहै = दुःख दिये गये । त्रिलोक मिण = सूर्य ।

भावार्थ—रामचंद्र कह रहे है—आज मैं निसाण (नक्कारे) बजवाता हुआ युद्ध करूँगा । बाणों को छोड़ २ कर बीस भुजाओं और दश मस्तकों को नष्ट कर डालूँगा । सब शत्रुओं को सभा और परिवार सहित मार डालूँगा । देवताओं, गंधर्वों और राजाओं को जो कैद मे हैं छुड़ा दूँगा । सम्पूर्ण राक्षसों को निर्बीज करके सूर्य का फिकर मिटा दूँगा और विभीषण को लंका का राजा बना दूँगा तभी मैं दशरथ का पुत्र कहाऊँगा ।

विशेष (१) उक्त छप्पयमें केवल रामचंद्र ने स्वतः यह वाक्य कहे हैं । अतः साक्षात् श्रीमुख उक्ति है ।

(२) क्रोधपूर्ण वाक्य होनेसे रौद्र रस है ।

अथ मिश्र उक्त वर्णन

दोहा

परमुख सनमुख, परामुख, श्रीमुख अवर सुवेस ।
मिश्रत मांहों मांहि मिल, बांधै उकत विशेस ॥२३॥

उदाहरण-हास्यरस

'छप्पय दोढ़ी'

नारद कहियो नाथ ! अचल हूं तप कर आयो ।
सुण अववच, दे सीख, बीच बन नगर बणायो ॥

जठै स्वयंबर जोय धीयवी मांहि नील धुज।
नृप कन्यारो नूर देख प्रभुकनै गयो द्रुज॥
एम करी अरदास, हुवै हरि सो मुख महारो।
मुळक मुणै महाराज हुसी जो चाह तिहारो॥
बांदरा तणों बणियो वदन, धरवीणा दरगह धसे।
संपेख रूप सगली सभा, हडहडहडहड हडहंसे॥२४॥

शब्दार्थ—ग्रब = गर्व। जठै = जहा। धीयवी = पृथ्वी। द्रुज = द्विज, नारद। अरदास = स्तुति। मुळक = मुसकराकर। मुणै = कहा। बांदरा = बंदर। दरगह = सभा। संपेख = देख कर। सगली = सब।

भावार्थ—नारद ने ईश्वर से प्रार्थना की कि हे नाथ! मैंने बहुत तप कर लिया है। यह गर्वोक्ति सुनकर, उसे शिक्षा देने के लिये बन के मध्य मे एक नगर का ईश्वर ने निर्माण किया। जहां पर नारद नील-ध्वज नामक राजा की कन्या का स्वयबर और (राजा की कन्या का) रूप देख कर वह ईश्वर के पास गया और यह प्रार्थना की कि मेरा मुख हरि जैसा हो जावे। ईश्वर ने मुसकरा कर कहा—महाराज! जो आप चाहते हैं वही होगा। नारद का मुंह बंदर जैसा बन गया और वे वीणा लेकर सभा में गये। उनका यह रूप देखकर सभा हड हड करके हँसने लगी।

विशेष (१) उक्त छप्पय मे प्रथम नारद की उक्ति है फिर कवि की उक्ति है, फिर नारद की इसके बाद ईश्वर की, फिर कवि की उक्ति है। अतः उक्तियो का मिश्रण है।

(२) विकृत बेश हँसी का कारण होने से हास्यरस है।

‘दोहा’

भणैं सिंगार, विभच्छ, भय, सांत सुअद्भुत सार।
करुण वीर रुद्र, हास रस, नव रस उक्त निहार॥२५॥

इति श्री रघुनाथ रूपक मुरधर देस भाषा कवि मनछाराम
विरचितोय नव उक्त नाम निरूपणं नामक
द्वितीय विलासः। (समाप्तः)

अथ तृतीयो विलासः

(बालकांडः)

अथ गीत जात

दोहा

रूप सुकविता रीतरा, चतुर मीत चित चोर।
कहूँ प्रथम सों प्रीतकर, सिरै गीत साणौर ।।१।।

भावार्थ—मछ कवि प्रेम से कहता है कि कविता की रीति का स्वरूप, चतुर मित्रों के चित्त को चुरानेवाला सांणौर गीत सर्वोपरि है।

'अथ गीत वड़ो सांणौर' *

धुरां दरस सर पंडु मुनुकला तेवीस धर,
जुग विसम सपत कल दुसर जतरैं।
पंच कलतणो है च्यार गण विषम पद,
सामुहैं मेल गण कला सतरैं ।।१।।
विषम सम विषम सम दवालैं वेद तुक,
ठीक गुर अंततुक वहस ठालां।
प्रकटकल खिवंतर हुवै द्वालैं, प्रथम,
दूसरे चिमंतर कला द्वालां ।।२।।

---

* मूल में कहीं "साणीर" और साणोर लिखा है। सांणौर पाठ प्रायः रक्खा है।

असम में एकसी वीस मत आंणजे,
विया सम चरण चित जाणजै वेप।
गुर हुवै अंत तिण तणी दससात गिण,
लघु अंत मात जिण अठारैं लेप ॥३॥

ह्रस्व दीरघ दुहैं नेम विण रचीजैं,
जिकौ है वड़ो सांणोर वुध जोर।
धरैं जो नेमसूं गीत परवंध में,
सुद्ध परहास दुय भेद सांणोर ॥४॥

मोहरा मेल अखरोट मेलै अमल,
प्रमुख सनमुख विमल समझ पावैं।
गुणी धन जाणगर जिके गुण गाथरा,
गहर रघुनाथरा सुजस गावैं ॥५॥

शब्दार्थ—धुरा=आदि में। दरस=६ संख्या वाचक। सर=५ संख्यावाचक। पंडु=५ संख्या का वाचक। मनु=७ संख्या का वाचक। सामुहैं=सामने, तीसरे पद के सामनेवाला पद अर्थात् चौथा पद। वेद=४ संख्या का वाचक। वहस=सम तुक। ठालां=निश्चय करो। मत=मात्रा। मात=मात्रा। दुहै=दोनों। नेम=नियम। अखरोट=अक्षर। प्रमुख=परमुख उक्ति। सनमुख=उक्ति विशेष। धन=धन्य हैं। जाणगर=जाननेवाले।

भावार्थ—प्रथम पद में ६, ५, ५, और सात मात्राओं से २३ मात्राये दूसरे पद में दो बार पाच पाच मात्रा फिर ७ मात्रा, विषमपद—अर्थात् तीसरे चरण में पाच पाच मात्रा के चार गण होते हैं। और चौथे चरण में १७ मात्रा रखनी चाहिये ॥ १ ॥

पहिले विषम और फिर सम, फिर विषम और फिर सम इस प्रकार से

प्रत्येक द्वालै, में अर्थात् छंद में चार तुक होती हैं। सम तुको के अंत में गुरु का निश्चय करो अर्थात् सम तुको के अंत में गुरु आता है ॥२॥

विषम चरणों में एक सार २० मात्रा रखनी चाहिये। दूसरे सम चरणों में मात्रा रखते समय इस प्रकार चित्त में विचार रखो—जहा अंत में गुरु आवै वहां तो १७ मात्रा रखो, और जहा अंत में लघु आवै वहां १८ मात्रा रखो ॥ ३ ॥

जिसमे, ह्रस्व और दीर्घ इन दोनों के नियम विना रचना होती है बुद्धिमान कहते हैं कि वह बड़ा साणोर गीत होता है। जिस गीत मे नियमानुसार लघु गुरु रखे जाते हैं—उस साणोर के, शुद्ध और प्रहास दो प्रकार के भेद होते हैं ॥ ४ ॥

मोहरा—तुकांत और अक्षर मिलने चाहिये। परमुख और सनमुख उक्तियें इस गीत में रखनी चाहिये। वे गुणवान् जो गुणों की गाथा को जाननेवाले हैं और रामचद्र के गहरे यश को गाते हैं—धन्य हैं।

गीत शुद्ध सैणोर

'वरतारो-छंद लीलावती'

विषम बीस सम चरण अठारहु घुरपद कल ते वीस धरो।
मंछ कहै गुरु लघु अंत मोहोरैं कवि इसि सुध सैणोर करो ॥३॥

भावार्थ—विषम चरणों में—प्रथम और तृतीय चरण में—२० मात्रा, सम चरणों—द्वितीय और चतुर्थ चरण में १८ मात्रा और प्रथम द्वाले के प्रथम पद में २३ मात्रायें रखना चाहिये। मंछ कवि कहता है—हे कविगण! तुकान्त में गुरु और लघु रखकर शुद्ध सैणोर गीत बनाओ।

उदाहरण

मगण आद गुर तीन फल रमा विबुधा मही,
पिता पिंगल गिरा मात तन पीत।

रिषि कस्यप अरोहण कमठ शृंगार रस,
मगध पत द्दुज वरण नयण त्रिय मीत ॥ १ ॥
सरब लघु नगण आयुस द्रवण सुर सुरक,
तात विध सावित्री कनकरँग तैण ।
भृगूमुनि चढ़ण गज नऊं रस में अभँग,
नृप मगध देस कुल विप्र मुर नैण ॥ २ ॥
आद गुर भगण फल सुजस स्वामी मयँक,
जनक ध्रम मंगला मात सितमंज ।
अंगरा रिष सुसा वाह रस हास यण,
कलंदीराव कुल वैश्य त्रय कंज ॥ ३ ॥
प्रथम लघु यगण फल वृद्ध जल अधपति,
कह उदध मेदनी गवर रंग कीन ।
रिषी आत्रेय चढ़णैं मगर करुण रस,
तषत गिरमेर कुल विप्र द्दग तीन ॥ ४ ॥
मध्य दीरघ जगण रोग दत सुर मिहर,
निरपंमनु[1] पिता सेना अरुण नेक ।
तपी कौशिक कुरँग भयानक रस तिकैं,
ईस सोरठ वरण शूद्र द्दग एक ॥ ५ ॥
लघू मध्य रगण फल मृतक पत पवन लख,
तात मृतु जरा तन रगत आतंख ।
रखेसुर अंगारष भेड पुण रोद्र रस,
उजेणी नृपत कुल सूद्र रिख अंख ॥ ६ ॥

---

१ निरस = पाठान्तर ।

अंत दीरघ सगण भ्रमण फल पत अनल,
सुतण कश्यप रयणां श्याम रँग सोय ।
गिणो गोतम तुरँग वीररस छव गहर,
देस नृप कलंजर खत्री द्रग दोय ॥ ७ ॥
अंत लघु तगण धननास पत अकास,
पिता जम मात दिखरणा हरत पेख ।
विसिष्ट रिष बैल आरूढ़ रस सांत वण,
उजेणी सूद्र लोयण उभै भेष ॥ ८ ॥
विध गणां फल अमर जनक माता वरण,
रिष वहण रस मुलक वंस द्रग रीत ।
पुणैं कवि मंछ शुभधर अशुभ पर हरो,
गुणी रस राम मुकता करो गीत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—आरोहण = सवारी, वाहन । पत = पति । दुज = द्विज वरण = वर्ण । द्रवण = देनेवाला । सुरक = स्वर्ग । विध = विधि, ब्रह्मा । तैण = उसका । मुर = तीन । ध्रम = धर्म । मंज = रंग । सुसा = शशक । वाह = वाहन । यण = इसका । कंज = नेत्र (आंख कों कंज की उपमा देते हैं । यहाँ केवल उपमान से ही उपमेय—नेत्र का अर्थ है) वृद्ध = वृद्धि । अधपती = अधिपति, स्वामी, देवता । उदध = उदधि, समुद्र । मेदनी = पृथ्वी । गवर = गौर । दत = देनेवाला । मिहर = सूर्य । तपी = तपस्वी । तिकैं = उसके । मृतक = मृत्यु । मृतु = मृत्यु । रगत = रक्त । आतंख = क्रोध । पुण = पूण, वाहन । उजेणी = उज्जैन। रिष अंख = तीन नेत्र अथवा सात नेत्र। सुतण = पुत्र। दिषण= दक्षिण । हरत = हरा । विसिष्ट = वशिष्ठ । आरूढ़ = वाहन । विध = -विधि, तरकीब गणों का रूप गुरु लघु में बताना । गणां = गणो के नाम । मुलक = देश । पुणै = कहैं । मुकता = मूगता, खूब, बहुत ।

भावार्थ—सरल ही है, और आगे नकशे में देखने से स्पष्ट हो जावेगा।

गणों का रूप	ऽऽऽ	III	ऽII	IऽऽI	IऽI	ऽIऽ	IIऽ	ऽऽI
गणनाम	मगण	नगण	भगण	यगण	जगण	रगण	सगण	तगण
फल	लक्ष्मी	आयु	कीर्ति	वृद्धि	रोग	मृत्यु	भ्रमण	धननाश
देवता	पृथ्वी	स्वर्ग	चंद्र	जल	सूर्य	पवन	अग्नि	नभ
पिता	पिंगल	ब्रह्मा	धर्म	समुद्र	मनु	मृत्यु	कश्यप	[illegible]
माता	सरस्वति	सावित्री	मंगला	पृथ्वी	सेना	जरा	रचना	[illegible]
रंग	पीला	सुवर्ण	सफेद	गौर	लाल	रक्त	श्याम	हरा
ऋषि	काश्यप	भृगु	अंगरा	अत्रेय	विश्वामित्र	अंगारस	गौतम	वशिष्ठ
वाहन	कमठ	हाथी	शशक	मगर	भृग	मेष	तुरग	बैल
रस	शृंगार	नवरस	हास्य	करुण	भयानक	रौद्र	वीर	शांत
उत्पति	मगध	मगध	कलंद्री	मेरु	सौराष्ट्र	उज्जैन	कलंदर	उज्जैन
वंश	द्विज	द्विज	वैश्य	द्विज	शूद्र	शूद्र	क्षत्री	शूद्र
दृग	तीन	तीन	तीन	तीन	एक	तीन	दो	दो

दोहा

दुय विलास मझ येम दृढ़ आखै कविता अंग।
जपूँ हिमें मोमत जथा, सियवर कथा प्रसंग॥

शब्दार्थ—मझ=मध्य, बीच। जपूँ=कहता हूँ। हिमें=अब।
भावार्थ—सरल ही है।

अथ प्रहास गीत

(प्रहास गीत को 'गरवत' भी कहते हैं)

'छंद चौबोला'

गुर सम चरण प्रहास गीतगिण तवकल सतरैं तिकण तणो।
बीजी मात्रा सरब बराबर, भेद इसोइज मंझ भणो॥

शब्दार्थ—त्तव = कहना । तिकण = उस । इतोइज = इतना ही ।

भावार्थ—मंछ कवि कहता है—शुद्ध सैणोर और प्रहास सैणोर में केवल इतना ही भेद हैं कि प्रहास गीत के सम चरणों में—द्वितीय और चतुर्थ चरणमें १७ मात्रायें अत में गुरु सहित गिनना चाहिये, बाकी और मात्रायें सब बराबर होती हैं ।

उदाहरण

पार्वती शिव प्रश्नोत्तर

दोहा

उमा कह्यो इम ईसनैं उपज्यो विभ्रम एह ।
किंकरि ऊपर महर कर, सकर ! मेट सँदेह ॥

भावार्थ—पार्वती ने एक दिन इस प्रकार महादेव से कहा कि मुझे यह सदेह उत्पन्न हुआ है । अतः दासी के ऊपर कृपा करके हे महादेव ! संदेह नाश कीजिये ।

गीत

दुहूँ जोड़कर पूछियो सगत एकण दिवस,
आखजै जगतपति भेद इणरो ।
आपरो ध्यांन नित करै सारी यला,
करो नित ध्यान सो आप किणरो ॥ १ ॥
आखवं विगत हुय सुचित सांभल उमा,
अगम परब्रह्म गुण गत अपारै ।
रूप निज अखिल संसार मांहे रमै,
बले संसार सूँ रहैं बारै ॥ २ ॥

अलख आकार अणलेप अवगत अनंत,
संतहित रूप साकार सारे ।
वंस तिमिरार पुर अवध मघवान वर,
धनुषधर राम अवतार धारे ॥ ३ ॥
महामत महण जसगाथ मुनि बालमिक,
कोट सत चिरत रघुनाथ कीधो ।
इधक अनुरागकर पुरष निरजुर अही,
लोड त्रिय भागकर बाँट लीधो ॥ ४ ॥
ररो मभु जुगम अै अंक बाकी रह्या,
प्रसिध तिणसूं करैं लिया प्यारा ।
जेण परभाव निध सिधादिक मो जुमै,
सुर असुर नाग नर नमैं सारा ॥ ५ ॥
कवण जिणरो पिता मात बंधव किता
हर जिता काज किय प्रगट होनैं ।
तिती अभिलाष सह कथा सुणवा तणी,
महेसुर यथारथ दाख मोनैं ॥ ६ ॥
वदन एक सहस दुय सहस रसना वणी,
तिको फणपती गुण थकैं तवरी ।
तनै संखेप रघुनाथ चिरतां तणी,
गहर कीरत कहूँ सुणो गवरी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सगत = शक्ति, पार्वती । आखजै = कहिये । इणरो = इसका । सारी = सम्पूर्ण । यला = पृथ्वी । किणरो = किसका । आखउं = कहता हूँ । विगत = समाचार । सांभल = सुन । अगम = अगम्य । गत = गति । वले = फिर । बारैं = बाहर । अवगत = अवगति । सारे = बनावै ।

तिमिरार = सूर्य । वर = बराबर । महामत = महामति, बड़ी बुद्धिवाले । महण = समुद्र । कोट = किरोड । निरजुर = निर्जरा, देवता । लोड = इकट्ठा करके । बॉटलीधो = विभाग कर लिये । ररो = रकार । ममु = मकार । जुगम = दो । जुमैं = अधिकार । कवण = कौन । किता = कितने । होनै = होकर । तिती = उतनी । दाख = कहो । मौनै = मुझे । तिको = वह । तवरी = कहता हुआ । चिरतां = चरित्रों । गहर = गभीर । गवरी = गौरी, पार्वती ।

भावार्थ—एक दिन महादेव जी से दोनों हाथ जोड़ कर पार्वती ने पूछा—हे जगत के स्वामी ! इसका भेद कहिये कि सम्पूर्ण पृथ्वी तो आपका ध्यान करती है और आप हमेशा किसीका ध्यान करते हैं ? ॥१॥

शिवजी बोले—हे पार्वती, स्वस्थ चित्त हो कर मैं जो कहता हू वह सुन, जो अगम्य परब्रह्म है, जिसके गुणों की गति अपार है, जो अपने रूप से सम्पूर्ण संसार में रमण करता है और फिर भी संसार से बाहर रहता है ॥ २ ॥

जिसका स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता है, जिसके किसी भी प्रकार का लेप नहीं है, जिसकी गति जानी नहीं जाती है, जो अनंत है, संतपुरुषों के लिये जो साकार रूप अर्थात अवतार धारण करता है और जिस ईश्वर ने सूर्यवंश में इंद्र के बराबर अयोध्या में धनुर्धारी राम के रूप में अवतार धारण किया है ॥ ३ ॥

बड़ी बुद्धि के समुद्र वाल्मिकि ऋषि ने उन रामचद्र भगवान के चरित्र का यश शतकोटि प्रकार से किया है । और उस यश की गाथा को बड़े प्रेम से नर, देवता, सर्पों ने एकत्रित करके उसके आपस में विभाग कर लिये हैं ॥ ४ ॥

रकार और मकार ये दो प्रसिद्ध वर्ण जो बाकी रहे उनको मैंने बड़े प्रेम से अंगीकार किया है, जिसके प्रभाव से निधि सिद्धि आदि मेरे

पार्वती फिर पूछती हैं—उसका कौन आप है ? कौन माँ है ? और कितने भाई है ? उस ईश्वर ने प्रकट हो कर जितने कार्य ? वह सब कथा सुनने की मेरी इच्छा है। अतः हे महादेव ! मुझे कहिये ॥ ६ ॥

शिवजी फिर कहते हैं—हे पार्वती सुन ! जिसके हजार मुँह और ार जिह्वा है वह शेषनाग भी उनके गुण कह कह कर थक है, सो मैं तुझे संक्षेप में रामचंद्र भगवान् के चरित्र की कीर्ति हूँ।

गीत जात दुमेल ।

(इसको अर्धपालवणी भी कहते हैं)

दोहा

कल षोडस पद में करैं, चोकल अंत उचार ।
बीजा पद सारा वहस, धुरपद कला अठार ॥
कली चार द्वालो करै, मोहरा दुय २ मेल ।
कहैं मंछ तिणनूं सुकवि, दाखै गीत दुमेल ॥

शब्दार्थ—बीजा = दूसरे । वहस = समपद । धुरपद = प्रथम पद ; ी = पद का चरण । मोहरा = तुकांत । मेल = मिलाना ।

भावार्थ—प्रत्येक पद में १६ मात्रा करनी चाहिये और अंत में कल (चार मात्र का शब्द) कहो । प्रथम पद मे १८ मात्रा और य सब पद बराबर रखो। मंछ कवि कहता है—एक द्वाले द में) में चार चरण करो और दो दो चरणों के तुकांत मिलाओ—ऐसे ा को श्रेष्ठ कवि दुमेल गीत कहते हैं।

उदाहरण

शिव-वचन-गीत

दशरथ नृप भवण हुआ रघुनंदण,
कवसल्या उर दुष्ट निकंदण।
रूप चतुरभुज प्रकटत रीधो,
दरसण निज मातानैं दीधो ॥ १ ॥
उदर सुमित्र लछण जीपण अरि,
धरे शेष अवतार धुरंधर।
वियो सत्रघण सुजस सवायक,
दीरघबाह् बड़ो वरदायक ॥ २ ॥
खतम केकई सुत खल खंडण,
मही भरत कँवरां कुल मंडण।
पल पख पहर मास जगपालक,
वधे एम चारूं यह बालक ॥ ३ ॥
झूलां भ्रात चहूँ तक झूलैं,
पिता मात दिल देख प्रफुल्लैं।
वरमां गोद आंगणैं धावैं,
आंगणहूत गोद फिर आवै ॥ ४ ॥
कंवर बाल लीला इम करणैं,
वीदग सुजस कठा लग वरणैं।
पछैं चतुरदस-विद्यापाई,
रिष वशिष्ट आगै रघुराई ॥ ५ ॥
सुमनस आय विलोके सारा,
बोले आपस मांहि विचारा।

सुत यह जिण आगल दिन साजा,
धिन २ जगमें अवधधिराजा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—भवण=भवन। रीधो = लिया। जीपण = जीतनेवाला। सवायक = सवाया। दीरघवाह = दीर्घबाहु। आजानु बाहु। खतम = हद, सीमा। बधैं = वृद्धि प्राप्त करते हैं। धावै = दौड़ते हैं। हूंत = से। बीदग = वेदज्ञ, या, विदग्ध, पडित। कठालग = कहाँ तक। सुमनस = देबता। आगल = आगे, सामने। साजा = अच्छे।

भावार्थ—दुष्टों के नाश करनेवाले रामचद्र दशरथ राजाके घर कौशल्या के पेट से हुये। चतुर्भुज रूप से प्रकट होकर अपनी माता को दर्शन दिया ॥ १ ॥

पृथ्वी को धारण करने वाले शेष ने शत्रुओं को जीतनेवाले लक्ष्मण के रूपमे सुमित्रा के पेट से अवतार धारण किया। और उसी सुमित्रा से दूसरे बड़े बड़े वरदेनेवाले लम्बी भुजावाले और सवाये यश वाले शत्रुघ्न ने जन्मलिया ॥ २ ॥

दुष्टों को नष्ट करने में वेहद और कुल के भूषण भरत कुमार पृथ्वी-पर केकई के पुत्र हुये। जगत की पालना करनेवाले चारों बालक पलमे पहर जितनी और पहर मे मास जितनी वृद्धि प्राप्त करने लगे ॥ ३ ॥

चारों भाई झूले मे झूलते हैं जिन्हे देखकर माता पिता मनमे अत्यन्त आनंदित होते है। माता गोद से आँगन में उन्हे रखती है तब वे दौड़ते हैं और फिर आँगन से गोद में आते है ॥ ४ ॥

इस प्रकार से इन कुमारो ने बाललीला की, जिसका यश पंडित-लोग कहाँ तक वर्णन करें। इसके पश्चात् रामचद्र ने वशिष्ठ के पास चौदहों विद्यायें प्राप्त की ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण देवतागणों ने आकर उन्हे देखा और परस्पर विचार कर बोले कि जिसके आगे ये पुत्र है उसके दिन बड़े श्रेष्ठ है। और इसी लिये इस जगत मे अयोध्या का राजा दशरथ धन्य हैं ॥ ६ ॥

गीत जाति-अरट

छंद चौवोला

सोलैं कला विषम पद साजैं चोकलियां गण चार चवैं।
तुक सम चोकल दोय अंत सें, गुरु लघु मात्रा रुद्र तवैं ॥
विषम बहस अरुविपम बहस इम पद चउ द्रालैं, हेकपखैं।
आद चरण की कला अठारह अरट गीत कवि मंछ अखैं ॥

शब्दार्थ—चवैं = कहैं। रुद्र = महादेव, ११ संख्या का वाचक। तवै = कहै। बहस = सम। हेक = एक। पखैं = पक्ष।

भावार्थ—विषम पदों में चोकलिया चारगणों से १६ मात्रायें कही जाती है। सम चरणों में दो चोकल और अंत में गुरु और लघु इस प्रकार ११ मात्रायें कहो। एक पक्ष में विषम और सम और विषम और सम इस प्रकार पद, चार द्रालै (दल) और आदि चरण की १८ मात्रायें मंछ कवि कहता है।

राज वर्णन गीत

इम राज करै अजनंद अयोध्या
नेत वँधी निषतैत।
जंगा जीत तपोबल जालम
ओप वडैं अखडैत ॥ १ ॥
नामैं सीस अनेक नरेसुर,
रैत सुखी अणरेह।
चारुहि चक्र अदलां चालैं,
तेज धरैं सिर तेह ॥ २ ॥
ईत तणो नह भीत अगंजी,
मान दुजा मन मेर।

आखेटा मजवूत अडाकी,
जीत किया खल ज़ेर ॥ ३ ॥
दीजै जोड किसो नृप दौलत,
राज विभो अवरेख ।
सात सुखां भुगतैं दिन साजा,
वासव हूत विशेप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—नेत = मर्यादा । निखतेत = नक्षत्रधारी । जालम = जालिम, बड़ा । अखडैत = अखड, बड़ा बलवान । रेत = रैयत, प्रजा । अणरेह = अपार । चक = दिशा । अदलां = नीति । तेह = उसके (दशरथ के) अगंजी = अजीत । आखेटां = शिकार या युद्ध । अडाकी = अडने वाले । दुजा = दूसरी । ज़ेर = वस में करना । विभो = वैभव । अवरेख = देख कर ।

भावार्थ—इस प्रकार से अज के पुत्र दशरथ अयोध्या में राज करते हैं—जिनकी मर्यादा बंधी हुई है और वे बड़े नक्षत्रधारी है । वे युद्ध में जीतनेवाले हैं, बड़े तपी और बलवान हैं बड़ी उपमा धारण करनेवाले और बड़े शूरवीर हैं ॥ १ ॥

उन्हें अनेक राजागण मस्तक झुकाते हैं । प्रजा में अपार सुख है । उनके तेज को मस्तक पर रखकर चारों दिशाओं में नीति चलती है ॥२॥

उनके राज्य मे ईतियों[1] का भय नहीं है । वे अजीत हैं और उन्हें दूसरा सुमेरु पर्वत मानो । वे युद्ध मे जबरदस्त अड़नेवाले हैं और उन्होंने दुष्टों को जीत कर अपने वस मे करलिया है ॥ ३ ॥

उनके राज्य वैभव को देखो, किस राजा की दौलत उनके बराबर मे रखे । उन्हे सातों सुख प्राप्त हैं और उनके दिन इन्द्र से भी अधिक अच्छी तरह व्यतीत होते हैं ।

१—ईति सात होती हैं—अति वृष्टि अनावृष्टि शुपका, सलभाः शुकाः ।
स्वचक्रं परचक्रं च सप्तते ईतयः स्मृताः ॥

गीत अरटियो

चंद्रायणो

चोकलिया गण चार विषम पद आंणजै,
त्रिचकल समपद अंत जुगम गुर जाण जैं ।
धुरपद कल उगणीस चतुर दस सर धरैं,
कवी अरटियो गीत नगंण त्रिन इम करैं ॥

भावार्थ—विषमपदो में चार चौकल लाना चाहिये । समपदों में तीन चौकल अंत में दो गुरु सहित जानना चाहिये । प्रथम पद मे चार दस, और पांच पर विश्राम कर १६ मात्रा रखो । इस प्रकार हे कवि गण ! नगण को छोड़ कर अरटिया गीत करो ।

उदाहरण

रिष आगम-गीत

एकण दिहाड़ैं मुनिराज अजोध्या,
कोसक आवण कीधो ।
राजाहूत मिले रिषराजा,
दो मझ आसण दीधो ॥ १ ॥
जोड़ैं पाण महिपत जंपे,
को रिष आज्ञा कीजै ।
आग्या एक सुणो नृप आगम,
संग उभै सुत दीजै ॥ २ ॥
आसण गूढ़ करूँ पण आसुर,
ब्याग विध्रुंसे जावैं ।

१—मंझ इण—पाठान्तर ।

रिख्या वाट करै जो राघव,
थाट संपूरण थावैं ॥ ३ ॥
लेखै राम सुलिखमण बालक,
तेज रिपी अण तोली ।
हेरे भूप कह्यो हूँ हाजर,
हालूँ साथ हरोली ॥ ४ ॥
जाणमती वय संसो राजिंद,
तात कहूँ विध तोनूं ।
श्रीपत सेस उधारण संता,
देह धरी नर दोनूँ ॥ ५ ॥
विश्वामित्र तणां सुण वैणां,
आँनंद अंग उमंगे ।
महपत वंदे पाँव मुनीरा
सार दिया सुत संगे ॥ ६ ॥
चलै राजकुमार पिताचो,
सासण पाय सहळे ।
रावण सहत घणां खल राखस,
दारुण दैंत दहळे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—दिहाडैं = दिन । कोसक = कौशिक, विश्वामित्र । आवण = आगमन । मक्त = मध्य । पांण = पाणि, हाथ । आसुर = असुर, राक्षस । ज्याग = यज्ञ । विधुंसे = विध्वंस करके । वाट = मार्ग । थाट = मनोरथ । रिख्या = रक्षा । अणतोली = बहुत बड़ा । हालूँ = चलूँ । हरोली = युद्ध में आगे रहनेवाला हिस्सा हरावल । संशो = संशय । तोनूं = तुमको । सार दिया = सजा दिये । पिता चो = पिता का । सासण =

शासन, आज्ञा । सहल्ले = सुगमता से । सहत = सहित, साथ । दैंत = दैत्य । दहल्ले = डर गये ।

भावार्थ—एक दिन कौशिक मुनि का अयोध्या में आगमन हुआ। ऋषिराज राजा से मिले । राजा ने उन्हे दोनों के मध्य मे (वसिष्ठ और अपने बीच में) आसन दिया । राजा हाथ जोड़ कर बोला कि ऋषि-राज ! क्या आज्ञा है ? तव ऋषि बोले—हे राजा, मेरे आगमन की यही आज्ञा है कि मुझे दोनों पुत्र दे दीजिये । मैं गुप्त रूप से आसन करता हूँ (अर्थात् ध्यान करता हूँ) और राक्षस गण मेरे यज्ञ को नष्ट कर जाते हैं । यदि मार्ग में रामचंद्र रक्षा करे तो सम्पूर्ण मनो-कामना पूर्ण हो जायँ । राजा ने इधर राम और लक्ष्मण को बालक देखा, और उधर ऋषि का बड़ा भारी तप देखा । ये दोनों बातें देखकर कहा कि मैं आपके आगे चलने के लिये उपस्थित हूँ । हे राजन्, वय का संशय मत समझो, हे तात ! मैं तुझे इसकी विधि कहता हूँ । श्रीपति (विष्णु) और शेष दोनों ने संतपुरुषों का उद्धार करने को नर शरीर धारण किया है । विश्वामित्र की यह बात सुनकर राजा के अंग आनंद से फूल गये । और राजा ने मुनि के चरणों में मस्तक झुकाया और पुत्रों को सजाकर उनके साथ कर दिया । दोनों राजकुमार सहज ही पिता की आज्ञा पाकर रवाना हुए । यह बात जानकर रावण सहित अनेक दुष्ट राक्षस और भयानक दैत्य डर गये ।

गीत दोढ़ो

'छंद गीया'

कल चवद चवदैं तर्णी दुयतुक मिलैं मोहरा तामही ।
कल त्रितीय षोडस वले दसकल चतुरथी तुक में चही ।।
तिण मांहि मोहरे गुरुलघु तव चार तुक रच चोज सूं ।
इण भांत फिर पद चार उचरैं मिलै दोढ़ो मोज सूं ।।

भावार्थ—चौदह २ की दो तुक करके उसमें तुकांत मिलाओ। तीसरे चरण में १६ मात्राएँ और चौथे चरण में दस मात्राएँ होनी चाहिएं। उसके अदर—अर्थात् चौथी और आठवीं तुक में—तुकात में गुरुलघु कहो। इस तरह से चार तुक उत्साह से रचो। इसी प्रकार फिर चार पद और कहो। इससे दोढा गीत आनंद से प्राप्त हो जायगा।

विशेष—दोढा गीत में आठ पद होते है। इसमें प्रथम दो पदों का तुकात और चौथे और आठवें पद का तुकान्त मिलाना चाहिए।

उदाहरण

'रिषि आश्रम प्रयाण-गीत'

पुर अवध सूं हुय निज पगां,
'मुनि वहै आश्रम मारगां।
संग राम लक्ष्मण कुमर दशरथ,
धरम धुज रिण धीर॥
संपेख अगनग साख सी,
रत रोष मारग राषसी।
तिंह नाक पांण विछेद ताडे,
बाण इक रघुबीर॥१॥
हण ताडका निज ठाहरां,
जिग मांड आरँभ जाहरा।
उत होम धूम विलोक आया,
निडर राकस नीच॥
जिग अर सुबाहू जांणनै,
तन हते सायक ताणनै।

सर पवन परसो चार कोसां,
रह्यो थंभ मरीच ॥२॥

कर विधां मख पूरण करै,
सज जिनकपुर दिस संचरे।
कर जोड़ आगम जाण कीधी,
अरज विश्वामित्र ॥
प्रभु पंथ एण पधारजै,
तितनार गोतम तारजै।
रिष वयण सुण जिन झोड पद रज,
परम कीध पवित्र ॥३॥

पद परस अहला ऊधरी,
वण अछर वपु कीरत वरी।
धन दिवस आंवन हुओ अधमां,
करण पावन काज ॥
इम गई कह अमरावती,
शुभ कुसुम कर बरसावती।
उण हूत मिथला नगर आया
राजसुत रिषराज ॥४॥

शब्दार्थ—वहे = चले। धुज = ध्वजा। रिणधीर = रणधीर। अग नग = अग्नि का पर्वत। साख = शिखा, ज्वाला। रोष = क्रोध। रत = युक्त। विछेदताडे = काट डाले! ठाहरां = स्थान। जिग = यज्ञ। अर = अरि, शत्रु। तन = उसे। संचरे = चले। आगम जांण =

१ पाठां०—धार।

भविष्य ज्ञाता। एण = इस। तित = वहां। अहला = अहिल्या। ऊधरी = उद्धार पाया। अछर = अप्सरा। वरी = वर्णन किया।

भावार्थ—दशरथ के पुत्र रणधीर और धर्मध्वज राम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र अयोध्या से पैदल आश्रम के मार्ग को चले। रामचंद्र ने अग्नि के पर्वत की शिखा के समान क्रोधयुक्त राक्षसनी को मार्ग में देखकर उसके नाक और हाथ एक ही बाण से काट दिये। अपने स्थान पर ही ताडका को मार गिराया। यज्ञ प्रकट में आरंभ किया। उधर यज्ञ के धूम को देख कर नीच राक्षस गण आये। सुबाहु को यज्ञ का वैरी जानकर बाण तान कर उसे मार डाला। और पवन के बाण खा कर चार सौ कोस पर मारीच नामक राक्षस जा पड़ा। विधि अनुसार यज्ञ पूर्ण करके फिर सज करके जनकपुर की ओर चले। भविष्य-ज्ञाता विश्वामित्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—हे प्रभु! इस मार्ग से पधारिये और वहाँ गोतम की स्त्री को तारिये। ऋषि की यह बात सुन कर, अपनी चरणरज को झाड़ कर उसे (अहिल्या को) पवित्र किया। चरणों का स्पर्श करके अहिल्या का उद्धार हो गया। और उसने अप्सरा का शरीर धारण करके उनकी कीर्ति का वर्णन किया। यह दिन धन्य है जो अधम को पवित्र करने के लिये आप पधारे। ऐसा कह कर पुष्प वर्षा करती हुई स्वर्ग को गई। वहाँ से राजकुमार और विश्वामित्र जनकपुर आये।

गीत जात भाषरी

'वरतारो—छंद पद्धरो'

कर चार पंच जीकार केल, मत चवदै फिर गुरु लघु समेल।
पँचवीस कला इक पद प्रबंध, सज चार सांकली एम संध॥
लख पछै फेर सीहावलोक, झड जिकण छंद बैताल झोक।
गुण मंछ भाखरी एम गीत, कर जिकण माहि रघुनाथ कीत॥

शब्दार्थ—केल = कला, मात्रा। मत = मात्रा। सांकली = सांकल, पद। संध = जोड़ना। सीहावलोक = सिंहावलोकन। झड = पद। झोंक = रखो। गुणो = गुणो, वनाओ। कीत = कीर्ति।

भावार्थ—चार और पाँच मात्राओं के बाद "जी" शब्द करो, इसके बाद १४ मात्रा और अंत में गुरु लघु रखो। इस प्रकार इस गीत में एक पद की २५ मात्राये जोड़कर चार पद बनाओ। इसके बाद सिंहावलोकन करके वैताल छंद के पद रखो। मंछ कवि कहता है कि भाखरी गीत इस प्रकार बनाओ और उसमें रघुनाथ का यश वर्णन करो।

उदाहरण

मिथलापुर जज्ञ आरंभ

गीत

मिथला महिपतीजो अवनी कीध जिग आरंभ।
तेडे समगतीजी लिख फुरमाण बाहु प्रलंभ॥
कर कर क्रामतीजी खोपे जैथ हथ जस खंभ।
नागेर नोवतीजी घर घर घुरत द्वार असंभ॥
घर द्वार नोवत घुरत बाजत तीस पट् अवरेख।
वंध पोल पोल विसाल तोरण वणे चित्र विशेप॥
व्रत सदन पीत पताक फरकत वरण चहु सुखवेप।
मध जनकपुर सुर असुर मांनव पडे संभ्रत पेख॥१॥

शब्दार्थ—जिग = यज्ञ। तेडे = निमन्त्रण दिया। समगती = बराबरवाले। बाहुप्रलंभ = बड़ी भुजावाला। क्रामती = करामत, काम,

१ पाठा०—निझले।

खोपे = रोपना, गाडना। जैथहथ = विवाह की जीत। नागर = नगर मे। असंभ = बहुत। पोल़ पोल़ = द्वार द्वार पर। प्रत = प्रति, प्रत्येक। पताक = पताका, ध्वजा। संभ्रत = अचंभित। वेप = विशेप। मध = मध्य।

भावार्थ—मिथिलापुर के राजा जनक ने पृथ्वी मे यज्ञ करना आरभ किया। बड़ी भुजाओंवाले राजा जनक ने आज्ञापत्र अर्थात् निमत्रण पत्र लिख कर अपने बराबरवाले राजाओं को बुला भेजा। बहुत से कार्य करके विवाह के विजय यश के स्तम्भ गाड़े। नगर में प्रत्येक घर के द्वार पर नौवतें खूब बज रहीं हैं। देखो प्रत्येक घर के द्वार पर नौवते और ३६ प्रकार के बाजे बज रहे हैं। प्रत्येक द्वार पर बडे बडे तोरण लटक रहे हैं और बहुत से चित्र बने हुए हैं। चारों वर्णों में विशेप सुख छाया हुआ है। और प्रत्येक घर पर पीली—केशरिया ध्वजा उड रही है। जनकपुर मे यह देखकर देवता, राक्षस और मनुष्य आश्चर्य में पड़ गये हैं।

गहकैं गायणी जी गावैं धवल मंगल गीत।
रस सुर रागणी जी सरसै ताल ग्राम संगीत॥
ताकव नृप तणी जी कर कर सुणैं मंजुलकीत।
घट उमदा घणीजी, पूछै गहर गुण धर प्रीत॥

धर प्रीत पूछै गहर भूधर कहैं विध कवि राव।
उर वधत हरप अमाप सुण सुण वृवै कोड पसाव॥
बल करत नाटक अगर नटवर चवत हाटक चाव।
हद अवर हूनरदार हूनर भेट दैं बहुभाव॥ २॥

शब्दार्थ—गहकैं = प्रसन्न होकर। धवल = स्वच्छ। ताकव = कवि। उमदा = अच्छी, श्रेष्ठ। भूधर = राजा। अमाप = अपार। वृवैं = दैं।

पसाव = दान। अगर = आगे। चवत = कहते हैं। हाटक = स्वर्ण, सोना। हद = पूर्ण।

भावार्थ—प्रसन्न होकर गानेवालियाँ स्वच्छ मांगलिक गीत गाती हैं। रसीले स्वरों और रागिनियोंवाला संगीत ताल और ग्राम सहित आनंद देता है। कवि गण राजा की श्रेष्ठ कीर्ति का वर्णन करते हैं। वह कीर्ति बहुत उत्तम है जिसको अन्य गुणी पुरुष प्रेम से पूछते हैं और राजागण भी प्रेम के साथ उसके बारे में पूछते हैं। तब कवि गण विधि युक्त उसका वर्णन करते हैं। उसको सुन सुन कर हृदय में अपार हर्ष होता है और वे लोग करोड़ों का दान देते हैं। और श्रेष्ठ नट उनके आगे नाटक करते हैं और अन्य हुनरवाले अपना हुनर स्वर्ण की इच्छा से दिखाते हैं।

जगमें जनकरैं जी दरगह हुआ नृप समुदाय।
आह्वन आदरैं जी जोजन तणैं सामांजाय॥
वप पूरै वरैं जी आतुर बाँण दससिर आय।
आपो आपरै जी बैठा कनक मंच बिछाय॥
वण कनक मंच बिछाय बैठां सभासूर विसाल।
विरदाय तद इम भाट बोले रचे वयण रसाल॥
कर तीन नयन पिनाक कोडंड ताणवैं तिहताल।
जो वरै कवरी ज्यानकी पण लियो इह महपाल॥ ३॥

शब्दार्थ—दरगह = सभा। समुदाय = एकत्र। आह्वन = आने वाले। सांमा = सन्मुख। वप = वपु, शरीर। वप पुरै = पूर्ण शरीरवाले, बलवान। आपो आप = अपने आप, स्वय। मंच = कुर्सी। वण = वे। विरदाय = विरुदावली। तद = तब। कोडंड = धनुष। ताल = समय। पण = प्रण, प्रतिज्ञा।

भावार्थ—संसार में राजा जनक की सभा में अन्य राजागण

एकत्र हुए। राजा जनक आनेवालों का चार कोस तक सन्मुख जाकर आदर सत्कार करता है। बलवान बाणासुर और रावण वहाँ आकर विवाह के लिये व्याकुल हो रहे हैं। वे अपने आप ही स्वर्ण-सिंहासन बिछाकर बैठ गये। जब वे विशाल शरीरवाले सभा में कुर्सी बिछा कर बैठ गये, तब भाट गण रसीले वचनों से इस प्रकार विरुदावली बोलने लगे—जो शिव का धनुष चढ़ावेगा, उसको उसी समय कुमारी सीता वरण कर लेगी। राजा जनक ने यह प्रण किया है।

> इतरे अविया जी विश्वामित्र रिष तिणवार।
> लारै लाविया जी कवसलराज राजकंवार॥
> सुण सरसाविया जी आनंद उभल अंग अपार।
> विमल वधावियाजी नृपत जलूस कर नरनार॥
> नरनार मिल पधराय नरपत वके वयण विदेह।
> धन भाग आप पधारिया नरनाथ कर अत नेह॥
> प्रभु हुवो भेल्यां आज पावन छक मगन मन अणछेह।
> इम लगन ऊपर आविया मझ अगल लागो मेह॥ ४॥

शब्दार्थ—इतरे=इतने में ही। तिणवार=उसी समय। लारै=अपने पीछे, साथ। ऊझल=उझलना, हद से बाहर आना। पधराय=स्थापित करके, बैठा कर। मेह=वर्षा।

भावार्थ—इतने ही में विश्वामित्र ऋषि आये और अपने साथ में कौशल राजकुमार—राम और लक्ष्मण को भी लाये। यह बात सुनकर वहाँ के लोग बड़े आनंदित हुए और उनके शरीर से आनंद बाहर उमड़ रहा है। राजा ने और नगर के स्त्री पुरुषों ने जलूस निकाला। स्त्री पुरुषों ने उन्हें बैठाया। फिर राजा जनक बोले—हे नरनाथ! मेरा भाग्य धन्य है जो आप कृपा कर यहाँ पधारे। हे प्रभु! आज आपसे मिलकर मैं पवित्र हो गया हूँ और मेरा मन अपार आनंद से मस्त हो गया है।

आपका लग्नपर आगमन इव प्रकार हुआ है मानो अग्नि के लगते ही मेव आया हो।

विशेष—अंत मे उक्त विषया वस्तुत्प्रेक्षा है।

गीत पंखालो

वर्त्तारो छंद दोहा

ह्रस्व दीह सैणोरचो नेम नहीं निरनाह।
सुर ढ्ला सो मंछ कहि, तवै पंखालो ताह॥

शब्दार्थ—सैणोरचो=सैणोर का। निरनाह,=निश्चय, निर्णय। सुर=तीन संख्या का वाचक। तवै=कहैं। दीह=दीर्घ।

भावार्थ—सैणोर मे ह्रस्व दीर्घ का नियम है, किन्तु इसमें निश्चय है कि ह्रस्व दीर्घ का नियम नहीं है। मंछ कवि कहता है इस तरह जिसमें तीन ढाले. हों, उसे पंखाला गीत कहते हैं।

उदाहरण गीत

धरियो पण जनक इसी मन धारे
धनक पिनाक चढ़ाय धरैं।
महपत आय सयंवर माहे
वसुदा कुँमरी तिको वरैं॥ १॥
तात हूँत इधकी परतिग्या,
सांभल वात कहूँ सरसाल।
तनमन धार भाल दसरथ तण,
मैं गळ राल दई वरमाल॥ २॥
जालो चाप पिता पण जावो,
हण जावो जोधा जिगहार।

चित तो राख लियो मृदु चरणां
भाप लियो मृदु राघव भरतार ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—तिको = उसको । इधकी = अधिक । परतिग्या = प्रतिज्ञा । साभल = सुन । वसुदा = वसुधा, पृथ्वी । भाल = देख कर । राल = डाल ।

भावार्थ—शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं—सीता यह विचार कर रही है कि पिता ने यह प्रण किया है कि जो राजा स्वयंवर में आकर पिनाक नामक धनुष को चढावेगा, पृथ्वी की पुत्री सीता उसको वरेगी। किन्तु मेरी प्रतिज्ञा पिता की प्रतिज्ञा से भी अधिक है। मैंने तो दशरथ-पुत्र रामचद्र को देखकर, तन और मन से उनके गले में वरमाला डाल दी है। चाहे पिता का प्रण टूट जाय, चाहे तमाम योद्धाओं को मार डाला और चाहे यह यज्ञ भ्रष्ट हो जाय, पर मेरा मन तो रामचंद्र के कोमल चरणों ने रख लिया है। और मैंने तो रामचद्र को पति कह लिया है।

गीत जात गोपो

वरतारो—चौपाई

अठ अठ वरण चरण कर आठ,
पद पद है द्वादस कल पाठ।
दीरघ लघू अंत में दीजै,
मोहरा ही आठूं मेलीजै ॥
अंत वीपसा तुक में आवै,
गोखो गीत सु मंछ गिणावै।

भावार्थ—प्रत्येक पद मे आठ २ वर्णों की १२ मात्राऍ करके आठ चरण करो। पद के अंत में गुरु और लघु रखो और तुकात आठों ही पदों का मिलाओ। अत की तुक में वीप्सा लाओ। मंछ कवि इस प्रकार का गोपा गीत बताता है।

उदाहरण

धनुष भंज-गीत

विदेही तणें दिवाण । ईस चाप धरे आण ॥
तोड़वा अनेक तांण । ऊठिया करे अपाण ॥
राज राव अनै राण । पिनाक पै धरै पाण ॥
हिले होय हीणमान । दई वाण दई वाण ॥१॥

नेम धारियो नरेस । पहा न को चढ़ै पेस ॥
देख कहैं सको देस । खत्री बीज गयो खेस ॥
लहै वैण इतो लेस । ताण भूंह करे तेस ॥
सालुले अगेस सेस । राघवेस राघवेस ॥२॥

ऊससे घणै उछाह । चाप वांण धरे चाह ॥
वाम हाथ लीध वाह । जीमणै कसीस जाह ॥
तोड टूक करे ताह । आक दारू जूं अथाह ॥
सकोई करै सिराह । महावाह महावाह ॥३॥

तेज भूप देष ताम । निमे पाय सीस नाम ॥
हेतवा सपूर हाम । वरमाल लियां वाम ॥
पैराइ करै प्रणाम । उमंगे मना अमाम ॥
मिथ्थला कहैं तमाम । सियाराम सियाराम ॥४॥

शब्दार्थ—दीवाण=प्रधान । आण=लाकर । अपाण=बल । अनै=और । हिलै=चले । हीणमांण=हतवीर्य्य, बेइज्जत होकर । दई वाण=बड़ी देहवाले । पहा=प्रण । पेस=पूर्णता । सको=सब । खेस=नष्ट । वैण=वचन । लेस=लेशमात्र । तेस=क्रोध । सालुले=विनय की । अगेस=आगे । सेस=शेष का अवतार, लक्ष्मण ।

उससे = उठे। वाह = शस्त्र। जीमणै = दाहिने। कसीव = खींची। जाह = प्रत्यंचा, धनुष की डोरी। आक = मदार। दारू = लकड़ी। सिराह = तारीफ, प्रशंसा। महावाह = बड़ा पराक्रमी। तांम = तमाम। निमे = झुक गये। नांम = नवाकर। हेतवां = हितैषी। सपूर = पूर्ण की। हांम = इच्छा। अमाम = बहुत।

भावार्थ—राजा जनक के प्रधानों ने शिवजी का धनुष लाकर रख दिया। उसको तोड़ने के लिये अनेक बड़े बड़े बलवान राजा, राव और राणा गण उठे और धनुष पर हाथ धरकर बल करने लगे, किन्तु हतवीर्य्य होकर वहाँ से चले। राजा ने यह प्रण किया था। जब प्रण-पूर्ण नहीं हुआ देखा तब सब कहने लगे कि क्षत्री जाति का तो बीज ही नष्ट हो गया। यह तुच्छ बात सुनकर और क्रोध से भौंहे चढ़ाकर लक्ष्मण ने रामचद्र के आगे विनय की। वे बड़े उत्साह से उठे, और धनुष को उठाया। बायें हाथ में धनुष लिया और दाहिने हाथ में प्रत्यंचा ली। उसे खींचकर मदार की लकड़ी की तरह टुकडे कर दिये। यह देखकर सब प्रशंसा करने लगे कि बड़े पराक्रमी हैं। सब राजा गण यह तेज देख मस्तक झुकाकर नम गये। हितैषियों की इच्छा पूर्ण हो गई। सीता ने वरमाला लेकर गले में डाल दी और प्रणाम किया। जनकपुर के सम्पूर्ण स्त्री पुरुषों ने चित्त में अत्यंत प्रसन्न होकर सीताराम सीताराम कहा।

'गोखा गीत इस तरह भी होता' है।

'विश्वामित्रजो सूं जनकरी अस्तूत गीत'

बिहुताम जोड वाह, नमैं सीस नरांनाह।
रिषी ची करी सराह, तवै येम ताह॥
मूझ बोल नृपां मांह, ठीक आप रखे ठांह।
आलमां कहे उमाह, वाह वाह वाह॥१॥

शब्दार्थ—विहु = दोनों। वाह = वाहु। सराह = प्रशंसा। मूझ = मेरा। वोल = प्रण। ठांह = ठिकाना, स्थान। आलमां = संसार। उमाह = उत्साहित होकर।

भावार्थ—दोनों हाथ जोड़ कर राजा जनक ने विश्वामित्र के आगे मस्तक झुका दिया और उनकी बहुत प्रशंसा की। फिर उनसे इस प्रकार बोले—मेरी प्रतिज्ञा ठीक समय पर आपने रख ली। अतः सम्पूर्ण संसार आपको उत्साहित हो कर वाह वाह कह रहा है।

विशेष—प्रथम गोखे गीत में और इसमें इतना ही फर्क है कि उसमे प्रत्येक पद मे आठ वर्ण और बारह मात्राएँ होती हैं और इसमें चौथा और आठवाँ चरण छः छः वर्णों और नौ नौ मात्राओं का होता है।

गीत जात गोख

वरतारो–छंद कुकभा

विषम चरण साणोर वडैरा, समहीं चारुं साजै।
अंत गुरु लघु नेम न आवैं, मोहरा चार मिलाजै॥
चौथे पदकल पंच वार चिहु, दोय वीपसा दाखो।
कहै मंछ इम गीत गोषकर, भूप अवध गुण भाखो॥१॥

भावार्थ—इस गीत में वड़े साणोर गीत के विषम पद की मात्राएँ—चारों पदों में सजाओ। इसमें अंत में गुरु लघु का नियम नहीं है। चारों तुकांत मिलाना चाहिए। और चौथे पद में पाँच पाँच मात्राओं के पद चार दफा लाकर दो वीप्सा कहो। मंछ कवि कहता है कि इस प्रकार से गोख गीत बनाकर रामचंद्र के गुणों का वर्णन करो।

विशेष—इस गीत के प्रत्येक पद में २० मात्राएँ होती हैं। और चौथे चरण में पांच मात्राओं वाला शब्द चार वार आता है। इस गीत को जंघ खोडा भी कहते हैं।

'उदाहरण'

'दशरथजी कनै दूत प्रवेस'

अतुल सरासण भंग लख बधे अत उमँग उर,
गहर दिन मुहूरत सतानँद पूछ गुर ।
आच निज जनक नृप लिखे कागद अतुर,
अवधपुर अवधपुर अवधपुर अवधपुर ॥१॥
तेड मंत्री वृवै पत्र अम तवैं तथ,
कही जैं घणैं हित सयंबर तणी कथ ।
पांण करसी गृहण जानकी वेदपथ,
दासरथ दासरथ दासरथ दासरथ ॥२॥
विगत सांभल सकल विदाहुय वीरवर,
घणी सज सिलामां घणै छक आय घर ।
निडर कीधो गवण अयोध्या दिसीनर,
हरषकर हरषकर हरषकर हरषकर ॥३॥
मजल के करे पुंहतो नगर उदध मत,
कही कागद समप हुती मिळ हकीकत ।
अंग दसरथ मिले[1] ऊससे मोद अत,
महीपत महीपत महीपत महीपत ॥४॥

शब्दार्थ—बधे = वृद्धि को प्राप्त हुए। आच = हाथ। अतुर = जल्दी। तथ = तत्व। कथ = कथा। वेदपथ = वेद की रीति अनुसार। विगत = हकीकत। सिलामां = सलाम, नमस्कार। छक = मस्ती, उत्साह। उदधमत = गंभीर बुद्धिवाला। के = कितनी ही। पुंहतो = पहुँचा। समप = समर्पण करके, दे कर। ऊससे = उठकर। हुती = जो हुई थी।

१—सुणे भी पाठ है।

भावार्थ—बड़े भारी धनुष का भंग देखकर राजा जनक के हृदय में बड़ी ही प्रसन्नता हुई। अपने गुरु सतानंद को श्रेष्ठ दिन और मूहूर्त पूछकर अपने हाथों से अयोध्या को एक पत्र लिखा। मंत्री को बुला और पत्र देकर इस प्रकार सार बात कही—बहुत अच्छी तरह स्वयंवर की सब कथा कहना और कहना कि रामचंद सीता का वेद की रीति से पाणिग्रहण करेंगे। यह सब हकीकत सुनकर वह वीर वहाँ से विदा होकर अनेक तरह से प्रणाम करके प्रसन्न होता हुआ घर आया। और वहाँ से अयोध्या की ओर प्रसन्न होता हुआ रवाना हुआ। कितनी ही मंजिलें करता हुआ वह गभीर बुद्धिवाला मंत्री अयोध्या में पहुँचा और राजा दशरथ को पत्र देकर सब बातें कहीं। यह सुनकर राजा दशरथ अत्यंत प्रसन्न होते हुए उठकर उससे मिले।

गीत अर्ध भापरी

'वरतारो—छंद दोहा'

धुरां अंत धर भाषरी, पद चहुँ चहुँ कर पेम।
भेद सुदुय दुय पद भणों, अरध भाषरी एम॥

भावार्थ—आदि और अत में भाषरी गीत में चार चार पद प्रेम से रखते हैं। भेद यही है कि अर्ध भाखरी गीत में दो दो पद कहो।

विशेष—अर्ध भाखरी गीत भाखरी गीतका आधा होता है। इसमे प्रथम दो पद भाखरी गीत के फिर तीसरे पद में सिंहावलोकन कर वैताल छंद के दो पद रखे जाते हैं।

उदाहरण

मिथुला मुगटराजी पत ले बांचिया कर खांत।
जिण विध मुख जवां जी भूपत सुणे सगली भांत।

जिण विध मुखजवां जी भूपत सुणे सगली भांत ।।
सह भांत विगत विवाह सुणतां अंग प्रफुलत आंण ।
पत किरण निकसे रसम परसत जलज विकसे जांण ।।१।।

अवल उकीलनूं जी आदर कुरब दे अवधेस,
वडम विदेहरी जी वेल कुशलात पूछी वेस ।
कुसलात पूछ विदेहरी वर उतारे निज वाग,
वल जावता किय अतुर विधविध इधक कर अनुराग ।।२।।

कह कामैतयां जी हुकम सहकारखाना होय,
अवर जनेतियां जी साजत कीजियो सहकोय ।
सहकोय साजत करो सुभडां विरद झल वरियांम,
कुल जनक कुमरी व्याह करसी रिधू वरसी रांम ।।३।।

उमग उदारसुजी ते सव हुआ जांन तियार,
मदनकुमारसाजो सज सज अतुल कर सिणागार ।
सिणगार कर दुति विहस पूषण जगे भूषण जोत,
पष पूरजाणैं विवध संपत अवध कीध उदोत ।।४।।

शब्दार्थ—मिथिला-मुगटरा = राजा जनक के । खत = पत्र । खात = ग़ौर से, हर्ष पूर्वक । मुखजवा = मुँह-जबानी । पत किरण = सूर्य । रसम = रश्मि । अव्वल, प्रथम, उत्तम । उकीलनू = वकील को । आदर कुरब = स्वागत करना । वडम = बड़ा । वेस = विशेष । अतुर = अतुल, बहुत । कामैतियांजी = कामदार । साजत = तैयार । विरदझल = विरुद को झेलनेवाले । वरियांम = श्रेष्ठ । सुभडां = सुभट, योद्धा । रिधु = निश्चय । पूषण = सूर्य । पखपूर = पूर्ण पक्ष ।

भावार्थ—राजा जनक के पत्र को लेकर हर्षपूर्वक पढ़ा । और जिस प्रकार राजा दशरथ ने वे बातें (जो जनक ने कहलवाई थीं) सब

तरह से मुह जवानी सुनीं। सब तरह से विवाह की हकीकत सुनते हुए राजा के अंग प्रफुल्लित हो गये। मानो सूर्य के उदय होने से उसकी किरणों का स्पर्श कर कमल खिले हों।

सर्व प्रथम उस वकील का राजा दशरथ ने बहुत सत्कार किया। फिर राजा जनक की विशेष कुशल पूछी। प्रसन्नता का हाल पूछ कर उसे अपने बाग में स्थान दिया। और अनेक प्रकार से बड़े प्रेम से उसकी खातिर की।

कामदारों को कहा कि सब कारखानों में हुक्म भेज दो कि और भी बरात में चलनेवालों को तैयार करना। सब योद्धा और श्रेष्ठ कवीश्वर लोगों को तैयार करना। जनक वंश की पुत्री से रामचंद्र निश्चय ही विवाह करेंगे।

बड़े उत्साह से सब बरात के लिये तैयार हो गये। वे लोग सजकर और खूब शृंगार करके कामदेव के पुत्र जैसे मालूम पड़ते थे। और उनकी शृंगार द्युति सूर्य की हँसी कर रही है। और आभूषणों की ज्योति ऐसी मालूम पड़ती है कि मानों चंद्रमा अनेक संपदा से अयोध्या में प्रकाश कर रहा हो।

विशेष—प्रथम और चतुर्थ द्वाले के अंत में उत्प्रेक्षालंकार है और चतुर्थ पद के आरंभ में ललितोपमालंकार है।

गीत जात प्रोढ

'वरतारो—छंद कुकभा'

पंच चार त्रिय चार विषम पद सोहलैं मत्ता साजै।
तीन चार त्रय दस सम तुक में गुरु लघु मोहरा गाजै।
विषम बले सम विषम वले सम पद चहुं द्वालों पुणजै।
सुध अखरोट मंछ सरसावै गीत प्रोढ़ सो गुणजै॥

भावार्थ—पाँच, चार तीन, चार, इस प्रकार से विषम पदों में १६ मात्राएँ सजाओ। तीन चार और तीन इस तरह १० मात्राएँ अंत में गुरु लघु से तुकांत सम पदों में रखो। विषम और सम और फिर विषम और सम इस प्रकार चारो पद से एक द्वाला कहना चाहिए। मछ कवि कहता है जिसमें शुद्ध अक्षर हों उसे प्रौढ़ गीत कहना चाहिए।

विशेष—इस गीत को सोरठिया गीत भी कहते हैं।

उदाहरण

'विवाह आरंभ-गीत'

मगके मुकामां करे मिथुला। आविया अवधेस।
सुण अतुल साज झलूस सारा। मिले छक मिथलेस॥ १॥
मुनिराय कंवरा सहित मिलता। चवे झिलता चाव।
भुज सबल चाप अमांप भांगे। प्रबल आप पसाव॥ २॥
दिन सतानंद तिणवार दाखै। अमल मुहुरत आज।
सिणगार दुलहा सूर सांमत। सजे पूर समाज॥ ३॥
चहुँ चढै दुरदां चमर ढुलतां। डमर सजिया डांण।
चल बाँध तोरण बैठ चंवरी। प्रगट जोडे पांण॥ ४॥

शब्दार्थ—चवै = कहते हैं। झिलता चाव = उमंग से भरे। पसाव = प्रसाद, कृपा से। दुलहा = दूलह। दुरद्दा = हाथी। डाण = जलूस।

भावार्थ—मार्ग में कितने ही मुकाम करके राजा दशरथ जनकपुर में आये। राजा जनक ने जब यह सुना तो जलूस सजाकर सन्मुख जाकर बड़ी प्रसन्नता से मिले।

मुनि के साथ राजकुमारों से मिलते हुए (राजा दशरथ) उमंग से

भरे हुए बोले - इन्होंने आपकी कृपा से अपार बलवाले धनुष को हाथों से तोड़ डाला।

सतानंद ऋषि ने उस समय कहा कि आज मुहूर्त बड़ा अच्छा है (यह सुनकर) दूलह को और शूरवीरों आदि को सजाया।

चारों भाई हाथियों पर चढ़कर और बड़े आडम्बर से जलूस सजाकर चॅवर डुलाते हुए चले। और तोरण की रीति कर चंवरी में बैठ कर और हथलेवा जोड़ा (अर्थात् पाणिग्रहण किया)

रिष सात प्रोहत के अपूरब। को गिणै दुज काय।
ब्रह्माद करकर रूप ब्राह्मग। अमर बैठा आय ॥५॥
उछरंग अत विध वेद उत्तम। रचे मंडप रीत।
सुत चार दशरथ तणा साथे। परणियां कर प्रीत ॥६॥
वड़ कंवारि सीत विदेहरी। रघुनाथ वर राजेस।
अरु अनुज कवरी ऊरमला। सो सकज व्याही सेस ॥७॥
नृप भ्रात कुसधुज तणें नागर। देस पुत्री दोय।
इक मांडवी वर भरथ अरिघन। सतुत कीरत सोय ॥८॥
परणाय सुत उजवाल पाखां। दान लाखां दीध।
गिरवांण हरख्या गगन मारग। कुसुम वरषा कीध ॥९॥

शब्दार्थ—उछरंग = हर्ष। परणिया = विवाह किया। अनुज = छोटी कुमारी। सतुत = छोटी। परायण = विवाह करके। उजवाल = उज्वल करके। पाखां = पक्ष।

भावार्थ—सप्तऋषि कितने ही पुरोहित और ब्राह्मणों की गणना तो कौन कर सकता है, वहाँ तो ब्रह्मादि अनेक देवता भी ब्राह्मणों का रूप धर कर बैठे हुए हैं।

अत्यंत हर्ष से वेद की रीति के अनुसार उत्तम मंडप बनाया। (उसमें) दशरथ के चारो पुत्रों ने एक साथ विवाह किया।

राजा जनक की बड़ी पुत्री सीता रामचंद्र को और छोटी पुत्री उरमिला लक्ष्मण को ब्याही गई।

राजा (जनक) के भाई कुसधुज ने अपनी दोनों पुत्रियों को देखकर एक मांडवी तो भरथ को, और छोटी पुत्री कीर्त्ति शत्रुघ्न को ब्याह कर और अपने पक्ष को उज्वल कर लाखों का दान दिया। आकाश में देवतागण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की।

इण तरैं हुवैं छैं पिण दूजो प्रोढ़

वरतारो–छंद चौबोला

दूजो प्रोढ़ चवद कल दीजैं त्रिय चोत्रिय चो विषम तणैं।
बीजी रचना सरब बराबर भेद इतोइज मंछ भणैं॥

भावार्थ—दूसरे प्रोढ़ गीत में तीन, चार, तीन और चार इस तरह विषम चरणों मे १४ मात्राएँ होती है, बाकी मात्राएँ प्रथम प्रौढ़ गीत के बराबर हैं। मंछ कवि इतना ही भेद कहता है।

उदाहरण-गीत

प्रीतकर पुरहूत ऊपर। उठै रघुबर आप।
सहस भग किय चसम सहसा। सकत मेटे श्राप॥

भावार्थ—वहाँ रामचद्र ने इन्द्र के ऊपर बहुत प्रेम करके उसके हजार भगों के हजार नेत्र कर कठिन शाप को नष्ट कर दिया।

विशेष—जिस समय इंद्र गौतम ऋषि का रूप धर कर उनकी स्त्री अहिल्या का सतीत्व भग करने को गया था, उस समय गौतम ऋषि ने शाप दिया था तू बड़ा कामी है, अतः तेरे शरीर में भग हो जायँ। तब तो इंद्र बड़ा घबराया और ऋषि से उसने प्रार्थना की कि मुझे क्षमा कीजिये। तब ऋषि ने कहा कि मेरा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। हाँ, जब

भगवान रामचंद्र अवतार धारण करेंगे, उस समय तेरे ये भग नेत्र हो जावेंगे।

अथ गीत जात सिंह चलो

'वरतारो-छंद ककुभा'

चरण विषम साणोर लघूचा असम चरण में आवै।
तेरह कला तणी है सम तुक मोहरा रगण मिलावै॥
सिंह चलो इण रीत समझनै कविगण गीत सुकरजै।
आंण मंछ कह उकत अनूठी राम तणां गुण ररजै॥

भावार्थ—इस गीत के विषम चरणों में छोटे साणोर गीत की विषम चरण की मात्राएँ आती हैं। इसके सम पद ११ मात्राओं के होते है। और तुकान्त में रगण मिलाना चाहिए। मंछ कवि कहता है कि हे कविगण, इस तरह सिंहचल गीत समझ कर करो और उसमें अनूठी उक्ति से राम के गुण कहो।

उदाहरण-गीत

परगत इम भ्रात चहूँ परणीजै,
माण किता चा मारिया।
डांणां हूत सजोडा डेरां
पाछा बींद पधारिया॥ १॥
छोडा छोड करंता छोलां,
नामे सीस नरेसनूं।
लंघे रात अणंद अलेखें,
सो सुख नहीं सेरेशनूं॥ २॥

खेले जुवा डोरडा खोले,
सह सुभ कारज सारिया ।
देवां देव जिकण ही देखो,
जातां देव जुहारिया ॥ ३ ॥
सारी जिनस कुमेर समोवड,
खोल भंडारां खांतसूं ।
आछा भोग अनेक अचारां,
भात दिया बहु भांतसूं ॥ ४ ॥
दासी दास रथां पद दंती,
कोतल चंचल कायजैं ।
कोडां माल खजानां रोकड,
दीध विदेही दायजैं ॥ ५ ॥
पुंहचावण डेरां लग पालो,
सगलानूं सनमानियां ।
पाणां जोड किया भूपत सूं,
जाजा राजी जांनिया ॥ ६ ॥
सीखां करे चढ़े इम दशरथ,
घणां निसाण घुरायनैं ।
चौमासे जाणैं गज चढियो,
बादल इंद्र बणायनैं ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—मांण = मान, गर्व । डाणां हूत = जलूसे से । सजोड़ा = युगल रूप, दूलह, दुलहिन । बींद = दूलह । छोडो = गठ बंधन । छोलां = खेल, हर्ष । लंघे = व्यतीत की । अणंद = आनंद । अलेखैं =

१ पाठां० = पट ।

अपार। डोरडा = कंकन डोरडे (विवाह में जो डोरे हाथ के बाँधे जाते हैं) सारिया = सम्पूर्ण किये। देवांदेव = रामचंद्र। जातां = जात देकर, पूजन कर। जुहारिया = नमस्कार किया। जिनस = वस्तु। कुमेर = कुवेर। खांतसूं = समक्ष के साथ। अचारा = अचार। भात = भोज। पद = पैदल। कोतल = घोड़े। कायजें = घोड़े की लगाम की वाग काठी में टँगी हुई। पालो = पैदल। जाजा = (भाभा) बहुत अच्छा। जांनिया = बरातियों को। सीखां = विदा।

भावार्थ—कितनों ही के गर्व को खर्व करके इस प्रकार चारों भाइयों ने विवाह किया। दुलहा और दुलहिन जलूस के साथ डेरे पर वापस आये ॥ १ ॥

गठबंधन की रीति हर्ष से करते हुए राजा दशरथ को प्रणाम किया। जैसे अपार आनंद से उन्होंने रात्रि व्यतीत की, वैसा सुख तो इन्द्र को भी नहीं है ॥ २ ॥

जूवांजुई खेली कंकन डोरडे खोले और सब शुभ कार्य सम्पूर्ण किये। देवों के देव (रामचंद्र) को देखो कि उन्होंने भी कुलदेवों की जात देकर याने उनकी पूजा कर नमस्कार किया ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण वस्तुएँ और कुवेर के बराबर खजाना खोल और अच्छे अच्छे खाद्य पदार्थ और आचार आदि से अनेक प्रकार से भोज दिया ॥ ४ ॥

दासी, दास, रथ, पैदल, फौज, हाथी, चंचल घोड़े जिनकी लगाम की बाग काठी में लगी हुई है, करोड़ों का माल और नगद रुपये सीता के दहेज में दिये ॥ ५ ॥

डेरे तक राजा जनक पैदल आये और सब का सम्मान किया हाथ जोड़कर राजा दशरथ को और बहुत प्रसन्न किया ॥ ६ ॥

विदा होकर राजा दशरथ इस प्रकार नक्कारे बजवा कर चढ़े मानो चौमासे में हाथी पर चढ़कर इंद्र बादलों के समूह को साथ लेकर चला हो।

विशेष—अंत में उत्प्रेक्षालंकार है।

गीत जात सालूर

वरतारो-छंद लीलावती

घोडस कल विपम विहस पद वारह धुरपद कला आठर धरै ।
मेलैं तुक प्रथम चतुर्थी मोहरैं, वले द्वतीय त्रिय मेल वरै ॥
कविदाखै मंछ तुकी तो चोकल विमल गीत सालूर वणै ।
धरजै जिन मांहि चिरत धनुधारण भवतारण चहुँवेद भणै ॥

भावार्थ—विपम पद में १६ मात्राएँ, सम पद मे १२ मात्राएँ और आदि पद की १८ मात्राएँ धरनी चाहिएँ । तुकान्त में पहिले और चौथे पद की और दूसरे और तीसरे पद का तुक मिलाओ । मंछ कवि कहता है कि तुकांत में चौकल रखने से सालूर नामक गीत वनता है । चारो वेद कहते हैं कि उसके अंदर धनुषधारी और संसार से पार करनेवाले के चरित्र रखो ।

उदाहरण

परसराम जी आगम-गीत

जाजुल दुजराज करण जुध जाडो,
तस कुठार ढ्रग तायल । राह वरात ईप अजरायल,
आयर ऊभो आडो ॥१॥
रातो झूफ विपम वच रोडै,
जवर इसो कुण जोमंड । मो ऊभां संकर चो कोमंड,
ताणभीच किण तोडै ॥२॥
व्याकुल जान विना जळ वाडी,
कांपत सकल कराळा । उमगे दर दशरथ नृपवाळा,
आया खडे अगाडी ॥३॥

खिमजैं धनु जीरण दिन खूटो,
बोले राम बदीता। सदन उतंग देख द्रुत सीता,
तृण तोडण मिस तूटो ॥४॥
दुगम पिनाक सहल तो दीसे,
विगत हमैं सुण वत्री। खंडे मैं वसुधा विण खत्री,
कीधी वार इकीसे ॥५॥
सहस भुजांधर बले सिरायो,
कर जुध सेन निकंदण। डर मो देख गाधनृप नंदण,
प्रगट रिखी पद पायो ॥६॥
दिल मत धरो भरोसै दूजैं,
क्रोध न करो अकाजा। देव दीन सुरभी द्रुजराजा,
पह रघुवंशी पूजैं ॥७॥
मोडे ताण सरासण म्हारो,
जो तोमें बल जालम। मुनिवर तेज देखता आलम,
सोख लियो गह सारो ॥८॥
अत असव्रत धर परस अधारे,
चले बिपिन तप चाहे। इम थट सहित सुवेश उमाहे,
पुर अवधेश पधारे ॥९॥

शब्दार्थ—जाजुल = क्रोधित। जाड़ो = बड़ा। तस = उसका। तायल = तपे हुए। ईष = देख। अजरायल = जिसको सहन नहीं हो सके। रातो = रत, मस्त। आयर = आकर। ऊभो = खड़ा हुआ। झूम्फ = युद्ध। रोडे = कहे। जोमंड = बलवान। मीच = योद्धा। किण = कौन। बाडी = बाग। कराला = भयभीत होकर। खडे = चलकर। खिमजै = क्षमा करिये। जीरण = पुराना। वदीता = प्रगट। उतंग = ऊँचे।

दुगम = दुर्गम । सहल = सहज, सरल । दीसे = दिखाई पड़ा । वत्री = वार्त्ता । खंडे = खंड, हिस्सा । सिरायी = शीतल किया, दूर किया । सेन = सेना । मोड = तोडना । महारो = मेरा । असतुत = स्तुति । आधारे = करी ।

भावार्थ—जिसके हाथ में कुठार है और नेत्र तपे हुए हैं, जिससे यह बात सहन नहीं की गई, ऐसा क्रोधित ब्राह्मण युद्ध करने को मार्ग रोककर सन्मुख खड़ा हो गया ॥ १ ॥

उस युद्ध-प्रेमी ने कठोर वचन कहे—ऐसा कौन बलवान है ? मेरे खड़े हुए शिवजी के धनुष को चढ़ाकर किस योद्धा ने तोड़ा है ? ॥ २ ॥

जिस तरह बिना जल के बगीचा व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार (परशुराम के क्रोध से) डर कर सब कांप रहे हैं। रामचंद्र उमंग से चलकर आगे आये ॥ ३ ॥

रामचंद्र बोले—क्षमा करिये, धनुष तो जीर्ण और बहुत दिनों का रखा हुआ था। ऊँचे महल और सीता की कांति देखते हुए तृण तोड़ने के मिस से ही टूट गया ॥ ४ ॥

परशुराम बोले—यह दुर्गम धनुष तुझको सरल ही दिखाई दिया होगा—अब मेरी बात सुन। मैंने क्षत्रियों का नाश करके पृथ्वी २१ बार बिना क्षत्रियों के की है ॥ ५ ॥

सहस्रबाहु को भी हटा दिया है और उसके साथ युद्ध करके उसकी सेना का नाश किया है। मेरे ही डर से विश्वामित्र ने ऋषिपद प्राप्त किया है ॥ ६ ॥

रामचंद्र बोले—चित्त में और के भरोसे मत रहना, व्यर्थ ही क्रोध मत करो। देवता, दीन, गाय और ब्राह्मण को रघुवशी राजा पूजते हैं ॥ ७ ॥

परशुराम बोले—यदि तुझ में बल है तो मेरे इस धनुष को चढ़ाकर तोड़। ससार के देखते हुए परशुराम के तेज और (गह) गर्व को सोख लिया ॥ ८ ॥

परशुराम ने बहुत स्तुति की और तप करने की इच्छा से वनमें चले गये। इस प्रकार बड़े आनंद के साथ वे लोग अयोध्या में आये ॥ ६ ॥

गीत झमाळ

'वरतारो'-दूहो

दूहै पर चंद्रायणों, धरै उलालो धार।
गीतां रूप झमाल गुण, वरणैं मंछ विचार॥

शब्दार्थ—उलालो = उलट कर। सिंहावलोकन की रीति से।

भावार्थ—सरल ही है।

उदाहरण

'अजोध्या प्रवेस'-गीत

नृप मेले आया नगर, दोड वधाईदार।
कही विगत विध विध करे आनंद भरे अपार॥
आनंद भरे अपार, अंतेवर आयनै।
सुभट सचव जणं साथ, सुवैण सुणायनै॥
परण पधारे राम जीत द्वुजराजनै।
तुरत करीजे त्यार साँमेलो साजनै॥ १ ॥

शब्दार्थ—मेले = भेजे। अतेवर = अंतःपुर, जनाना। सचव = सचिव, मंत्री। त्यार = तैयार। सामेलो = सन्मुख जाकर मिलना।

भावार्थ—राजा के भेजे हुए वधाईदार दौड़कर नगर में आये—वे हर्षित होते हुए—जो उन्हें समाचार कहा गया था, उसे अनेक प्रकार से कहा। फिर अत्यत आनंद में डूबे हुए अंतःपुर में आये और कहा—योद्धा मंत्री आदि के साथ रामचंद्र परशुराम को जीत और विवाह कर आ गये हैं। अतः शीघ्र ही सांमेला करो।

हुवैं प्रफुल्लत गात हद, साँभल वात सकोय ।
गरक घटा उमँड़ी गरज, हरष सिखंडी होय ॥
हरष सिखंडी होय, अनंत उछाह सूँ ।
जण पुरजण नर नार, मिले वहु चाह सूँ ॥
खासा पट खरजूर, सुभूषण सारनै ।
दीघी दौलत पूर, बधाई दारनै ॥ २ ॥

शब्दार्थ—गरक = गहरी । सिखंडी = शिखंडी, मयूर । जण = सेवक । खासा = अच्छे । खरजूर = चाँदी ।

भावार्थ—सब लोग यह बात सुनकर वेहद प्रसन्न हुए । मानो गहरी घटा उमँड़ी हुई देखकर मयूर प्रसन्न हुआ हो । जिस तरह मयूर प्रसन्न होता है, उसी तरह अनंत उत्साह के साथ अयोध्या के स्त्री पुरुषों ने मिलकर अच्छे अच्छे वस्त्र और चाँदी के आभूषण सजाकर और बहुत सा धन बधाईदारों को दिया ।

बाजराज वारण रथां, अवर समाज अमांम ।
हाजर तिणवारी हुआ, त्यारी करे तमाम ॥
त्यारी करे तमान जलूसां साजिया ।
त्रंबागल रिणतूर विहद्दां बाजिया ॥
चले बधावण चाव, सको सरसायनै ।
धारे तनमन ध्यान जुहारे जायनैं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अमाम = बहुत । त्रंबागल = नकारे । विहद्दा = वेहद ।

भावार्थ—घोड़े, हाथी, रथ और अन्य बहुत से लवाजमे इसी समय तमाम तैयारी करके उपस्थित हो गये । तमाम तैयारी करके जलूस को सजाया । नकारे और तुरही आदि वेहद बजने लगी । सब कोई उत्साहपूर्वक सन्मुख गये और उनका तन मन में ध्यान कर उन्हे ही जाकर प्रणाम किया ।

बींद चढे जीमें वलां, बज करणाल सुवेस ।
कीध वांध तोरण कलस, पुरी अवध परवेस ॥
पुरी अवध परवेस, सजोडा साथियाँ ।
चमर करे चोफेर, हलेचढ हाथियाँ ॥
संभ्रम सारो सहर, वरात विलोकनै ।
विसमै थई वरात लखे पुर लोकनै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वलां = भोजन सामग्री । करणाल = वाद्य विशेष । हले = चले ।

भावार्थ—भोजन करके दूलहा ने करणाल वजाते हुए अयोध्यापुरी में जिसमें तोरण कलश वधे हुये थे, प्रवेश किया। साथियों और दुलहिन सहित अयोध्या में प्रवेश किया । चारों तरफ चँवर डुल रहे हैं । वे हाथी पर चढ़ कर आगे चले । सम्पूर्ण शहर वरात को देखकर चकित हो गया और शहर को देख कर वरात चकित हुई ।

धाम धाम मंगल धवल, हुए हंगाम हलोर ।
छडक पगारा नीर छित, घुरैं नगारां घोर ॥
घुरैं नगारां घोर, सुनगर सिंगारियो ।
वसुधा जाण वसंत रूप निज धारियो ॥
गावैं नवला गीत, वँदै वड वेहड़ां ।
मोहरां वरसे मेह छके अख छेहडां ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—हंगाम = हर्ष । हिलोर = लहर । छडक = छिडक कर । पगारां = मार्ग । वँदै = सन्मुख ले जाना । वेहडां = कलश । अण-छेहड़ां = अपार ।

भावार्थ—घर घर में मंगल हो रहे हैं और हर्ष की लहर वह रही है। मार्ग में जल छिड़का गया है । नक्कारे बज रहे हैं । शहर ऐसा सजाया

गया है मानों वसंत ऋतु समझ कर पृथ्वी ने अपना रूप धारण किया हो। नवोढा स्त्रियाँ गीत गा रही हैं, और कलश लिये हुए सन्मुख आती हैं। और स्वर्ण मुद्राओं की अपार वर्षा हो रही है।

कोडा द्रव खरचे करो, वीर चहुँ तिणवार।
उतरे फील अंबाडिया, दोढी सिरै दवार॥
दोढी सिरै दवार, नरेह निहारती।
मिल कवसल्या मात, उतारी आरती॥
सुत गठजोड़ा सहित थया, निज थान में।
चढ़ कीधा विवहार, जिताक जिहान में॥६॥

नैतियार जिणरो नृपत समाधान सरसाय।
विदा किया दसरथ वड़ो, पहदे कुरब प्रसाय॥
पहदे कुरब पसाय, उमंगे अंग में।
आठूं जाम अभंग रहे, इक रंग में॥
सुख को करै सराहं, नमैं सिर अनमियां।
राघव सा राजांण जिकै घर जनमियां॥७॥

शब्दार्थ—फील = हाथी। अंबाडिया = अंबारी। दोढ़ी सिरै = मुख्य (प्रधान) ड्योढ़ी। दवार = द्वारा। नरेह = निष्कपट। थया = स्थित हुए। नैतियार = निमंत्रित पुरुष। पह = इज्जत। पसाय = पसाव, दान।

भावार्थ—उस समय चारों भाइयों ने करोड़ों का माल अपने हाथ से खर्च किया। ड्योढ़ी के मुख्य द्वार में हाथी पर की अंबारी से नीचे उतरे। ड्योढ़ी के मुख्य द्वार पर निष्कपट देखती हुई कौशल्या माता ने आरती उतारी। गठबंधन सहित वे अपने स्थान पर गये। और विवाह के जो रीति रिवाज संसार में हैं, वे सब किये।

राजा ने निमंत्रित पुरुषों का समाधान करके, इज्जत और दान दे कर उन्हें बिदा किया। वे इज्जत और दान पाकर शरीर में फूले नहीं समाये। दशरथ आठो पहर एक से रंग में रहते हैं। और उनके सुख की तारीफ कौन कर सकता है—जिन्होंने कभी मस्तक नहीं झुकाया था ऐसे लोगों ने भी उन्हें मस्तक झुकाया, क्योंकि रामचंद्र जैसे (देवता) उसके घर मे पैदा हुए हैं।

इति श्री रघुनाथ रूपक मुधरदेस भाषा कवि मंछराम
विरचित श्रीबालकाण्ड तृतीयो विलासः
समाप्तः।

अथ चतुर्थो विलासः ।

(अयोध्याकाण्डः)

दोहा

बालकाण्ड दाख्यो विमल, मेधा मुझ परमांण ।
अवधकाण्ड वरणूं अबै, सुणजै चिरत सुजाण ॥१॥

शब्दार्थ—दाख्यो = कहा । मेधा = बुद्धि । चिरत = चरित्र ।

भावार्थ—सरल ही है ।

गीत जात छोटो सॉणोर ।

दोहा

कहुं गुरु मोहरा लघु कहुं, वणैं दवाला वेस ।
सो छोटो साणोर सझ, कहै सुमंछ कवेस ॥ २ ॥

भावार्थ—मंछ कवि कहते हैं—कहीं तो तुकांत में गुरु और कहीं तुकांत में लघु से जहाँ द्वाले बनते हैं, वहाँ छोटा साणोर गीत समझो ।

विशेष—छोटे साणोर गीत के विषम पदों मे १६ मात्राएँ, और सम पदों में यदि अंत में गुरु हो तो १४ मात्राएँ और लघु हो तो १५ मात्राएँ होती हैं । और प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १८ मात्राएँ होती हैं ।

चार भेद तिणरा चवै, कवियण बड़ ओकूब ।
समझ वेलियो सोहणो, पूडद, जांगडो खूब ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—चवै = कहते हैं । ओकूब = बुद्धिमान ।

भावार्थ—सरल ही है ।

उदाहरण

गीत

राकण दिन अमर सकल मिल आया,
करी अरज सांभल करतार !
राज बिना मारै कुण रावण,
भूरो कवण उतारै भार ॥ १ ॥
इला सखत मंडियो असुरांणों,
संकट जीरो अकथ सहां ।
दीनानाथ ! तूझ बिन दुखरी,
किणनै जाय पुकार कहां ॥ २ ॥
राम ! निचंत आप हुय रहिया,
सुध म्हांरो वीसरिया सांम ।
लेखा सकल विसेक विलोके,
बोले जद राघव बरियांम ॥ ३ ॥
ले वनवास हराय महालछ,
कप हैंजम अणपार कस ।
काटां हिव झाले किरमाळां,
दस सिखाळां सीसदस ॥ ४ ॥
सुण वाणी तन करष मिटे सह,
छक बंदे मन हरष छया ।
जै जै नद पुणता मुख जा जा,
गुणता जस सुरलोक गया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अमर = देवता । सांभल = सुनो । सखत = सख्त, कठिन ।

जीरों = जिसका। अकथ = अकथनीय। निचंत = निश्चिंत, वेफिक्र। साम = स्वामी। लेखा = देवतागण। विसेक = विशेष। वरियाम = श्रेष्ठ। कप = कपि। हैंजम = समूह। हिव = अब। झाले = झेलकर, धारण कर। किरमाला = तरवार। करष = दुःख।

भावार्थ—एक दिन सम्पूर्ण देवतागण मिलकर आये और उन्होंने प्रार्थना की—हे करतार! आपके बिना रावण को कौन मार सकता है? और कौन पृथ्वी का बोझ उतार सकता है? ॥ १ ॥

पृथ्वी पर वह राक्षस वड़ा सख्त हो रहा है जिसका अकथनीय दुःख हम सहन कर रहे है। हे दीनानाथ! आपके बिना हम किसके पास जाकर अपना दुःख कहे ॥ २ ॥

हे राम! आप तो वेफिक्र हो रहे हो। हे स्वामी! आपने तो हमारी सुध भी छोड़ दी है। सम्पूर्ण देवताओं को शिथिल देखे कर रामचंद्र ने कहा ॥ ३ ॥

वनवास लेकर लक्ष्मी (सीता) को छिनवा कर और अपार कपियों के समूह को कसकर रावण के दश मस्तकों को तलवार धारण कर काटेंगे ॥ ४ ॥

यह बात सुनकर मन के सब दुःख मिट गयें और देवताओं ने प्रसन्न होकर प्रणाम किया। और जय-जय शब्द कहते हुए और यश गान करते हुए देवलोक को गये ॥ ५ ॥

दोहा

भणवा कारण भरत नै, मेले नृप मूसाळ।
मोह धार सत्रघण महा, लार गयो लंकाळ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—भणवा = पढ़ने को। मूसाल = ननिहाल। लार = पीछे, साथ। लंकाळ = सुंदर।

भावार्थ—राजा ने भरत को पढने के लिये ननिहाल भेजा। सुंदर शत्रुघ्न उसके प्रेम से उसके साथ गया।

गीत जात वेलियो

'वरतारो-छंद चर्नाकुलक'

सोलै कला विषसपद साजै, समपद पनरैं कला समाजै ।
धुर अठार मोहरा गुरु लघु धर, कहजैं मंछ वेलियो इमकर ॥६॥

भावार्थ—विषम पदों में १६ मात्राएँ और सम पदों में १५ मात्राएँ सजाई जाती हैं। आदि पद में १८ मात्राएँ और तुकान्त में लघु रखो। मंछ कवि कहता है कि इस प्रकार वेलियागीत करो।

'उदाहरण'

'युवराज पदवी आरंभ-गीत'

दिल अंतर एह विचारी दशरथ,
धर पदवी जुवराज सधीर ।
सो दैणी विसवाहीवीसैं,
राज जोग दीसे रघुवीर ॥ १ ॥
मुनिवासिष्ट पूछ दिन महुरत,
खोये दिष्ट त्रिकाला खंभ ।
छछहा दूत चहूँ दिस छंडे,
अवनीपत मंडे आरंभ ॥ २ ॥
देख हंगाम मंथरा दासी,
मिलराणी थी कह्यो समाज ।
सुपह विचार विपन सेवेंछे,
रघुपतनूं देवेंछै राज ॥ ३ ॥
कंथ बुलाय केकई कहियो,
आप बचन पूरीजै आस ।

भरथ अवध पावै पद भूपत,
बरस चवद राघव वनवास ॥ ४ ॥
तवै हुकम गद गद व्याकुल तन,
नृभवण सुतन पालजै नेम ।
सुन सिरनांम चलेवन साँऊँ,
जंगल राम बटावूं जेम ॥५॥६॥

शब्दार्थ—अतर = बीच । विसवाही बीसै = निश्चय । दिष्टत्रिकाला= त्रिकाल की दृष्टिवाले, वसिष्ठ ऋषि । छछहा = वेगवान, शीघ्रगामी । छंडे = भेजे । हगाम = उत्सव । सुपह = राजा । कथ = पति । पूरीजै = पूर्ण करिये । नृभवण = निर्भय । बटावू = पथिक ।

भावार्थ—राजा दशरथ ने मन में यह विचार किया कि यह गंभीर युवराज पद है; यह निश्चय ही देना है । राज्य के लायक तो रामचद्र ही ज्ञात होते हैं ॥ १ ॥

वसिष्ठ मुनि से मूहूर्त पूछा । उस त्रिकालदर्शी (वसिष्ठ) ने स्तंभ रोप दिया । राजा ने शीघ्रगामी दूतों को चारो दिशाओं में भेज दिया और कार्य आरंभ कर दिया ॥ २ ॥

यह उत्सव आदि देखकर मंथरा नामक दासी ने रानी (केकई) से मिलकर सब हाल कहा । राजा का विचार तो वन जाने का है । और रामचंन्द्र को राज्य देंगे ॥ ३ ॥

अपने पति को केकई ने बुलाकर कहा—आप अपने वचनों को पूर्ण कर मेरी अभिलाषा पूरी कीजिये । भरत अयोध्या का राजा हो और चौदह बरस तक राम वनवास करे ॥ ४ ॥

राजा ने व्याकुल होकर और गद्गद कठ से हुक्म दिया—हे पुत्र, निर्भय होकर नियम पालन करो । यह सुनकर और मस्तक झुका कर रामचंद्र वन को पथिक की तरह चले ॥ ५ ॥

विशेष—अंत में उपमालकार है ।

गीत सोहणा

वरतारो—चौपाई

जत कै विषम बेलिये जेम, समपद चवदा कलैं सुनेम ।
लघु गुरु मोहरा अंत लखीजै, कवि इण रीत सोहणो कीजै ॥१॥

भावार्थ—बेलिया गीत की विषम यतियों के अनुसार विषम पद करो और समपदो मे १४ मात्राएँ नियम से रखो। तुकान्त में लघु गुरु लिखो। हे कवि, इस प्रकार सोहणा गीत करो।

उदाहरण

श्रीकवसल्याजी सूंमिलण—'गीत'

राघव आदेश पाय दशरथरो, कवसल्या चे आय कनैं ।
दाखे राज भरथ नै देसी, मातदियो वनवास मनै ॥१॥
सुतहूं तूझ चालसूं साथै, डील सुखमवन विकट डरै ।
छता अवास सावता छूटैं, कवण जावता अवर करै ॥२॥
सीत मेह मारुत तप सहणों, राकस बले कंठीर रहैं ।
विपन कठन रहणों रे बेटा ! संकट भूख अनेक सहैं ॥३॥
बरस बिताय आवसूं बेगो, धोको तरस न कोय धरो ।
झाझी प्रीत घणीविध जणणी ! कंथतणी सुख सेव करो ॥४॥
कुटल कुसील हीण जड़ कोढ़ी, अंधन वृध खल पंगु अजैं ।
अंग अपार हुवैं जो ओगुण, तोपिण नार न नाह तजैं ॥५॥
सुण मां परम पुराणां सायद, सह धरमां पतधरम सिरै ।
पिरिया सहित सासरो पीहर, तारै पांवद आप तिरै ॥६॥
ग्यान द्रिढ़ाय चले गह सारंग, कट अलचंग निषंग कसे ।
घोर हुओ असुरांण तणैं घर, हरष घणैं गिरवाण हँसे ॥७॥८॥

शब्दार्थ—आदेस = आज्ञा। कनैं = पास। मनै = मुझको। डील = शरीर। सुखम = सूक्ष्म। छता = मौजूद। सावता = सम्पूर्ण। जावता = रक्षा। कठीर = सिंह। वेगो = जल्दी। तरस = थोड़ा भी। वृध = वृद्ध। अजै = युद्ध मे हारनेवाला। नाह = पति। सायद = साक्षी। पिरिया = पीढिया, पुश्त। खावद = पति। घोर = दुःख।

भावार्थ—रामचंद्र दशरथ की आज्ञा पाकर कौशल्या के पास आकर बोले—हे माता! पिता भरथ को राज्य देंगे और मुझको वनवास दिया है ॥ १ ॥

(यह सुन कौशल्या बोली) हे पुत्र! मैं तेरे साथ चलूँगी। तेरा छोटा शरीर है और बन बड़ा विकट है, उसमें भय लगेगा। मौजूद जो महल है, वे सब छूट जायँगे। और वहाँ कौन रक्षा करेगा ॥ २ ॥

शीत, वर्षा, हवा और गरमी सहन करनी होगी। वहाँ पर राक्षस और सिंह रहते है। अरे बेटा! वन में रहना बड़ा कठिन है। वहाँ अनेक प्रकार के कष्ट और भूख सहन करनी होगी ॥ ३ ॥

(रामचंद्र बोले) इन वर्षों को व्यतीत करके शीघ्र ही आऊँगा। इसमें जरा भी धोखा मत समझो। हे माता, अनेक प्रकार से बड़ी प्रीति से स्वामी (पति) का स्मरण और सेवा करो ॥ ४ ॥

चाहे पति कुटिल हो, व्यभिचारी हो, नपुंसक हो, कोढी हो, अंधा हो, वृद्ध हो, दुष्ट हो, पंगुल हो, युद्ध में परास्त होनेवाला हो और चाहे उसमे अनेक औगुण हों तो भी स्त्री को पति नहीं छोड़ना चाहिए ॥ ५ ॥

हे माता सुन—पुराणों की साक्षी है कि सब धर्मों में पतिधर्म ही श्रेष्ठ है। पीढियो सहित श्वसुरालय, पितृगृह और पति को तार कर आप (स्वयं स्त्री) तर जाती है ॥ ६ ॥

यह ज्ञान दृढ़ करके धनुष लेकर और कटि मे भाथा कसकर रवाना हुए। (उनके रवाना होने से) राक्षसों के घरों में दुःख छा गया और देवतागण बहुत प्रसन्न होकर हँसे।

गीत जाति मुकताग्रह

'इणनूँ रिण खरोहीं पिण कहैं छै'

वरतारो—सोरठा

गरवत कीजै' गीत, अंत विषम तुक आद सम।
सिघविलोक सरीत, मुकताग्रह जिणनै मुणै ॥ ९ ॥

भावार्थ—गरवत गीत अर्थात् प्रहास गीत के विषम तुक के अंत में जो शब्द हों, उन्हें सम तुक के आदि में रखकर सिंहावलोकन करो। इसको मुकताग्रह गीत कहते हैं।

विशेष—मुकताग्रह गीत के विषम पदों में २० मात्राएँ और सम पदों में १७ मात्राएँ होती हैं। प्रथम द्वाले के प्रथम पद की २३ मात्राएँ होती हैं। प्रथम पद के अत के शब्दों को द्वितीय पद के आदि में और तृतीय पद के चतुर्थ पद के आदि में रखकर सिंहावलोकन किया जाता है।

उदाहरण—सीता मिलण

'गीत'

पगां वंद उतमंग मा कनैथी पधारे,
पधारे महल को दंड पाणी।
विदेही सुतानैं गुणी जेती विगत,
विगत तेती पुणी तात वाणी ॥१॥

अरण आज्ञाकरी मूझ नायक-अवध,
अवध वितानैं वेग आवां।

जानकी ! रहोला अठैं मो जनकरैं,
जनकरैं कनां पोंहचाय जावां ॥२॥

विमल थे मात नै सीख विग्यांनविध,
ग्यांनविध सुणी मैं गूढ़ गाथे ।
सरवथा रहूं नह कठैई साम ! हूं,
साम ! हूं चाल सूं आप साथे ॥३॥

पंथ करसूं ग्रहण वंदगी प्रेमसूं,
प्रेमसूं वले वृत नेम पाळूं ।
जाणजै भरोसो छोड़ नह जावस्यो,
जावस्यो छोड़ तो देह जाळूं ॥४॥

लछीरा वचन सांभल कमल लोयणां,
लोयणां कुरंगी लियां लारा ।
सहोदर हुता मिळ पिता वच सुणाया,
सुणाया जिताई कथन सारा ॥५॥१०॥

शब्दार्थ—पगां—चरणों को । उतमंग = उत्तमांग, मस्तक । कनैथी = पास से । गुणी = कही । जेती = जितनी । तेती = उतनी । अरण = अरण्य, वन । अग्या = आज्ञा । अवध = अवधि । बितानै = व्यतीत करके । अठै = यहाँ । सीख = शिक्षा । गूढ़ गाथे = गुप्त बात । नह = नहीं । कठैई = कहीं भी । वृत = व्रत । कमल लोयणां = कमल जैसे नेत्रवाले (रामचंद्र का विशेषण) । लोयणां कुरंगी = हरिणी जैसे नेत्रवाली (सीता का विशेषण) । जिताई = जितने ।

भावार्थ—(माता के) चरणों पर मस्तक झुकाकर माता के पास से धनुर्धारी रामचंद्र अपने महल में पधारे । विदेह राजा की पुत्री सीता से पिता के वचनों की जितनी हकीकत थी, वह सब कही ॥१॥

मुझे अयोध्या के स्वामी (दशरथ) ने वन मे जाने की आज्ञा की है। मैं उसकी अवधि व्यतीत कर शीघ्र ही आऊँगा। हे सीता ! यहाँ रहोगी या अपने बाप के पास ? या राजा जनक के यहाँ पहुँचा दें ॥ २ ॥

(सीता बोली) आपने विज्ञान की रीति से जो माता को शिक्षा दी थी, वह गुप्त बात मैने सुन ली है। हे स्वामी, मैं सर्वथा कहीं नहीं रहूँगी। हे स्वामी ! मैं आपके साथ चलूँगी ॥ ३ ॥

मैं मार्ग में प्रेम से आपकी सेवा ग्रहण करूँगी। और प्रेम से नियम-बद्ध होकर व्रत का पालन करूँगी। इसका आप विश्वास रखिये कि आप छोड़कर नहीं जा सकेंगे। यदि छोड़कर चले जायँगे तो मैं अपनी देह जला दूँगी ॥ ४ ॥

लक्ष्मी (सीता) के यह वचन सुनकर कमल-नयन (रामचंद्र) ने मृगनयनी (सीता) को साथ ले लिया। फिर भाई (लक्ष्मण) से आकर मिले और पिता की जितनी कथा थी, वह सब सुनाई।

विशेष—यमकालंकार है।

गीत इक खरो

वरतारो—चन्द्रायणौं

कला चतुर दस सार, चरण इक कीजिये।
चरण रचैं इम चार दवालैं दीजिये ॥
उहिज अंकपद अंत, रगण गण आणजै।
जिको गीत कहे मंछ इक खरो जांणजै ॥११॥

भावार्थ—चौदह मात्राएँ ठीक करके एक चरण बनाओ। इस प्रकार चार चरण रचकर द्वाला करो। उन्हीं अंकों में अर्थात् १४ मात्राओं में पद के अंत मे रगण लाओ। मंछ कवि कहते हैं कि उसे इकखरा गीत जानो।

उदाहरण

राम लखण प्रश्नोत्तर–'गीत'

सुण सेसरे सुण सेसरे, दिलके कई उपदेसरे।
वनवास जावण वेसरे, इम आखियो अवधेसरे। १॥
राणी सुवयण सरीतरे, नृप इसी उपजी नीतरे।
तन भरथ सूं कर प्रीतरे, महपाल करसी मीतरे॥२॥
इक हुकम कीजैं आपरै, वे गहूँ माई वापरे।
केकई अंगजू कापरे, सहकरूँ दूर संतापरे॥३॥
पित गुरां वयण प्रमांणरे, जो करै नांहि अजाणरे।
नर भोगवै नरकाणरे, भू जितैं अंबर भाणरे॥४॥
मन एहधारी रामरे, संग चालस्यूँ घनश्यामरे!
करस्यूँ जु किंकर कामरे, हर! पूरसो मन हामरे॥५॥

शब्दार्थ—सेसरे=हे लक्ष्मण। आखियो=कहा। महपाल=महिपाल। वे=दोनों को। गहू=पकड़कर। कापरे=काटकर। अजाणरे=अज्ञानी। नरकाणरे=नरकों को। पूरसो=पूर्ण करो। मनहाम=मन की इच्छा।

भावार्थ—हे लक्ष्मण, सुनो! केकई के उपदेश से अयोध्यापति (दशरथ) ने वन जाने के लिये कहा है॥१॥

राणी (केकई) के वचन सुनकर राजा (दशरथ) को ऐसी नीति उत्पन्न हुई है। हे मित्र! पुत्र भरत से प्रेम करके उसे राजा बनावेंगे॥ २॥

लक्ष्मण ने कहा—आप एक आज्ञा कीजिये, मैं दोनो माँ बाप को पकड़ लूँ। और केकई के अगों को काट डालूँ और सब दुःखों को दूर कर दूँ॥ ३॥

रामचंद्र बोले—पिता और गुरु के वचनों को जो अज्ञानी प्रमाण नहीं मानता, वह मनुष्य जबतक पृथ्वी और आकाश और सूर्य हैं, तबतक नरक-यातना भोगता है ॥ ४ ॥

लक्ष्मण बोले—हे राम ! मैंने मन में यह धारण कर लिया है कि मैं आपके साथ चलूँगा। हे घनश्याम ! मैं सेवक की तरह काम करूँगा। हे ईश्वर ! मेरे मन की इच्छा पूर्ण कीजिये ॥ ५ ॥

इति श्री रघुनाथ रूपक मुरधर देस भाषा कवि मछाराम
विरचितोय अयोध्या कांडः चतुर्थो विलासः समाप्तः।

अथ पंचमो विलासः ।

(वनकाण्डः ५)

वाल अयोध्याकाण्ड विध, चवे मंछ कर चूंप ।
तिमही सुक्षम वन तणी, आखूं कथा अनूप ॥ १ ॥

शब्दार्थ—चुप = उमग । सुक्षम = सूक्ष्म । वन = वनकाण्ड । आखूं = कहता हू ।

भावार्थ—सरल ही है ।

गीत जात दीपक

दोहा

तुकां वेलिये गीतरी, आद दुतिय चतुरंत ।
तिय पद दोय दुमेल तुक, दीपक सो दाखंत ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस गीत के प्रथम द्वितीय और चतुर्थ के अतवाले (पाचवें) पदों में वेलिया गीत की तुकें हों और तृतीय दो पदो में दुमेल गीत की तुकें हों, उसे दीपक गीत कहते हैं ।

विशेष—इस गीत मे ५ चरण होते हैं । प्रथम द्वाले के प्रथम पद में १८ मात्राएँ होती हैं । और अन्य द्वालों में प्रथम पद की १६ मात्राएँ होती हैं । द्वितीय और पंचम पद में १५ मात्राएँ और तृतीय और चतुर्थ मे १६ मात्राएँ होती हैं । दूसरे और पांचवें पद का तथा तीसरे और चौथे पद का तुकांत मिलाया जाता है ।

उदाहरण

वन-विहार-गीत

इसवर सीथ सेस चढ़े रथ ऊपर,
तहक सारथी खडे तुरंग ।

नगर हलक हाले नरनारी, घर धंधो छोड़े घरवारी।
मिलं तानूं दी सीख उमंग ॥१॥

भील गुहो बन मिले भाव सूं,
परम भगत पोरस भरपूर।
मोडण लागो आप दिस मांजी, जिणनूं कही हकीगत जाझी।
दल रापस करणाहिव दूर ॥२॥

अंतरजामि गंग तट आया,
कह तिणवार बुलायो कीर।
आयो नाव लिया हुय आतुर, चितां विचार कह्यो इम चातुर।
वारजहग सुणजै रघुवीर ॥३॥

धोवैं नीर उडप पग धरजैं,
रज सिल उठी, किसू वनदार।
उज्जल उदक धुवाया ओयण, लंघे पार सरिता मृदु लोयण।
प्रभु भींवर कीधो भवपार ॥४॥

जण अपणाय गया तारण जग,
चित्रकूट गिर सिखर उचास।
सुलफ सिला छाया जल सुंदर, पेष प्रभाठभ रहे पुरंदर।
निरप तठै हरि लीध निवास ॥५॥

शब्दार्थ—इसवर = ईश्वर। तहक = जल्दी। खड़े = चलाये। हलक = एकचित्त होकर। हाले = चले। धंधो = कार्य। तांनू = उनको। सीख = विदा। भगत = भक्ति करनेवाला। पोरस = पुरुषार्थ। मोडण लागो = मोड़ने लगा। कीर = केवट। उड़प = नौका। दार = दारु, लकड़ी। उजल = उज्ज्वल। उदक = जल। धुवाया = धुलवाये।

ओयण = चरण। भींवर = धीवर। उचास = ऊंचा। सुलप = साफ। टभ रहे = चकित हो रहे। तठै = वहाँ।

भावार्थ—ईश्वर (रामचद्र) सीता और लक्ष्मण रथ के ऊपर चढ़ गये। सारथी ने घोड़ों को शीघ्र चलाया। नगर के स्त्री-पुरुषों द्वारा एकत्रित होकर और गृहस्थ अपना कार्य छोड़कर (मिलने के लिये) रवाना हुए। और मिलकर उनको हर्ष से विदा दी ॥ १ ॥

वन में प्रेम से गुह नामक भीलों का राजा मिला, जो पुरुषार्थी और बड़ा भक्त था। वह इन्हें अपनी ओर मोड़ने लगा। तब उससे सब हकीकत कहकर कहा कि अब राक्षसों के दल को दूर करना है ॥२॥

अतरयामी (रामचंद्र) गगा के किनारे पर आये। किसीसे कहकर एक केवट को बुलाया। वह नाव लेकर शीघ्र आया। उस चतुर ने चित्त में विचार कर कहा—हे कमलनेत्र रामचंद्र, सुनो ॥ ३ ॥

पानी से चरण धोकर नाव में रखना, क्योंकि इनकी रज से शिला (अहल्या बनकर) उड़ गई है तो इस बन के काष्ठ की क्या चलाई जाय। उज्वल जल से पाँव धुलवाकर कोमल नेत्रवाले (रामचंद्र) को नदी के पार उतार दिया। और ईश्वर (रामचंद्र) ने धीवर को भवपार कर दिया ॥ ४ ॥

जगत को तारनेवाले (रामचद्र) अपने भक्त को अपना कर चित्र-कूट गिरि की ऊँची चोटी पर चले गये, जहाँ पर साफ शिलायें, छाया और सुदर जल है और जिसे देखकर इंद्र भी चकित है। ऐसे स्थान को देखकर ईश्वर (रामचद्र) वहाँ ठहरे ॥ ५ ॥

गीत सावक अडल

वरतारो–छंद–दोहा

ले चहुँ पद साणोर लख, विषम तिकण में वीर।
इक सबदो चोकल अगर, सावक अडल सधीर ॥४॥

भावार्थ—साणोर गीत के विषम पद की मात्राएँ चारों पदों में देखो। और आगे चौकल का एक ही शब्द चारों के अंत में रखो। हे सधीर ! वह सावक अडल है।

विशेष—इस गीत के प्रत्येक चरण मे सोलह सोलह मात्राएँ और अंत में चौकल सहित होती हैं। और जो शब्द प्रथम पद के अंत में आया हो, वही चारों चरणों के अंत में भी आवेगा। इसे उदाहरण मे देखो।

उदाहरण-गीत

दासरथी लिखमण सुत दशरथ, दोऊ सुणे सिधारे दसरथ।
दीह उचाटी कीधे दशरथ, दीधो प्राण पछाड़ी दशरथ ॥१॥
पह तन जतन कियो जिण पाणां, पत्र लिखे मंत्री निज पाणां।
पायक तेड वूवे पत्र पाणां, पुणे भरथ चै दीजै पाणां ॥२॥
वे मूसाल नींद वश आये, अण शुभ सपन अनेकां आये।
उठ कडकस शत्रघण उप आये, आतुर उभै अजोध्या आये ॥३॥
दारुण नगर सोक जुत देखे, दोलत विणज वजार न देखे।
दुंदभि गरज गान न देखे, दुरंग अढंग आयकर देखै ॥४॥५॥

शब्दार्थ—दासरथी=रामचंद्र। दीह=दीर्घ। उचाटी=उचाटन। पह=सुपह, राजा। पायक=हलकारे दूत कासिद। तेड=बुलाकर। वूवे=दिया। भरथ चै=भरत के। मूसाल=ननिहाल। कडकस=कडे होकर कठिन होकर। उप=समीप। विणज=व्यापार। दुरंग=दुर्ग।

भावार्थ—दाशरथी रामचंद्र और दशरथ के पुत्र लक्ष्मण दोनों ने सुना कि दशरथ सुरपुर सिधार गये। उनका चित्त उचट गया। पीछे से राजा दशरथ ने प्राण दे दिये॥ १ ॥

राजा के शरीर का जिन हाथों से यत्न किया था उन्हीं हाथों से

मंत्री ने पत्र लिखा और हरकारो को बुलाकर पत्र दिया और कहा कि भरत के ही हाथ मे देना ॥ २ ॥

वे दोनो ननिहाल में सो रहे थे। उस समय उन्हे अनेक अशुभ स्वप्न दिखलाई दिये। भरत कठिन हृदय करके शत्रुघ्न के पास आये, और फिर उनको लेकर अयोध्या शीघ्र ही आये ॥ ३ ॥

नगर को कठिन शोक में देखा, बाजार में व्यापार आदि नहीं देखा और न नक्कारों की आवाज सुनी और दुर्ग को आकर बेढंगा देखा।

इस तरह भी सावक अडल होता है

द्वितीय-भेद

निरखे अवासां भर निजर, नह देखे दशरथ नृप निजर।
निज देखे नह बंधव निजर, नर दीठा बिलख्या सह निजर॥६॥

भावार्थ—भर नज़र महलों को देखा, किन्तु राजा दशरथ को नहीं देखा। और न अपने भाइयों को देखा। उन्हें सब मनुष्य व्याकुल दिखाई पड़े।

विशेष—(१) सावक अडल के द्वितीय भेद में प्रत्येक पद की १५ मात्राएँ अत में त्रिकल सहित होती हैं। और प्रथम पद मे जो त्रिकल आती है, वही चारों पदों के अंत में भी आती हैं।

(२) सावक अडल गीत के द्वितीय भेद में चार द्वालें होते हैं। यदि इसका एक ही द्वाला रखा जाय तो यही गाहा **चौसर** गीत हो जाता है।

गीत जात त्रंबको

वरतारो—चौपई

कल षोडष इक पदमें करजै, बेपद मोहरो एकहि बरजै।
दुय धुर षट् कल अंत दिरीजैं, चोकल विषमैं चारचवीजैं॥

वेदुय चोकल सों चिहुंवारा, उलट पलट कर पढ़ें उदारा।
मोहरो तीजै मेळ मिलावै, गीत त्रंबको ताहि गिणावै ॥ ७ ॥

भावार्थ—प्रत्येक पद मे १६ मात्राएँ करो। दो दो पदों का तुकान्त एक ही शब्द से मिलाओ। विषम—तीसरे पद में आदि में दो मात्राएँ मध्य में वे चौकल और अंत में एक षट्कल दो। दो दो चौकल चार बार उलट पुलट कर पढ़ी जाय। तुकांत तीन पदों का मिलाया जाता है उसे त्रंबका गीत कहते हैं।

विशेष—त्रंबका गीत मे प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं। प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पद के तुकांत मिलाये जाते हैं। तीसरे पद में आदि में-दो मात्राएँ मध्य में दो चौकल और अंत में एक षटकल रखना चाहिए। तीसरे पद में जो चौकल आवे, वह पलट कर चौथे पद में भी आनी चाहिए। उदाहरण देखने से स्पष्ट हो जायगा।

उदाहरण

केकई भरथ संभाषण–गीत

पूछी मां आगल आय प्रभा,
पितु बंधु न दिसे अंग प्रभा।
सज-राज न रंग न रंग नरा,
गन राज न रंगन राज सभा ॥ १ ॥

पुत्तर ! वर मांग्यो नृप पासं,
यह सो सुत ओ लिय तिण पासं।
श्रीराघव लिखमण लिखमण,
राघव राघव लिखमण बनवासं ॥ २ ॥

घाटा गां लँघे वीर घणां,
घट भंगे भूपत सोक घंणां।
तक राजं साजं साजं,
राजं राजं साजं तूम तणां ॥ ३ ॥
भट नाखूं राज भिभो भारं,
भूंडी भण ऊठें अत भारं।
थूक पापण तोनें तोनें,
पापण पापण तोनें धिक्कारं ॥४॥८॥

शब्दार्थ—आगल = आगे। पुत्तर = हे पुत्र! घाटा = घाटियें। गां = गये। घट = शरीर। तक = देख। भट = भट्टी। नांखूं = डाल दूं। भिभो = वैभव। भूंडी = बुरी। भण = बोले। अतभार = अत्यंत क्रोध से। थूक = धिक्कार है।

भावार्थ—माता के पास आकर (भरत ने) पूछा कि पिताजी, भाई और अंग पर कांति क्यों नहीं दिखाई पड़ती है। न तो राज सजा हुआ है, न मनुष्यों पर ही रंग है और न राजसभा ही पर रंग है ॥ १ ॥

केकयी बोली—हे पुत्र! राजा से मैंने यह वर माँगा था, जो यह सब कुछ उनके पास से लिया हुआ है कि श्रीरामचंद्र और लक्ष्मण को वनवास हो ॥ २ ॥

वे दोनों वीर तो बहुत सी घाटियों का उल्लंघन करके चले गये। राजा ने उनके शोक में शरीर छोड़ दिया। इस राज-साज को देख। यह राज-साज तेरे ही लिये है ॥ ३ ॥

भरत बोले—भट्टी में इस राज्य वैभव को डाल दूँ। (तू दुष्ट है) यह बुरी बात कह क्रोध से उठ खड़े हुए। धिक्कार है तुझे पापिष्ठा! हे पापिष्ठा तुझे धिक्कार है ॥ ४ ॥

१—तणां = पाठान्तर।

गीत जात हेलो

वरतारो-छंद गोया

कल चवद चवदै दुपद सांकल अंत चौकल आंणिये ।
पद त्रतिय दसकल दीह लघु पढ़ ठीक मोरा ठांणिये ।।
इण भांत फिर पद तीन उचरै, पूर द्वालो पाइये ।
कल सोल धुरपद प्रभू गुणकर, गीत हेला गाइये ।।१।।

भावार्थ—दो पदों मे चौदह २ मात्राएँ अत में चौकल सहित लाओ और उनकी सांकल अर्थात् तुकात मिलाओ। तीसरे पद में दस मात्राएँ और अंत में गुरु लघु रखकर मोहरा (तुकात) रखो। इसी तरह से फिर तीन पद बनाकर द्वाले को पूर्ण करो। प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १६ मात्राएँ कर ईश्वर के गुण हेला गीत में गाओ।

उदाहरण

भरथरो कवसल्याजी सूँ संभाषण ।

उठ आय कवसल मात आगैं, लुले सीरष पाय लागे ।
दखै वायक दीण ।।
कैंकई बदनाम कीधो, दोष मोटो मनै दीधो ।
हुवो सारै हींण ।। १ ।।
रोय सुत किम नीर रालै, टलैं, भावी कौण टालै, ।
हुवो होवण हार ।।
पड़ी देह सनेह पेदा, बाप दागण काज बेटा ।
तुरत कीजै त्यार ।। २ ।।
पांण जोडे हुकुम पावैं, अतुर वारैं भरथ आवै ।
ले चले हित लेख ।।

चिता धर समसांण चाहे, दार चंदण बीच दाहे ।
निधा हूत विशेष ॥ ३ ॥
जाल सरजू-तीर जावै, नीर निरमल सको न्हावै ।
आविया आवास ॥
द्वादसो कर भ्रात दोई, जोर कीधो मतो जोई ।
जग हुवैं जस वास ॥ ४ ॥
गुरां प्रोहित सुभट गाजी, तेड मंत्री अकल ताजी ।
सला कीध सधीर ॥
सोज लावां करे सादी, गुमर धारे अवध गादी ।
विराजैं रघुवीर ॥ ५ ॥
भिडज वारण रथां भारी, तडां सारी हुई त्यारी ।
सजे सांवत सूर ॥
वहक भाजे असुर वंका, डहक वंबी सुणे डंका ।
तहक बाजे तूर ॥६॥१०॥

शब्दार्थ—लुले = झुके । सीरप = शीश । दीण = दीन । मोटो = बड़ा । किम = क्यों । राले = डालता है । होवणहार = होनहार । पेटा = पेटी, बाक्स । दागण = दाहकर्म । बारे = बाहर । लेख = देख । समसांण = श्मशान । दार = काष्ठ, लकड़ी । विधाहूत = विधि से । जाल = जलाकर । सको = सब । जोर = एकत्रित होकर । मतो = विचार, सलाह । गाजी = अच्छे पुरुष । सला = सलाह । सोंज = तैयारी । लावा = लाने को । सादी = हर्ष से । गुमर = गर्व । भिडज = घोडे । वारण = हाथी । तडां = जाति । वहक = पागल हो कर । डहक = बहुत । वंबी = नोबत । तहक = घोर । तूर = नक्कारे ।

भावार्थ—वहाँ से उठकर कौशल्या माता के पास आये । शीश झुकाकर चरणों पर लगाया और दीन वचन बोले—कैकई ने मुझे

बदनाम कर दिया है और मुझे बड़ा भारी दोष दिया है जिससे सब जगह मैं हीन हो गया हूँ ॥ १ ॥

कौशल्या बोली—रोकर अब आँसू क्यों बहाता है ? भावी को कौन टाल सकता है ? होनहार थी, वह हो गई। राजा का शरीर पेटी में तेल में रखा हुआ है। हे पुत्र, पिता के दाह-कर्म के लिये शीघ्र तैयारी करो ॥ २ ॥

आज्ञा पाकर हाथ जोड़े, और शीघ्र बाहर आये। अपना हित देख कर उसे (लाश को) लेकर चले। श्मशानमें चिता पर रख कर चंदन की लकड़ियों से उसे विधि सहित जलाया ॥ ३ ॥

जलाकर सरयू नदी के तटपर आये और उसके निर्मल जल से सबने स्नान किया और महलों में वापस आये। दोनों भाइयो ने द्वादशाह किया और फिर एकत्र होकर विचार किया जिससे संसार मे उनका यश हुआ ॥ ४ ॥

गुरु, पुरोहित, योद्धागण, श्रेष्ठ पुरुष और बुद्धिमान मंत्रियों को बुलाकर सलाह की। हर्ष से (रामचंद्र को) लाने के लिये तैयारी करने लगे कि रोब (ठाठ-बाट) के साथ रामचंद्र अयोध्या की गद्दी पर विराजें ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण जाति के हाथी, घोड़े और रथ तैयार हुए और शूर वीर पुरुष सजे। नक्कारों और नौबतों की आवाज सुनकर बाँके २ असुर भी पागल होकर भाग गये।

गीतजात एकल बैणो

वरतारो छंद लीलावती

सोलैं जिण वरण विषम पद, साजैं समपद चवदैं वरण सहैं।
दीजै सडपांत अंक इक दीरघ लघु बीजांसह वरण लहैं॥
धुरपद दस आठ दूसरैं धारो तवै खुडद साणोर तणों।
"गुर आखरन को सरब लघु सो इम एकल बैणां दोय भणों।११।

शब्दार्थ—सउपांत = पद के अंतिम वर्ण के पहले का वर्ण। तवै = कहते है।

भावार्थ—इसके विषम पदों में १६ वर्ण और सम पदों में १४ वर्ण सुशोभित होते हैं, और सम पदों के उपांत्य वर्ण गुरु और वाकी सब वर्ण लघु होते हैं। खुडद साणोर गीत में १६ मात्राएँ होती हैं सो १८ वर्ण इसके आदि चरण मे रखो। एकल वैणा दो प्रकार का होता है। द्वितीय एकल वैणा गीत के सब वर्ण लघु होते हैं। दूसरे एकल वैणां गीत को घणकठा भी कहते हैं।

'उदाहरण'

भरतजीरो प्रयाण

दलवल सज दुगम चढ़िय सुत दशरथ'
तहक तवल अत रुडत त्रवाट
समरण उवर चरण घण सियपत,
वहत चरण उभरण वनवाट ॥ १ ॥
चलकर मजल निकट गिर पहुँचिय,
चढ रज अरस फरक धुज चाहि।
मुझ पर मुकर अवत सुण लिखमण,
निरवल निरख भरथ नरनाह ॥ २ ॥
कितक भरथ हण लियत कलह कर,
उचर धनुष गह उठिय अभंग।
तिकण वषत भृत सह लसकर तज,
चपल सिखर गय नजिक सुचंग ॥ ३ ॥
पग सिर नम यम, अरज करिय प्रभु,
पह दशरथ किय सरग प्रवेस।

वद अनुचर तुव हुकम सकल बस,
अवध-तखत दिल धर अवधेस ॥ ४ ॥
चविय विगत रघुवर सह सुण चित,
सत्रघण अग्रज गवण किय सार ।
कठियल दिय सिर धरिय, प्रणम कर,
फिल गय वल निज नगर मजार ॥५॥१२॥

शब्दार्थ—दलबल = फौज, सेना । दुगम = दुर्गम । तबल = वाद्य विशेष । रुडत = बजते हैं । त्रवाट = नगारे । समरण = स्मर्ण । उवर = हृदय । वहत = चलते हैं । उभरणा = बिना जूतों के, नगे पाँव । अरस = (उरस) = आकाश । चाहि = देखकर । मुकर = निश्चय । अवत = आता है । कितक = कितना है, क्या है । कलह = लड़ाई । उचर = कहकर । तिकण = उस । वखत = समय । भृत = भृत्य, सेवक । नजिक = निकट । यम = इस प्रकार । पह = राजा । सरग = स्वर्ग । वद = समझ-कर । चविय = कहा । अग्रज = बड़े भाई (भरत) कठियल = खड़ाऊ । मजार = में ।

भावार्थ—दशरथ के पुत्र (भरत) सेना सजाकर दुर्गम मार्गों में चढ़ा (चला) । तबल और नगारे खूब बज रहे हैं । भरत रामचद्र के चरणों का हृदय में स्मरण करके बन के मार्ग में नंगे पाँव चले जा रहे हैं ॥ १ ॥

कितनी ही मंजिलें करके चित्रकूट गिरि के पास पहुँचे । आकाश में चढ़ी हुई रज और फरकती हुई ध्वजा को देखकर रामचंद्र लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण ! राजा भरत मुझे निर्बल समझ कर मेरे ऊपर चढ़कर आ रहा है ॥ २ ॥

(लक्ष्मण बोले)—भरत क्या चीज है ? अभी लड़ाई कर मार गिराता हूँ । यह कहकर धनुष लेकर उठ खड़े हुए । उसी समय

वह सेवक (भरत) उमंग से अपने परिवार को छोड़कर शैल की पर्वत (चित्रकूट) के पास चला गया ॥ ३ ॥

पाँवों में मस्तक झुकाकर इस प्रकार प्रार्थना की—हे प्रभु ! राजा दशरथ ने स्वर्ग में प्रवेश कर लिया है। आप मुझे सेवक समझिये। मैं तो आप की आज्ञा के वशीभूत हूँ। और हे रघुवंश ! आप अयोध्या के सिंहासन को चित्त में लावें। अर्थात् उसे ग्रहण करें ॥ ४ ॥

रामचंद्र ने सम्पूर्ण बातें कहीं। वह सब सुनकर भरत चलने लगे। रामचन्द्र ने अपनी खड़ाऊँ उन्हें दीं। भरत ने उन्हें सिर पर रखकर प्रणाम किया; और उन्हें लेकर अपने दलबल सहित अयोध्या चले गये।

दूजो एकल वैणों

गहमत गत असत अवर तत परगत,
अखत दुचित रत भरथ अत।
जगपत हित मुखदुति इण भत जिम,
प्रभुत हुवत दिन रयण पत ॥१२॥

शब्दार्थ—गहमत = सलाह ग्रहण कर। अवरत = और तरह। परगत = परित्याग करना। अखत = अक्षय। दुचित = दुश्चिता। भत = भांति। प्रभुत = प्रभुत्व, वैभव। रयणपत = चंद्रमा।

भावार्थ—रामचंद्र ने जो सलाह दी थी, उसे ग्रहण कर और अन्य झूठे झगड़ों को भरत ने छोड़ दिया। अक्षय दुश्चिता में भरत रहने लगे। जगत के स्वामी (रामचद्र) के लिये इस प्रकार उनके मुख की कांति हो रही है जैसे दिन में चन्द्रमा का प्रभुत्व रहता हो।

गीत भाख

वरतारो—छंद लीलावती

चोकलिय एक उभै पंचकलिवो तवकल चवदै चरण तणैं।
है गुर लघु अंत मिलै चो मुहरां भाख गीत इम मंछ भणैं ॥१३॥

भावार्थ—एक चौकल, दो पंचकल इस प्रकार चौदह २ मात्राएँ प्रत्येक चरण में कहो। और अंत में गुरु लघु रखकर चारों का तुकांत मिलाओ। इस प्रकार मंछ कवि भाप गीत कहता है।

उदाहरण

आयो भरथ अवध अभंग, मंडे पावडी उतमंग।
रइयत कीध अत उछरंग, इम आवास जाय उमंग॥ १॥
जालम तखत कंचण जाण, पधरा पावडी निज पांण।
राजा रामरी रसणांण, आलम अदल वरती आंण॥ २॥
थेट्ट छोड ववां थोक, मह अध दीध हांसल मोक।
सातूं इतरो नह सोक, लंगर सुखी सगला लोक॥ ३॥
वलकल पहरिया धर वोध, राखी इंद्रियां कर रोध।
सोवै धरा आसण सोध, जीमै वखत एकण जोध॥ ४॥
सुत मह केकई सरसाय, वन विध रिपी अंग वणाय।
कीधावारणे धन काय, मन हर रहैं चरणां माय॥५॥१५॥

शब्दार्थ—मडे = धारण किये हुए। उतमंग = उत्तमांग, मस्तक। रइयत = प्रजा। उछरण = उत्सव। पधरा = स्थापित कर। रसणाण = जिह्वा से। आलम = दुनियां। अदल = न्याय। आण = दुहाई। थेट्ट = हमेशा की। ववां = कर, हासिल। थोक = समूह। अध = अर्ध। मोक = छोड़ना। लगर = बहुत। जीमैं = भोजन करै। वरणौं = न्यौछावर।

भावार्थ—मस्तक पर खड़ाऊँ धारण किये हुए भरत अयोध्या में आये। (यह देखकर) प्रजा ने बहुत उत्सव किया। इस प्रकार महलों में हर्ष से भरत गये॥ १॥

वह सोने का सिंहासन बहुत बड़ा था। उसपर भरत ने अपने

हाथों ने उढाउन्नों को स्थापित किया। राजा राम की आज्ञा से दुनिया ने उनकी दुहाई मान ली॥ २॥

(इस खुशी में) हमेशा का कर छोड़ दिया गया, और जमीन का आधा लगान भी छोड़ दिया गया। वहां पर सत ईतियों का कोई भय नहीं रहा। सब लोग बहुत ही सुखी हैं।

भरत ने वल्कल वस्त्र धारण कर लिये और अपनी इन्द्रियां रोक कर रखीं। पृथ्वीपर आसन बिछा कर सोने लगे। वह योद्धा (भरत) एक समय भोजन करने लगा।

उस केकई के पुत्र (भरत) ने वन में जिस तरह ऋषि गण रहते हैं, उसी प्रकार अपने अंगों को बनाया। तन और धन उसने न्यौछावर कर दिया और मन रामचंद्र के चरणों में लगाया।

गीत जात अरध भाख

बरतारो-दोहा

चो मोहरा सूं भाख चव, मोहरा दोय मिलंत।
गुणो मंछ जिणनूं गुणी, भाख-अरध भाखंत॥१५॥

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—इसे गज़ल भी कहते हैं।

उदाहरण

'श्रीरघुनाथजीरो चित्रकूट सूं प्रयाण'

चित्रहकूट सूं भुज चंड, कस भूथाण गह कोमंड।
पिरभू किता वासर पाय, अत्रय तणै आश्रम आय॥ १॥
वंदे भ्रात वेतिणवार, चवियो मुनि सिसटाचार।
निजवह हुती रिपपतनीस, सीतां मिली नामे सीस॥ २॥

आसीस अनुसयादी एम, पुहमी जोड़ अवचल प्रेम।
मुगता तठै कर सनमान, आया अगस्थरै असथांना ॥ ३ ॥

परसे परसपर कर प्रीत, पूछी रहण की परतीत।
किय मोपिता वयण, प्रकास, वरसां चवदरो बनवास ॥ ४ ॥

रिष इम आखियो सुण राम, धर पँचवटी उज्जल धाम।
तप मुनि करै जहां बहुताप, ऊपर तठै कीजै आप ॥५॥१६॥

शब्दार्थ—भूथाण = भाथा । तिणवार = उस समय । सिसटा-चार = शिष्टाचार । हुती = थी । पतनीस = पत्नी । पुहमी = पृथ्वी । जोड = जोडी । मुगता = बहुत । तठै = वहाँ । परतीत = प्रतीत । ऊपर = सहायता ।

भावार्थ—बलवान बाहुवाले (रामचंद्र) भाथा कसकर और धनुष लेकर चित्रकूट से कुछ दिनों में अत्रि ऋषि के आश्रम में आये ॥ १ ॥

दोनों भाइयों ने प्रणाम किया। मुनि ने आशीर्वाद दिया। ऋषि की एक पत्नी थी। उससे सीता शीश नवा कर मिली ॥ २ ॥

अनुसूया ने इस प्रकार आशीर्वाद दिया कि पृथ्वी जब तक है, तब तक तुम दोनों का अचल प्रेम रहे। वहाँ पर बहुत सन्मान पाकर अगस्त ऋषि के आश्रम में आये ॥ ३ ॥

बड़े प्रेम से आपस में स्पर्श किया। ऋषि ने वन में रहने का कारण पूछा। तब रामचंद्र ने कहा—मेरे पिता ने कहा है कि चौदह वर्षों तक वन में रहो ॥ ४ ॥

ऋषि ने कहा कि हे राम, सुनो। यह पंचवटी बड़ा उज्वल स्थान है, जहाँ पर बड़े बड़े तपस्वी तप करते हैं। वहीं पर आप उनकी सहायता कीजिये ॥ ५ ॥

गीत गजगत

वरतारो गीतक छंद

चव कला नव नव तणैं चोपद अंत लघु गुर लीजिये ।
जीकार दुय दुय पदां विच जप वहस मोहरा बीजिये ॥
सोहविलोकण तेण पर सज छंद गीया छाइये ।
कवि मंछ रघुवर कीतकर कर गीत गजगत गाइये ॥१७।

भावार्थ—नौ नौ मात्राओं के चार पद कहो और अंत में लघु गुरु लाओ। दो दो पदों के बीच में 'जी' शब्द कहो और चारों पदों के तुकांत मिलाओ। उस पर सिंहावलोकन करके गीया छंद रखो। मंछ कवि कहता है कि रामचंद्र जी की कीर्ति कह कहकर गजगत गीत गाओ।

उदाहरण

कवंध वध पंचवटी मुकाम

कुंभज कह कहैं जी सियवर सुण सहे ।
वंदे पग वहे जी गैलो वन गहे ॥
वन गहे गैलो जेण विच मे रहे राखस रोस में ।
तन तुंग नाम कवंध तिणरो करग जोजन कोस में ॥
सो हुतो गंध्रप श्राप वासव धिके प्राक्रम धारिया ।
विणसीस दूर प्रसार वाहां घणां जीव संहारिया ॥ १ ॥
उण दिस अनुसरे जी धानुप सरधरे ।
कमला संग करैं जी भाई गह भरे ॥
गह भरे भाई लपण संगा हुवे सामल हालिया ।

---

१ आय पाठान्तर

जिण दनुज पांण पसार, जालम झपट काठा झालिया ॥
दंग[1] बांण[2] तिणरा भुजा दोन्यू वेढिया सुध बांधनै ।
दृढ़ दासरथ उर बले दूजो साझियो सर सांधनै ॥ २ ॥
दाणव दापटे जी थिर सदगत थटी ।
कर कर मगकरी जी पहुँता पँचवटी ॥
पँचवटी पहुँता सुणे रिषपत उमँग सगला आविया ।
प्रफुलंद पंकज जाण षटपद हिये यू हरषावियां ॥
तन विपण यण मैं कठन तपस्यां करां इणहिज कारणैं ।
पुंण[3] सो हुयो फल आज प्रापत आय दरसण वारणैं ॥ ३ ॥
रघुवर तित रहयाजी मोटी करमया ।
भैचक खल भयाजी गहबल तज गया ॥
तजगया गहबल खायतापां भभक ओसुर भागिया ।
उण ठोड जिणरारिषां आश्रम जाग धूमर जागिया ॥
प्रभू रह्या बांधे कुटि पल्लव कहूँ लेस न सोकरो ।
सहतिका ऊपर वारजै सुख लेर तीनूं लोकरो ॥४।१८॥

शब्दार्थ—तुंग = बड़ा, ऊँचा । करग = हाथ । धिके = धके, सामने । उणदिस = उस दिशा में । अनुसरे = अनुसरण किया, चले । गहभरे = गर्व में भरे हुए । सामल = साथ । काठा = मजबूती से । झालिया = पकड लिया । दग = चलाकर । वेढिया = काटे । दापटै = दौड़ कर । थटी = नियत हो गई । मगकटी = मार्ग काट कर । यण में = इसमें । पुण = पुण्य । तित = वहाँ । माया = कृपा । भैचक = भयभीत । गहबल = जबरदस्त बल । तापां = डर । भभक = जल्दी । ठोड = स्थान । धूमर = धूआं ।

---

१ पाठा०—भ्रग = बडा । २ पाठा० = पाण = बल । ३ पाठा०—पिण ।

भावार्थ—अगस्त ऋषि ने जो कुछ कहा, रामचद्र ने सब सुना। और प्रणाम कर वन के मार्ग मे चलने लगे। वन के जिस मार्ग से जा रहे थे, उस मार्ग मे एक क्रोधित राक्षस रहता था। उसका शरीर ऊँचा था, नाम कबंध था और उसके चार कोस मे हाथ थे। वह गंधर्व था। उसने इन्द्र के सामने अपना पराक्रम दिखाया था। अतः इन्द्र के शाप से वह राक्षस हुआ। उसने बिना मस्तक के होकर हाथो को दूर तक फैलाकर बहुत जीवों को मारा था ॥ १ ॥

रामचद्र धनुष लेकर कमला (सीता) को और गर्व मे भरे हुए भाई (लक्ष्मण) को साथ लेकर उसी दिशा मे चले। गर्व भरे भाई लक्ष्मण के साथ साथ चले, जिनको राक्षस (कबंध) ने अपने बलवान हाथ फैला कर और झपट कर मजबूती से पकड़ लिया। उसकी दोनों भुजाओं को रामचद्र ने सुध बाँध कर (निशाना ठीक करके) और बाण चलाकर काट डाला और फिर दूसरा बाण चढा कर उसके हृदय में मारा ॥ २ ॥

राक्षस (कबंध) दौड़ा और उसकी श्रेष्ठ गति नियत हो गई। (रामचद्र) मार्ग काट काट कर पंचवटी में पहुँचे। ऋषिगण उनका पंचवटी मे पहुँचना सुन कर उमंग सहित आये। जिस तरह से कमल को प्रफुल्लित (खिला हुआ) जानकर भ्रमर हर्षित होते है, उसी तरह वे सब हृदय में हर्षित हुए। (और रामचद्र से कहने लगे) इसी कारण इस वन मे हम कठिन तपस्या करते हैं। उस पुण्य का फल आज प्राप्त हुआ है। आपके दर्शनों पर हम न्यौछावर हैं ॥ ३ ॥

बड़ी कृपा कर रामचंद्र वहाँ रहने लगे। (उनके रहने से) दुष्ट भयभीत होकर, और वन छोड़कर चले गये। रामचंद्र के डर से असुरगण भयभीत होकर और अपने बल को छोड कर भाग गये। उस स्थान पर ऋषियो के आश्रमो मे यज्ञ का धूम जाग उठा। वहाँ रामचद्र कुटी बनाकर रहने लगे। वहाँ शोक का लेशमात्र भी न रहा। उनके ऊपर तीनों लोकों का सब सुख लेकर न्यौछावर करो।

गीत जात धमाल

वरतारो-दोहा

भाख तणी तुक प्रथम भण, नव कळ तिण पर न्हाल।
लघु गुरु मोहरा लेखवैं, धारो गीत धमाल ॥१९॥

शब्दार्थ—न्हाल = देखो। भण = कह।

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—धमाल गीत के प्रत्येक चरण में २३ मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में लघु गुरु से चारो पदों का तुकांत मिलाया जाता है।

उदाहरण

सुपनखां विरूप करण

रावण सखा दिग्गज रूप दंडकवन्न रमै,
निरलज सुपनखा तिण नाम गरक अनंग में।
सीतानाथ आगळ सार आई विण समै,
भाल सकांति अद्भुत नरम सुचि रत संभ्रमें ॥ १ ॥
धर कामची उर धाक, अपछर छव धरे,
हवां भाव कर मृदुहेर बोली सुण हरे!।
सीता मुणे हरि मो संग अह दिस अनुसरे,
रीता जाय उप अहिराव सगला कथ ररे ॥ २ ॥
सुतण सुमित्र कहियो सोय साहिब वे खिरे,
जिणरो मनै अनुचर जाण पह रीजत सरे।
धडियक करे प्रभुदिस घूंम लिखमण दिस धरे,
फोगट दुहूं ओडा फेर चक्री जिम फिरे ॥ ३ ॥

कोतिक लखे हुय विकराल दीरघ रद किया,
साखुल वणे चंड सरीर खावण कज सिया।
लेखे असतरी प्रभु लूड सारँग सरलिया,
दोऊ कान नासा दूर आछट कर दिया ॥ ४ ॥

थंडे सोर गी तज थान तक असुरां तणों,
पुणियो जाय विध सूं पुर भुज माटीपणों।
घुमडे सुपरवाणां घोर किय उतसव घणों,
तन मन जाणियो प्रसतान मृत दशसिर तणों ॥५॥२०॥

शब्दार्थ—ससा=बहिन। गरक=गर्क, डूबी हुई। सार=समझ कर। विण समैं=उस समय। भाल=देख। धाक=रोब, भय। अवछर=अप्सरा। छव=छवि, रूप। उप=पास। अहिराव=लक्ष्मण। कथ=कथा। रै=कही। रीजत=प्रसन्न होने पर। फोगट=व्यर्थ। ओडां=ओर, तरफ। साखुल=कोमल। असतरी=स्त्री। लूड=बदमाश। आछट=काट दिये। थडें सोर=बहुत बकती हुई। माटी पणो=जबरदस्तपना। सुपरवाणां=देवतागण। प्रसतान=प्रस्थान।

भावार्थ—दिग्गज रूपवाली रावण की बहिन दंडक बन में रमण करती है। वह निर्लज्ज और कामुक है और उसका नाम सूर्पणखा है। उस समय वह रामचंद्र के आगे खूब सजकर आई और उनकी अद्भुत कांति को देखा, जिसे रति भी देखकर चकित होती है ॥ १ ॥

कामदेव का रोब अपने हृदय में रखकर अर्थात् काम से पीड़ित होकर अप्सरा का रूप बनाये हुए अनेक हाव भावों से देखकर बोली—हे हरे! (रामचंद्र) सुनो। हरि (रामचंद्र) बोले—मेरे साथ तो रात-दिन अनुसरण करनेवाली सीता है। सब कथा कही कि लक्ष्मण के पास जा, उसके दिन खाली व्यतीत होते है ॥ २ ॥

लक्ष्मण ने कहा कि वे ही सर्वोपरि हैं, मुझे तो उनका सेवक समझ।

राजा के प्रसन्न होने पर ही कार्य सिद्ध होता है। कभी तो रामचंद्र उसे लक्ष्मण के पास भेजते हैं, कभी उसे लक्ष्मण रामचंद्र के पास भेजते हैं। दोनों ओर उसका प्रयास व्यर्थ हुआ और वह चक्र की तरह फिरती है ॥ ३ ॥

यह कौतुक देखकर वह विकराल हो गई और उसने अपने दाँतों को बड़ा कर लिया। उसका कोमल शरीर सीता को खाने के लिये कठिन हो गया। रामचंद्र ने उस स्त्री को बदमाश देखकर धनुष (प्रचंड) और बाण हाथ में ले लिया और उसके दोनों नाक और कान काटकर दूर कर दिए ॥ ४ ॥

पास में राक्षसों के स्थान देखकर वह बहुत बकती हुई चली गई। और उनके पास जाकर रामचंद्र की भुजाओं का जबरदस्तपन कहा। देवताओं ने हर्ष से बहुत उत्सव किया। और उन्होंने मनमें जान लिया कि रावण की मृत्यु ने प्रस्थान कर दिया है ॥ ५ ॥

गीत चोटियाल

वरतारो सोरठा

गरवत कीजै गीत, पद दुय दुय रे ऊपरैं।
मोहरा दसकल गीत, चोटियाल तिणनूं चवैं ॥२१॥

भावार्थ—हे मित्र! गरवत गीत (प्रहासगीत) के दो-दो पदों के बाद दस मात्राएँ रखकर तुकान्त मिलाओ—उसे चोटियाल गीत कहते हैं।

विशेष—प्रहास गीत के प्रथम द्वाले के प्रथम पद की तेईस मात्रा और द्वालों के प्रथम पद की २० मात्रा और दूसरे पद की सतरह मात्राएँ होती हैं। इस गीत (चोटियाल) में २३ वा २० और १७ मात्राओं के पीछे दस मात्राएँ रखना चाहिये। जहाँ दस-दस मात्राएँ रखो, वहाँ—और प्रहास गीत के दूसरे और चौथे पद का तुकांत मिलाओ।

उदाहरण

खरदूषण और त्रिसरा वध

सुणे सुपनखां वैण चढ़ हांकिया साकुरां,
खरदूषर त्रिसर षल् झाल् खांगा,
पूर तन पहरियां ॥
उरस छवता थका आविया अडाकी,
आखता असुर रघुबीर आगां,
कोप लोयण कियां ॥१॥
पेख दल दाशरथ सेसनूं पयंपै,
सहोदर! सिया ले तूझ साथे,
ऊभ ईकंतनूं ।
जोय बहतो रुघर डरैलां ब्यानकी,
हणूंला सकोई मूझ हाथे,
उडाडा अंतनूं ॥२॥
कीध अलगां उभै पछाडी आणकल,
धसल सामें दलां सीस धाया,
छाकिया छोह सूं ।
कंत कमला कलहरटक पाणां करे,
घाव बाणां करे कटक घाया।
मरुत जण मोह सूं ॥३॥
अठारे सहस जोधार असुरेसरा,
लड़े हरि चापड़े मार लीधा,
उचार दुध अगररा ॥

हजारूं साठ खोले भसम पल हिकै,
कपल मुनि श्राप दे भसम कीधा,
सुतण ज्यूं सगररा ॥४॥२२॥

शब्दार्थ—साकुरां = घोड़े। खागां = खड्ग। पहरिया = पहिरे हुए, वा बनाये हुए। उरस = आकाश। छबता थका = छूते हुए, स्पर्श करते हुए। उडाकी = उड़ने वाले। आखता = शीघ्रता से। ऊभ = खड़े रहो। उडाडां = उड़ाए हुए। अंतनूं = काल से। आणकल = आकर। धसल = हमला। दलां सीस = फौज के आगे। छोहसूं = क्रोध से। रटक = दौड़ कर। मरुत जण = राक्षस। चापडे = प्रकट में। उचार = धकाल कर, सावधान करके। हिकै = एक।

भावार्थ—खरदूषण और त्रिशरा सूर्पणखा के वचन सुनकर हाथों में खड्ग ले और घोड़ों पर चढ़कर चले। पूर्ण राक्षस शरीर बना कर और आकाश को छूते हुए वे उड़नेवाले क्रोध से लाल-लाल नेत्र किये हुए रामचंद्र के सामने शीघ्र ही आ गये॥ १ ॥

यह दल देख कर रामचंद्र लक्ष्मण से बोले—हे भाई! तू अपने साथ में सीता को लेकर एकांत में खड़ा रह। यदि सीता रुधिर बहता हुआ देखेगी तो डर जायगी। काल से उड़े हुए सबको मैं अपने हाथ से मारूंगा॥ २ ॥

वे दोनों पीछे आकर अलग हो गये। रामचंद्र ने बड़े क्रोध से राक्षसों की सेना के अगले भाग पर हमला किया। और दौड़कर हाथों से युद्ध कर रहे हैं। राक्षसों की सेना को बाणों से घायल करके मारा। रामचंद्र ने समुद्र के आगे राक्षसों के अठारह हजार योद्धाओं को सावधान करके प्रकट में इस प्रकार मार गिराया; जिस प्रकार कपिल-मुनि ने सगर राजा के साठ हजार पुत्रों को एक पल भर में शाप से भस्म किया था।

विशेष—उपमा अलंकार है।

गीत जात उमंग
वरतारो–चौपई

कल षोडस पद पद में कीजै, मोहरा सम चारूं में लीजैं।
अंत चरण में दीरघ आण, सो उमंग है गीत सुजाण ॥२३॥

भावार्थ—सरल ही है।

उदाहरण
सुर्पनखा रावण संभाषण

कटिया श्रुतनाक लिया कर में, रचना कह सुपनखा घरमें।
नारी इक वीर उभै नर में, तिसडी न लखी सुपनंतर में ॥ १ ॥
सुणरावण वात सकामानूं, मारीच बुलायो मामानूं।
जा तूं छल दसरथ जामानूं, मिल ल्यावां तिणसूं बामानूं ॥ २ ॥
कंचन मृगरूप मरीच कियो, सीता मुख आगल नीसरियो।
हेरे सिय एम उमंग हियो, कंचू कज श्रीपतनूं कहियो ॥ ३ ॥
कोमंडलियो रघुवीर करां, सारंग[1] विछाडे सांध सरां।
धड पडतां बोले दुष्ट धरां, रे[2] बंधव कीध उचार तरां ॥ ४ ॥
सुण राणी सीत असंकानैं, बन मेले लिखमण बंकानै।
धारेषल पाछे धंकाने, लेगो गह सीता लंका नै ॥५॥२४॥

शब्दार्थ—तिसड़ी = वैसी। सुपनंतर में = स्वप्न में। सकामानूं = काम के वास्ते। जामानूं = पुत्रो के। कचूकज = कचुकी के लिए। सारंग = धनुष। बिछाड़े = छोडे, चलाए। धड़ = = शरीर। धरा = पृथ्वी। तरां = तब। असंकानै = शंका रहित, निडर। मेले = भेजे। धंका = रोब, भय।

भावार्थ—सूर्पणखा कटी हुई नाक और कान हाथ में लेकर घर में

१—माल = पाठांतर है। २ रे बंधव की उपचार करां, पाठांतर है।

आई। और उसने सब बातें कहीं। दो वीरों के पास एक स्त्री है, मैंने तो वैसी स्वप्न में भी नहीं देखी॥ १॥

रावण यह बात सुन कर काम के वशीभूत हो गया, और उसने अपने मामा मारीच को बुलाया। उससे कहा कि तू जाकर दशरथ के पुत्रों को छल (ठग) जिससे हम मिलकर उससे स्त्री लावें॥ २॥

मारीच सोने का मृग बनकर सीता के सामने होकर निकला। सीता उसे देखकर हृदय में प्रसन्न हुई और रामचंद्र से उसकी खाल की कञ्चुकी (बनवा देने को) के लिये कहा॥ ३॥

रामचंद्र ने धनुष हाथ में लेकर और उसपर बाण चढ़ाकर चलाया। पृथ्वी पर शरीर पड़ते ही उस दुष्ट ने—"अरे भाई।" इस प्रकार उच्चारण किया॥ ४॥

महारानी सीता ने यह सुनकर निडर और बाँके लक्ष्मण को बनमें भेजा। इसके पश्चात् दुष्ट (रावण) सीता को भय दिखाकर और उसे पकड़ कर लंका ले गया॥ ५॥

गीत जात सेलार

वरतारो-छंद दोहा

द्वालो करैं दुमळरो, चोथे चरण उचार।
अळंकार विधि विध सूयण, समझ गीत सेलार॥२५॥

भावार्थ—जहाँ दुमेल गीत के द्वाले करके चौथे पद में विधि अलंकार कहा जाता है, वहाँ सेलार गीत समझो।

विशेष—इस गीत के प्रत्येक पद में सोलह सोलह मात्राएँ होती हैं और चौथे चरण में विधि अलंकार रखा जाता है। उसका लक्षण यह है—

अलंकार विधि सिद्धि जो, अर्थ साधिये फेर।
कोकिल है कोकिल जबै, करि है ऋतु में टेर॥

उदाहरण

'सीता हरण'

तपसीरो रूप धरे अततांई, अडंग कुटी गइ सीत उठाई ।
सिथल पुकारी साद सुणीजै, कीजै हो हरि ! बाहर कीजै ॥१॥
ग्रीध जटाय गाढ़गुण गाढ़ो, आय फिरयो सुण रावण आडो ।
आखे वयण न हुवे अधीरो, धीरो रे आयो हूँ धीरो ॥२॥
विग्रह कीध असंभ महाबल, चांच परां तोडे रथ चंचल ।
लख लोहा पड षगधर लागो, भागोरे नभ मारग भागो ॥३॥
बहती सीत भालिया बाँदर, झटक उतार रालिया झांझर ।
कहियो एह संदेसो कीजो, दीजोरे प्रभुनूँ सुद दीजो ॥४॥
पुहँतोलंक बीसधरपाणी, बाग असोक सीया बहसाणी ।
माया असुर अनंतो माडै, छाडे रे तन सील न छोडे ॥५॥२६॥

शब्दार्थ—अततांई = आततायी । अडग = अडिग । सिथिल = धीरे । साद = शब्द । बाहर = सहायता । धीरो = धैर्य्य । लोहा = रक्त, खून । षगधार = पक्षियों की भूमि, आकाश । लागो = गया । भालिया = देखे । रालिया = डाले । झाँझर = नूपुर । सुद = खबर । बीसधर-पाणी = रावण । वहसाणी = बैठाई ।

भावार्थ—वह आततायी (रावण) तपस्वी का रूप बनाकर, अडिग कुटी से सीता को पकड़ कर उठा ले चला । सीता ने धीरे से पुकारा कि हे हरि । शब्द सुनो, और मेरी सहायता करो ॥ १ ॥

यह सुनकर जटायु नामक गिद्ध जो गुणों में मजबूत था, आकर रावण के मार्ग मे अड़ गया अर्थात् रावण का मार्ग रोक लिया । वह बोला कि तू अधीर मत हो धैर्य्य रख; मैं आ गया हूँ ॥ २ ॥

---

१. पाठा० अडर ।

उसने बड़े बल से युद्ध किया और रावण का रथ तोड डाला और रावण ने उसके पर और चोंच तोड़ दी। रावण खून देखकर आकाश मार्ग में चलता हुआ और आकाश में होकर भाग गया ॥३॥

जाती हुई सीता नें बंदरों को देखा और उनको अपने नूपुर उतार कर दे दिये और कहा कि रामचंद्र को मेरी खबर दे देना ॥ ४ ॥

रावण लंका में पहुँचा। सीता को अशोक वाटिका में बैठाकर उस राक्षस ने अनंत माया की। किन्तु सीता तन छोड़ने को तैयार थी, पर उसने शील को नहीं छोड़ा ॥ ५ ॥

गीत अरध गोखो

वरतारो-छंद दोहा

चरण आठ गोखो चवै, चौपद जासु रचंत।
वणे अंत पद वीपसा, गोखो अरध गिणंत ॥२७॥

भावार्थ—गोखा गीत में आठ चरण कहे गये हैं। अतः जिसमें चार पद हों और अंतिम पद में वीप्सा हो, वह अर्धगोखा गीत गिना जाता है।

'उदाहरण'

'रावण लंका प्रवेश'

सांभली इसी सराह, लायो सीत भरे लाह।
मची सको लोकमाह, त्राह त्राह त्राह त्राह ॥ १ ॥
मिलै जठै तठै मोत, संभाखै हुवा सभीत।
राण तणीं सुणी रीत, को अनीत की अनीत ॥ २ ॥
नरां नारा सुरा नार, जूज जीत लीधजार।
धपे न कीता बुधार, है गिंवार है गिंवार ॥ ३ ॥

अंत हमें लंकईस, दिना मांहि देख लीस।
वडंगा करंग वीस, दसे सीस दसे सीस॥ ४॥
महाबली रिमांमार, हुओ चोर पांण हार।
आगमाँ जणांणयार, हूँणहार हूँणहार॥ ५॥२८॥

शब्दार्थ—साँभली = सुनी। सराह = प्रशंसा। लाह = लोभ। धपे = तृप्त होना। कोता = कोताही, न्यूनता। हमें = अब, शीघ्र ही। वडंगा = कटेंगे। रिमा = शत्रुओं को। पाणहार = बल हार कर। आगमाँ = भविष्य। जणांणयार = जनाता है।

भावार्थ—लंकावासियों ने यह प्रशंसा सुनी कि रावण लोभ से सीता को लाया है तो सम्पूर्ण लंका में त्राहि त्राहि मच गई॥ १॥

जहाँ कहीं मित्रगण आपस में मिलते हैं तो डरते हुए आपस मे कहते हैं—रावण की आपने रीति सुनी? बड़ी अनीति की है॥ २॥

मनुष्यों, देवताओं और नाग गणों की स्त्रियों को युद्ध करके जीत लिया है, फिर भी तृप्त नहीं हुआ है। कितनी न्यूनता है, बड़ा गँवार है॥ ३॥

अब शीघ्र ही रावण का थोड़े दिनों मे अंत देख लेंगे। उसके दस मस्तक और बीस हाथ कटने ही वाले है॥ ४॥

बड़ा बलवान और शत्रुओं को मारनेवाला (रावण) बल खो कर चोर हो गया है। अपने भविष्य को जनाता है कि यह होनहार है॥ ५॥

गीत सतखणों

वरतारो—चोपाई

आद जांगडो द्वालो आवै, जिण पर अठकल मेल सजावै।
धुर जिणरे संवोधन धारे, उभै वार सो चरण उचारे।
पद न वकल रो ठेर पुणीजै, गीत सतखणो मंछ गुणी जै॥२९॥

शब्दार्थ—ठेर = देकर।

भावार्थ—आरंभ मे जांगडा गीत के द्वाले आते हैं (जिसके विषम पदों में १६ मात्राएँ और सम पदों में १२ मात्राएँ होती हैं) इसके ऊपर आठ मात्राओं का पद सजाना चाहिए, जिसके आरंभ में संबोधन-वाची शब्द रखो। यह (आठ मात्रा वाला पद) दो बार कहो। इसके बाद नौ मात्राओं का पद कहो। मंछ कवि कहता है कि इसे सतखणा गीत कहना चाहिए।

विशेष—इसमें यह नियम है कि नौ मात्राओ वाला पद सब द्वालों में एक ही होना चाहिए।

उदाहरण

'सीता वियोग'

आया मृग मार सेसनूं आखे, बंधव ! सुणो सबीता।
दारुण कुटी विडंगी दीसै, सही गमाई सीता।
रेमन मीता रेमन मीता किण विध कीजिये ॥ १ ॥

मृगया रमैं आवता मारग, देखत ऊभी दोटै।
आज कुलंग भ्रमण तिण ऊपर, लाग जिनावर लोटै।
रे रंग खोटे रे रंग खोटे, किण विध कीजिये ॥ २ ॥

वनवासो चवदैं बरसारो, बामां संग बिलावै।
बीते पलही कलप बराबर, जिके दिवस किमि जावै।
रे सुध आवै, रे सुध आवै, किण विध कीजिये ॥ ३ ॥

कानन रहो रहो गिरि कंदर, चवै खलक गृह चारी।
घर घर जो डोलै विण घरणी, भाखै नगर भिखारी।
रे वृतधारी रे वृतधारी, किण विध कीजिये ॥ ४ ॥

जाणे हर घट घटरी जो पिण, सोजे आश्रम सारा।
पूछै पाहण रूंख पखेरू भ्रुवे चखां जलधारा।
रे जणम्हारा रे जणम्हारा, कीण विध कीजिये ॥५॥२०॥

शब्दार्थ—सवीता=वीती बातें। विडंगी=वेढगी। मृगिया=शिकार। ऊभी=खडी हुई। दोटैं=दौड़ती हैं। कुलंग=काक। विलावैं=व्यतीत होता है। किमि=कैसे। कंदर=गुफा। गृह-चारी=गृहस्थी। घरणी=स्त्री। सोजे=खोजते हैं। पाहण=पत्थर। पखेरू=पक्षी। भ्रुवे=बरसता है। चखां=नेत्र। रूख=वृक्ष।

भावार्थ—रामचंद्र मृग को मार कर आये और लक्ष्मण से कहने लगे—हे भाई! बीती हुई बातें सुनो; यह कुटी वेढगी और भयानक मालूम पड़ती है। सचमुच सीता को हमने खो दिया है। अरे मेरे सच्चे मित्र! अब क्या करना चाहिए ॥ १ ॥

जब शिकार खेल कर आते थे तो सीता खड़ी हुई मार्ग देखा करती थी और देखते ही दौड़ती थी। आज उसी कुटी के ऊपर काक उड़ रहे हैं और उस पर पक्षी लोट रहे हैं। अरे बुरे रंग देख पड़ते हैं। अब क्या करना चाहिए ॥ २ ॥

चौदह वर्षों का वनवास स्त्री के संग व्यतीत होता था और अब एक क्षण कल्प के बराबर व्यतीत होता है—यह दिन कैसे व्यतीत होंगे। अरे उसकी (सीता की) याद आती है। अब क्या करना चाहिए ॥३॥

(स्त्री के साथ) चाहे वन मे रहे या पर्वतों की गुफा मे रहे, फिर भी संसार उसे गृहस्थ ही कहता है। जो बिना स्त्री घर घर डोलता है, उसे नगर-निवासी भिक्षुक ही कहते है। अरे व्रतधारी! अब क्या करना चाहिए ॥ ४ ॥

(कवि कहता है) जो ईश्वर घट-घट की बातें जानते हैं, वह भी सब आश्रमों मे सीता को खोज रहे हैं। पत्थर, वृक्ष और पक्षियो से पूछते हैं (कि सीता कहाँ है) और नेत्रों से आँसू टपक रहे हैं। अरे मेरे भक्त! अब क्या करना चाहिए ॥ ५ ॥

गीत जात झडमुगट

वरतारो—सोरठा

रचैं खुडद साणोर, झमक धरैं धुर अंतजन।
जिको गीत बुध जोर, मंछ पयं पै झडमुगट ॥३१॥

भावार्थ—खुड़द साणोर गीत (जिसके विषम पदो में १६ मात्राएँ और सम पदों में १३ मात्राएँ होती हैं तथा प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १६ मात्राएँ होती हैं) रच कर आदि और अंत में यमक रखना चाहिए। मंछ कवि कहता है कि बुद्धिमानों ! वड़ झदमुगट गीत होता है।

"जटायू उद्धार"

'उदाहरण'

तरवर वन सिखर जोवतां सरतर, कर सारंग तुन्नीर कर।
वर लोहा दीठो अंग रघुवर, परधर पडियो धरण पर ॥ १ ॥
गत जिण नै पूछी खह अवगत, रत घावां किण काज रत।
सतवंती लैतां धारै सत, पत हूँ भिड़ियो लंकपत ॥ २ ॥
घणनामी इम सुणे विगतघण, जण जटायू भर अंक जण।
वण द्रिग[1] गोद धरे पतत्रिभवण, मणधर छवरी हरष मण ॥ ३ ॥
चवतां राम[2] मुखांण गयो चव, भव दुख काढ़े कीध भव।
लवलागां फिर राम रसण लव, रववंशी इम वहै रव ॥४॥३२॥

शब्दार्थ—तरवर = वृत्त। जोवतां = देखते हुए। सरतर = सरोवर के वृक्ष, सरोवर के नीचे। दीठो = दिखाई पड़ा। परधर = परों का धारण करनेवाला, पक्षी। घणनामी = बहुत नामवाले, रामचंद्र। जण = भक्त। जण = जिससे। वण = वह। द्रिग = दृग, नेत्र। मण-

---

१—पाठां-द्रुढ। २—पाठान्दाण।

धर=शेष, लक्ष्मण। छब्री=स्पर्श किया। मण=मन। मुखांण=मोक्ष। भव दुख=संसार के दुःख। कीधभव=कल्याण किया। रववंशी=सूर्यवंशी। रव=गति, चलना।

भावार्थ—(रामचंद्र और लक्ष्मण) हाथ में धनुष और भाथा लेकर वृक्ष, वन, पर्वत और तलाब के नीचे देखते हुए जा रहे हैं। वहाँ पृथ्वी पर पड़े हुए पक्षी के शरीर पर खून देखा ॥ १ ॥

तब भगवान् रामचन्द्र ने उससे सब हाल पूछा कि किस कारण तू घावों में मग्न है अर्थात् तेरे ये घाव कैसे हुये है। (उसने उत्तर दिया) सीता को ले जाते समय लंकाधिपति रावण से मैं लड़ा था ॥२॥

अनेक नामवाले भगवान रामचंद्र ने इस प्रकार सम्पूर्ण हकीकत सुनी। और अपने भक्त जटायु को हृदय से लगाया जिससे उसने (जटायू ने) अपने नेत्रों की गोदी में रामचद्र को रख लिया। लक्ष्मण ने उसका स्पर्श किया जिससे वह मनमें बहुत हर्षित हुआ ॥ ३ ॥

राम से प्रेम होने से उसकी जिह्वा पर अंत तक राम नाम ही रहा, इसलिये वह राम राम बोलता हुआ मोक्ष पा गया। रामचंद्र ने उसके संसार के दुःखों को दूर करके उसका कल्याण किया। इसके बाद सूर्यवंशी रामचंद्र और लक्ष्मण आगे चलने लगे।

'गीत जात अमेल'

उदाहरण

'सवरी आश्रम गवण'

सवरी वन मांहि प्रीत सूं सांचो, उवर जठै दरसण अभिलाख।
आश्रम उभै सहोदर आया, त्रिभवण नायक सेस तठै ॥१॥

परक्रमण तिण दे पग परसे, जस यम जीह अपार जपे।
लेखा नर नागां नै दुरलभ, दीधो सो मोनै दीदार ॥२॥

चाख चाख राखे फल चोखा, तक उर भाव अमाप तिकै।
उमगे प्रभु भीलणी आंचा, अैठां बोर अरोगे आप ॥३॥
अंतज जाण करी न अवज्ञा, मन अडोल तप वृध माहां।
मुनि राजेस तिकारे मोहे, तिणरो अधिक रह्यायो तोल ॥४॥
किता दिवस रहनै करुणाकर, इल सिवरी चोकरे उधार।
सयल सयल वन जोवण सीतां, हाले आगल फेर हरी ॥५॥२३॥

शब्दार्थ—उवर=हृदय। जठै=जहाँ। तठै=वहाँ। परक्रमण=परिक्रमा। यम=इस प्रकार। जीह=जिह्वा। लेखा=देवतागण। अमाप=अपार। तिकै=उसके। आचां=हाथ। अैठां=उच्छिष्ठ। अरोगे=खाये। तपवृध=तप मे वृद्ध, बड़े तपवाली। इल=पृथ्वी। उधार=उद्धार। सयल=पर्वत। हाले=चले। आगल=आगे।

भावार्थ—उस वन में शवरी नामक भीलनी थी जो (रामचंद्र से) सच्चा प्रेम करती थी। उसके हृदय में (रामचंद्र के) दर्शनों की इच्छा थी। उसी आश्रम में त्रिभुवन-पति रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों भाई आये ॥ १ ॥

उसने परिक्रमा करके उनके चरणों का स्पर्श किया। और इस प्रकार उनका अपार यश वर्णन किया—देवताओं, मनुष्यों और नाग-गणों को जो दर्शन दुर्लभ हैं, वह दर्शन आपने मुझे दिया है ॥ २ ॥

उसने अच्छे अच्छे फल चख चख कर रखे थे। रामचंद्र ने उसके हृदय का यह अपार भाव देखकर उमंग से उच्छिष्ट बेर भीलनी के हाथों से खाये ॥ ३ ॥

उसे शूद्र समझकर उसकी अवज्ञा नहीं की। उसका मन अडिग था और वह बड़े तपवाली थी। मुनि-राजो से भी उसका सम्मान अधिक ही रखा गया है ॥ ४ ॥

रामचंद्र कितने ही दिन वहाँ रहकर शबरी का उद्धार कर पर्वतों और वन में सीता को देखने के लिये आगे रवाना हुए ॥ ५ ॥

विशेष—अमेल गीत का मंछ कवि ने लक्षण नहीं दिया। किन्तु उसका लक्षण यह है—इस गीत की मात्राएँ छोटे साणोर गीत के अनुसार होती है अर्थात् विषम पदों मे १६ मात्राएँ और सम पदों में यदि अत में गुरु हो तो १४ और लघु हो तो १५ मात्राएँ होती हैं। अंतर केवल इतना ही है कि उस गीत में तुकांत मिलाया जाता है और इसमें नहीं।

इति श्री रघुनाथ-रूपक मुरधर देश-भाषा कवि मंछराम विरचित वनकाण्ड पंचमो विलासः समाप्तः

षष्ठो विलासः ॥ ६ ॥

अथ केकिंदा कांड

॥ दोहा ॥

बाल अजोध्याकांड विध, मुणिया सूक्षम मांड ।
कहै मंछ जिमिही कहूँ, केकिंधा हिव कांड ॥ १ ॥

शब्दार्थ—मुणिया = कहे । हिव = अब ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अथ गीत जात काछो

बरतारो–छप्पै

चवद चवद दस दोय कला इम विषम चरण कर ।
नवे सात दस निरख, वहस पद मोहरे ग ल वर ॥
कदम त्रतिय नवकला, सात वारैं साजी जै ।
चौथे पद नव सात दसे कल मोहरा दीजै ॥
इकसार सजै सांकल अमिट धुरकल ठार धरीजिये ।
कवि मंछ कहै इण रीतकर, काछो गीत करीजिये ॥ २ ॥

शब्दार्थ—विषम चरण = यहाँ प्रथम चरण से अभिप्राय है । वहस पद = सम चरण—किन्तु यहाँ द्वितीय पद का अर्थ है । ग, ल, = गुरु लघु । कदम त्रतिय = तीसरे चरण में । वारैं = बारह (१२)। इकसार = एकसी । सांकल = अनुप्रास ।

भावार्थ—प्रथम पद में चौदह, चौदह और बारह मात्राएँ करो । दूसरे

पद में नौ, सात और दस मात्राएँ और तुकांत में गुरु लघु देखो। तीसरे पद में नौ, सात और बारह मात्राएँ सजाओ और चौथे पद मे नौ, सात और दस मात्राएँ रख कर तुकांत मिलाओ और फिर अनुप्रास सजाओ। प्रथम द्वाले के प्रथम पद में प्रथम चौदह मात्राओं के स्थान मे १६ मात्राएँ रखनी चाहिएँ। मछ कवि कहता है कि इस प्रकार काछा गीत करना चाहिए।

उदाहरण

हनुमान मिलण गीत

रघुपत जगतमिण उपसास रालै भामणी,
चिहुँ ओर भाले तन विचाले जो वर।
चित लाग चालैं गात गालैं घर सभालैं धीर ॥
दुरैं दिखालैं केक कालैं अचल थालैं ऊपरैं।
दीठा दयालैं तेण तालैं वय बडालैं वीर ॥१॥

चवे लख सुग्रीव चावो अंग आनँद हूवो आवो वाल दावो लिय वदै।
जतधार जावो करे कावो खबर ल्यावो खोद ॥
धरधाख धावै जठै जावै हर प्रभावैं हेरनैं।
निज सीस नावे परस पावे मनां थावे मोद ॥२॥

पूछियो प्रभू करे प्रीतां अयो किण आतंख ईतां कपी रीतां सो कहो।
महाराज मीतां कहूँ क्रीतां सुणे नीतां सूर ॥
इक खल अभीतां जंग जीतां गहर गीतां गाजियो।
सो उपज सी तां बात बी तां दरी लीतां दूर ॥३॥

साथ कपि धसियो सवाहे चवे भाई हूत चाहे कवल ठाहे मास इक।

गह असुराहे प्राण ग्राहे नैंण नाहे नींद ॥
सह वाल मारां चित विचारां दरी द्वारां दे सिला ।
सझ आय सारां घणी वारा विमल तारा वींद ॥४॥
दिवसकेता दिल दराजैं गुमर धरिया आय गाजैं रोष ताजे रोपिया ।
भो तेण भाजैं सयल साजैं तखत राजैं तेह ॥
वर कंठ वामा धरी धामा किता कामा वद किया ।
भय नेट भारी धनुषधारी अरज सारी येह ॥५॥३॥

शब्दार्थ—उपसास=श्वास प्रश्वास, आह भरना । सलै=डालना । विचाले=बीच में । धर=पृथ्वी । सभालैं=देखते हैं । दिखालैं=दिखाई पड़ा । केक कालैं=किसी समय में । थालें=स्थल । दयालैं=दयालु । तेण तालैं=उसी समय । वप=वपु, शरीर । वडालें=बड़े । चावो=प्रगट में । दावो=शत्रुता । वदैं=कहता है । जतधार=यति को धारण करनेवाले, जितेन्द्री । कावो=चक्कर लगा कर । चाव=आतंक, चेत, उत्साह । धावै=जाते हैं । थावे=होवे । आतंस=शीघ्रता से । ईतां=इस तरफ । कीतां=कीर्ति । नीतां=नीति की । सूर=शूर वीरता की । सी=भय । तां=वहां । वीं=भी । दरी=गुफा । लीतां=चला गया । सवाहे=संभल कर । कवल=कौल, इकरार, वादा, प्रतिज्ञा । ठाहे=ठहराया । गह=पकड़ कर । गाहे=मारा । ग्रहे=बांधना । नाहे=नींद । सह=अंदर । दारां=द्वार । सारां=सब । वींद=पति । दिल दराजै=बड़े दिलवाला । गुमर=गर्व । भो=भय । भाजैं=भाग कर । तेह=वह । वरकंठ=सुग्रीव । वद=खराब ।

भावार्थ—बलवान जगत के मणि रामचंद्र ठंढी आहें भरते हुए चारों तरफ वन में अपनी स्त्री (सीता) को देख रहे हैं। चित्त लगा कर और अपने शरीर को गलाते हुए धैर्य्य के साथ पृथ्वी को देखते हैं। कितने ही समय के बाद पर्वत का ऊपरी भाग दूर से दिखलाई पड़ा।

उसी समय बड़े शरीरवाले वीर और दयालु (रामचंद्र) (पर्वत के ऊपर रहनेवालों को) दिखलाई दिये ॥ १ ॥

उनको देख कर सुग्रीव बोला—इनके आने से बड़ा आनंद हुआ है। बालि से शत्रुता का बदला ले लेंगे। (हनुमान से कहा) जितेन्द्रिय, चक्कर लगा कर जाओ और वहां की खबर लाओ। (हनुमान) उत्साह से वहां गया और हर (रामचंद्र) को देखकर अपना मस्तक झुकाया, और पाव छू कर हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ ॥ २ ॥

रामचंद्र ने बड़े प्रेम से पूछा कि इस तरफ शीघ्रता से कैसे आये हे कपि ! (हनुमान) वह सब बातें कहो। (हनुमान बोला) महाराज ! मैं क्या कहूँ मेरे मित्र (सुग्रीव) ने आप की नीति की और शूर वीरता की तारीफ सुनी है। (और सुनो) एक निडर और युद्ध जीतनेवाले दुष्ट ने यहां आकर बहुत गर्जना की। बाद में वह बालि से भय खाकर गुफा में दूर चला गया ॥ ३ ॥

कपि (बालि) संभल कर उसके साथ गुफा में घुस गया और अपने भाई सुग्रीव से एक मास में आने का इकरार कर गया। उसने वहां उस राक्षस को पकड़ कर मार डाला। इधर सबके प्राण कांप रहे थे और नेत्रों में नींद नहीं थी। सबने चित्त में यह विचारा कि अंदर बालि मारा गया है। अतः गुफा के द्वार पर एक शिला देकर (नगर में) सजकर सब आ गये। और सबने उस (सुग्रीव) को अपना स्वामी मान लिया और तारा (बालि की स्त्री) ने उसे अपना पति स्वीकार कर लिया ॥ ४ ॥

कितने ही दिनों में वह बड़े दिलवाला (बालि) गर्व धारण करके वापस आ गया और उसने बड़ा क्रोध किया। उसके भय से हम भाग कर पर्वत पर आये हैं। और वह अब राज-सिंहासन पर सुशोभित है। और उसने सुग्रीव की स्त्री को अपने घर में डाल लिया है। और कितने ही खोटे काम किये है। हमारी सम्पूर्ण प्रार्थना यही है कि हे धनुषधारी ! (रामचंद्र) यह बड़ा भारी भय दूर कीजिये।

गीत जात हंसावलो

वरतारो-दोहा

वरणैं सुध उल्लेख विध, गुणैं वेलियो गीत।
हुवे तिको हंसावलो, रारा सबद सरीत ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस गीत में वेलिया गीत (जिसके प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १६ मात्राऐ होती है और विषम चरणों में १६ मात्राएँ और सम चरणो मे १५ मात्राएँ होती है) कह कर उल्लेखालंकार का वर्णन किया जाता है और "रा" "रा" शब्द रीति सहित आता है, वह हंसावला गीत होता है।

विशेष—इस गीत मे "रा" शब्द और उल्लेखालंकार का लाना अत्यावश्यक है। उल्लेखालंकार का लक्षण यह है—

"बहु विधि वरनै एक को, बहुगुन सो उल्लेख।
तू रन अर्जुन तेज रवि, सुरगुर वचन विशेष ॥"

उदाहरण

श्रीरघुनाथजी री स्तुति

पयधररा मथण जगतरा पालग,
सररा अचल संतरा साथ।
वररा दियण जगतरा वच्छल,
नररा रूप नमो रघुनाथ ॥१॥
गुणरा गहर गुरडरा गामी,
घण नामो सुररा घावेस।
कपरा मीत जगतरा कारण,
सतरा समद धिनो अवधेस ॥२॥

विधरा रछक दीनरा बंधव,
सिवरा ध्यान निगमरा सार।
जसरा जलध अन्तरराजामी,
भामी तो सियरा भरतार ॥३॥
खल़रा दल़ण दुरदरा मोखण,
पतरा रखण सुमतरा पेस।
कलमें दरस आपरा करतां,
प्रगट पापरा गया प्रवेस ॥४॥५॥

शब्दार्थ—पयधररा = समुद्र के। मथण = मथन करनेवाले। पालग = पालनेवाले। सररा अचल = बाण चलाने में अचल। दियण = देनेवाले। मुरड़ = गरुड़। मुराघावेस = मुर नामक राक्षस को मारनेवाले। समद = समुद्र। धिनो = धन्य हो। विध = ब्रह्मा। भामी = वारणा लेकर कहते हैं, न्यौछावर होकर कहते हैं। दलण = नाश करनेवाले। दुरद = हाथी। मोखण = मोक्ष करनेवाले। पत = प्रतिज्ञा। सुमत = श्रेष्ठ बुद्धि। पेस = स्वामी। कल = संसार।

भावार्थ—समुद्र का मथन करनेवाले, जगत को पालनेवाले, बाण चलाने में अचल, संतों के साथ रहनेवाले, वर देनेवाले, भक्तवत्सल और मनुष्य स्वरूप रामचंद्र को नमस्कार हो ॥ १ ॥

गंभीर गुणवाले, गरुड़ पर चलनेवाले, अनेक नामवाले, मुर दैत्य को मारनेवाले, कपि (सुग्रीव) के मित्र, संसार के कारणभूत, और सत्य के समुद्र (अवधेश रामचंद्र) को धन्य है ॥ २ ॥

ब्रह्मा के रक्षक, गरीबों के बंधु, महादेव के ध्यान, शास्त्रों के सार यश के समुद्र, मन की बात जाननेवाले, सीता के पति, दुष्टो के नाशक, हाथी को मोक्ष देनेवाले, प्रतिज्ञा को रखनेवाले, और श्रेष्ठ बुद्धि के स्वामी आप है—मैं वारणा लेकर कहता हूँ कि संसार में आपके दर्शन करने से पाप का प्रभाव चला गया ॥ ३ ॥

"गीत जात भंवर गुंजार"

वरतारो छंद कडखो

सोल हैं प्रथम पद दूसरे चवद सज साकली जुगम लघु अंत साजै।
चवदकल तृतीय विश्राम चौथे चरण रसकला दोय गुरमेल राजै॥
वले तुक चार इम सार द्वालो वर्णं रीत कवि येण अनुसार राखै।
चिरत धनुधार रच मंछ सुविचार चित भँवर गुंजार सो गीत भाखै॥६

भावार्थ—प्रथम पद में सोलह मात्राएँ, दूसरे पद में अत में दो गुरु सहित चौदह मात्राएँ और चौथे पद में अत में दो गुरु सहित नौ मात्राएँ रखो। इस तरह फिर चार चरण रखकर एक द्वाला कवियों की रीति के अनुसार बनाया जाता है जिसमें रामचंद्र के चरित्रों की रचना करो। मंछ कवि चित्त में विचार कर इसे भंवर गुंजार गीत कहता है।

उदाहरण

सुग्रीव मिलाप

हणु मिलत धुर हर दीध सिर हथ, रिंधु बजरंग हुवो समरथ।
चवे रघुवर वयण वनचर, सीत सुध साजै॥
तो करू अरियण तेण कण कण, हरष मारुं विसख हण हण।
विकट पूरूं मनावंछत, गहर गुण गाजै॥१॥
इम अरज मारुत करी सियवर, पडत झांझर सिखर ऊपर।
मिलीजै चढ़ आप लिखमण, कृपा सिर कीजै॥
विध चढ़े सुण रिखमुकर परवत, पग गहे सुग्रीव कपिपत।
नील नल फिर निपत वांनर, भाल द्रुति भीजै॥२॥
भड़ मिले कर पट निजर भूषण, दिख लियण सिय दनुज दूषण।
चवे प्रभु तद मांग वनचर, चिता जिम चाहैं॥

कप कही रचना सकल अणकल, चित भ्रम मिट जाय निसचल ।
सपत तरु दें भेद इकसर, गरज तो गाहे ॥३॥

निज धनुष गहकर जगत-नायक, सात वेधे ताड़ सायक ।
महक दुंदभ करक नभ मग, जमे जस जागे ।
नमे सीरष चरण नीरज, धरे नहचो करे धीरज ।
बाल मरसी एण बाणां, भरम सह भागे ॥४॥७॥

शब्दार्थ—हणु = हनुमान । धुर = आगे । रिधु = प्रथम । बजरंग = वज्र जैसा अंग । वनचर = हनुमान । सीत = सीता । अरियण = शत्रु । तेण = उनका । विसक = विशिख, बाण । गहरगुण = गंभीर गुणवाले रामचंद्र । गाजै = बोले । मारुत = हनुमान । पड़त = पड़ा है । झाझर = नूपुर । रिषमुकर = रिष्यमूक । निघत = जबरदस्त, बलवान । भाल दुति भीजै = कांतिवान् भालू, जामवंत । भड = भट, योद्धा । दिखलियण = देख लिया । अणकल = अपार । भ्रम = भ्रम । निसचल = निश्चय । सपत = सप्त । गरज तो गाहै = हमारा कार्य सिद्ध हो । महक = गहरे । करक = कड़क उठे, बजे । जमें = पृथ्वी पर । सीरष = शीश । नीरज = कमल । नहचो = निश्चय ।

भावार्थ—हनुमान आगे बढ़कर रामचंद्र से मिला । उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ रखा । प्रथम तो उसका अंग वज्र जैसा था ही, फिर और भी समर्थ हो गया । रामचंद्र ने हनुमान से कहा—यदि सीता की खोज (तुम्हारा स्वामी) कर दे तो उसके शत्रुओं को कन कन करके—तितर बितर करके हर्ष से बाण मार मारकर मार डालूँगा । और कठिन मनोकामना पूरी कर दूँगा । इस प्रकार गंभीर गुणवाले (रामचंद) ने कहा ॥ १ ॥

हनुमान ने यह प्रार्थना की कि सीता का नूपुर पर्वत पर पड़ा हुआ है । आप और लक्ष्मण कृपा करके पर्वत पर चढ़ कर उसे देख

लीजिये। वे यह विधि सुन कर ऋष्यमूक पर्वत पर चढ़े। वहाँ पर कपीश्वर सुग्रीव ने उनके पांव पकड़े। नल, नील और बलवान वंदर और दुतिवंत जामवंत आदि, योद्धाओं ने सीता के वस्त्र और जेवर रामचंद्र को नजर किये। सीता के साथ राक्षस का दोष देख लिया। तब रामचंद्र ने सुग्रीव से कहा कि जो तेरे चित्त में हो, वह माँग। सुग्रीव ने तमाम बातें कहीं। यदि आप सात वृक्षों को एक बाण में भेद दें तो हमारे चित्त का भ्रम नष्ट हो जाय। और तभी हमारा कार्य सिद्ध हो सकता है ॥ ३ ॥

जगत के स्वामी (रामचंद्र) ने अपना धनुष लेकर सात ताड़ के वृक्षों को एक बाण से छेद दिया। (उनके ऐसा करने पर) आकाश में गहरे शब्द से नक्कारे बजे। और पृथ्वी पर दूना यश जाग उठा। सबके सब ने उनके चरण कमलों में अपना मस्तक झुकाया। सबका भ्रम हट गया। और धैर्य से सबने निश्चय किया कि वाली इस बाण से मरेगा।

विशेष—"रिधु वजण हुवो समरथ" में विधि अलंकार, और "चरण नीरज" में रूपक अलंकार है।

भंवर गुंजार दूजो

मिलिया सुराघव लिखमणं, अतकपी पोरस ऊफणं।
सुग्रीव अड आकास सीरष, थरक गिर थहरं ॥
विध हले वीर महाबलं, गह वाल हूत दमंगलं।
दिल अभय केकंधा दवारे, गजे सुर गहरं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अत = अति। पोरस = पुरुषार्थ। ऊफणं = बढ़ने लगा। अड = अड गया। थरक थहरं = कंपायमान हुआ। हले = चले। महाबलं = महाबली वानर। गह = करने। दमंगल = युद्ध। दवारे = द्वार पर।

भावार्थ—रामचंद्र और लक्ष्मण के मिलने से हनुमान का पराक्रम बढ़ने लगा। सुग्रीव का मस्तक आकाश से अड़ गया और पर्वत कंपायमान हुआ। इस तरह से महाबलवान बंदरों ने वालि से युद्ध करने के

लिये चित्त में निडर होते हुए किष्किधा नगरी के द्वार पर आकर गहरे शब्द से गर्जना की।

विशेष—प्रथम और दितीय भंवर गुजार गीत मे केवल यही अंतर है कि प्रथम भंवर गुंजार में तो प्रथम पद की १६ मात्राएँ होती हैं और द्वितीय में १४ मात्राएँ, और द्वितीय भंवर गुंजार के तीसरे पद में १४ मात्राएँ और द्वितीय में १६ मात्राएँ होती हैं। बाकी सब तरह एक से होते हैं।

गीत जात चोटियो

जोड़े दूहो जांगडो वालो चरण पंचमो फेर चवीजै।
उण में कळा करै उगणीसूं ठीक अंत गुरु दोय ठवीजै॥
रचै एम द्वाळा सह रचना गीत चोटियो जिको गिणावैं।
मंछ कहै धन वे जग मानुष गुण तिण में रघुपतरा गावैं॥९॥

शब्दार्थ—उण में=उसमें। ठवीजै=रखना चाहिए।

भावार्थ—जांगडा गीत (जिसके प्रथम तृतीय पद मे १६ मात्राएँ और द्वितीय चतुर्थ में १२ मात्रा होती हैं और प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १८ मात्राएँ होती हैं)—का द्वाला जोड़कर (रखकर) फिर एक पाँचवाँ चरण कहो। उसमें १६ मात्राएँ अंत में दो गुरु सहित रखनी चाहिएँ। इस प्रकार से जहा द्वाले की रचना होती है, वहाँ चोटिया गीत होता है। मछ कहता है वे मनुष्य धन्य हैं जो उसमे रामचंद्र के गुण गाते हैं।

उदाहरण

बालि-वध

बारैं आवरै रिण रोपण बंका, बंध सुग्रीव बकारैं।
ऊठे सुण धूमजघंडअधायो, धींग क्रोध उर धारै॥
हूँ हिव अवियो पगमांड हकारै॥१॥

तारां हटग जाणं वेतावां, आयो वाळ अफारा।
वेहू एम जूटिया वंधव, पिंडवली अणहारा।
¹छूटा मदझर ²जुंग जांण खंभारा ॥२॥

सिथल सुकंठ देख अवधेसर, ऊपर करण उमायो।
सारंग ताण आंण श्रुति सूधो, वीर सिलीमुख वायो॥
लोटण ³कौस ज्यों हरि जांण लुटायो ॥३॥

मौने आय अनाहक मारयो, साम खूंन विण लेसा।
जादव वंश देवकी जामण, धर अवतार धरेसा।
दाखै दसरथ सुत बदलो जद देसां ॥४॥

शब्दार्थ—वारैं=वाहर। रिण=रण, युद्ध। वकारै=सचेत करना। धूमजघड=धर्म-युद्ध। अधायो=आया। धींग=वलवान। पगमांड=पैर रोपकर। हकारै=बोला। हटग=वर्जन करना, मना करना। तावा=क्रोध। अफारां=क्रोधित होता हुआ। जूटिया=भिड गये। पिंडवली=बलवान शरीरवाले। छूटा=छूट गये। मदझर=मदोन्मत्त हाथी। खंभारा=हाथी के रहने का स्थान। ऊपर=रक्षा। वायो=चलाया। लोटण=कबूतर। मौने=मुझको। अनाहक=व्यर्थ। साम=स्वामी। विण=विना। लेसां=लेशमात्र। जामण=पुत्र। जद=जब। देसां=दूंगे।

भावार्थ—भाई सुग्रीव ने जाकर कहा—अरे युद्ध रोपनेवाले बांके वीर, बाहर आ। वालि यह धर्मयुद्ध की बात सुनकर चित्त में बहुत क्रोधित होता हुआ आया। और पैर जमा कर बोला कि अब मैं आ गया हूँ ॥ १ ॥

तारा का वर्जन क्रोध से उल्लंघन कर वह क्रोधित होता हुआ

१ पाठा—उलंघने। २ पाठा-गज। ३ पाठा—किसपत।

आया। अपार बलवाले दोनों भाई इस प्रकार भिड़ गये जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी थान से छूट कर भिड़ गये हों ॥ २ ॥

रामचद्र सुग्रीव को शिथिल देखकर रक्षा करने के लिये उत्साहित हुए और धनुष को कान तक खींच कर बाण चलाया। रामचद्र ने जान बूझ कर बालि को लोटन कबूतर की तरह लिटा दिया ॥ ३ ॥

बालि बोला कि मुझे आपने व्यर्थ ही मारा। हे स्वामी! मेरा कुछ भी अपराध नहीं था। रामचंद्र ने कहा कि यादव वंश में देवकी के पुत्र रूप में पृथ्वी पर अवतार लूँगा, तब तुझे बदला दूगा ॥ ४ ॥

"गीत जात चितविलास"

वरतारो—"चर्नाकुलक"

कलषट करे वीपसा करणो, विच जिणगुर संबोधन वरणो।
तुक चवदैं कल बले जितावैं मोहरा तिणरा मेल मिलावै ॥
उणपर दुहो अरटिया वालो, फिर तुक आदि तिका अंत फालो।
धुरेतिका मोहरा सुध धारो, चितविलास सो गीत उचारो ॥१०॥

शब्दार्थ—वीपसा = दोबारा कहना। बले = फिर। फालो = लावो।

भावार्थ—षट्कल दोबार करके उसके मध्यमें गुरु अक्षर से संबोधन रखना चाहिये। इसके बाद १४ मात्राओं का एक पद रखकर उसका तुकांत मिलाना चाहिये। उस पर अरटिया गीत का एक द्वाला (दोहा) रखकर जो पद आदि में आया है उसे ही अंत में भी लावो। आदि के पद से सबका तुकान्त मिला कर उसे ही चित्त विलास गीत कहो।

उदाहरण

"राम विरह नै सुग्रीवजी सूं लिषमणजी रो संभाषण"

धनुधारे! रे धनुधारे!
सर एका बाल सिंघारे।

महाराजधिराज सुग्रीव मनांरा सारा कारज सारे ।
कीधो भूप पुरी केकंधा दोवण दूर विदारे ।
रे धनुधारे ! ॥१॥

रघुराजा ! रे रघुराजा !
रिष मूक गिडंद दराजा ।
चोमास रहे वे भ्रात सुचंगा ताम पटे जस ताजा ।
देखे राम पयोधर दामण सीत विरह तन साजा ।
रे रघुराजा ! ॥२॥

जद जावे रे जद जावे ।
झठ सेस गयो समझावे ।
रे मीत नचिंत हुवो कपराजिंद याद हरी नँह आवे ।
तोरो वीर विछंडे तीरां थां गथ सो हिव थावे ।
रे जद जावे ॥३॥

मैं मेले रे ! मै मेले ।
परचंड दसूं दिस पेले ।
नँह भूलो वात सुमंत्रा नंदण ! छोह अनाहक छेले ।
वे सिय सोध हिमैं भड आवै लंगर फोजा ले ले ।
रे मैं मेले ॥४॥११॥

शब्दार्थ—धनुधारे=लक्ष्मण का विशेषण । सिंघारे=मारे । दोयण=शत्रु । विदारे=विदीर्ण किये, मारे । गिडंद=पर्वत । दराजा=गुफा । सुचंगा=अच्छी तरह । ताम=वहा । खटे=एकत्र किया । ताजा=नवीन । दामण=दामिनी, बिजली । झठ=शीघ्र । नचिंत=बेफिकर । वीर=भाई । विछडे=मारा गया । थां=तेरी । गथ=

गति। पेले = भेजे हैं। छोह = क्रोध। छेले = करते हो। हिमैं = अब। लंगर = समूह।

भावार्थ—हे धनुर्धारी (लक्ष्मण)। मैंने एक ही बाण से बाली को मार दिया है। और महाराजाधिराज सुग्रीव के इच्छित कार्य सब पूर्ण करा दिये हैं। और उसके शत्रु का नाश करके उसे किष्किंधा नगरी का राजा बना दिया है॥ १॥

(लक्ष्मण बोले) हे रामचद्र! (इसके बाद कवि कहता है) ऋष्यमूक पर्वत की गुफा में वे दोनों भाई चार मास तक अच्छी तरह रहे और उन्होंने वहां पर नवीन यश का संग्रह किया। रामचंद्र ने बिजली सहित बादलो को देखा। इससे उनके शरीर में सीता का विरह जाग उठा॥ २॥

तब लक्ष्मण वहाँ गये। शीघ्र ही सुग्रीव के पास जा कर उसे समझाने लगे। अरे मित्र। कपियों के राजा! तू तो बेफिकर हो रहा है, क्या तुझे रामचद्र का स्मरण नहीं है? जिस बाण से तेरे भाई को मारा है, उसीसे अब तेरी भी वही गति होगी॥ ३॥

सुग्रीव ने कहा कि मैंने प्रचंड आदमियों को दशो दिशाओं मे भेज दिया है। हे सुमित्रानदन (लक्ष्मण) मैं वह बात भूला नहीं हूँ। आप व्यर्थ का क्रोध करते हैं। जिन योद्धाओं को सीता की खोज के लिये मैंने भेजा था, वे अब अपनी अपनी फौज लेकर आते ही होंगे॥४॥

"गीत जात मंदार"

वरतारो-दोहा

उमंग दुपद कर ऊपरै, अरध सीह चल आंण।
फिर इस रच द्वालो फवै, सो मंदार सुजाण॥१२॥

भावार्थ—उमग गीत (जिसके प्रत्येक चरण में सोलह २ मात्राएँ अत में दो गुरु सहित होती हैं) के दो चरणो के ऊपर (बाद)

सिंहचल गीत (जिसके प्रथम पद में १६ मात्राएँ और दूसरे पद में अंत में रगण सहित १३ मात्राएँ होती हैं) लाओ। इसी प्रकार पुनः दो पद उमंग गीत के और फिर दो पद सिंहचल गीत के रचकर एक द्वाला (दोहा) बनाया जाता है। हे सुजान, वह मंदार गीत है।

विशेष—इस गीत में उमंग गीत के चरणों के साथ उमंग के, और सिंहचल के साथ सिंहचल के तुकांत मिलाये जाते हैं।

उदाहरण

सीतां सोध

सुण सेस सिया चो सोधानूं, जेले दिस चारूं जोधानूं।
सुग्रीव कह्यो दिस प्राची सोधण, बांदर नीत बनीत सा ॥
जिण साथ पैराकी जंगारा, अत प्राक्रम दीरघ अंगारा।
इसडा पंचवीस किरोड अढंगा, फुरू सरू रीतां जीतसा ॥१॥
बलपिंड प्रचंड सुखेण बली, भड सेना बीस किरोड भली।
ऊ पच्छम ओड गयो अणभंगी, धीट बडा वृध धारिया ॥
द्रिढ़ संत भली उतराद दिसा, जुडजीपै जंग क्रतांत जिसा।
कप बीस साथ थे कोड अणंकल, वीरतवान वधारिया ॥२॥
वरियाम महाबल वंकानूं, लख अंगद सा दिस लंकानूं।
उण साथ किया जोधार अपंपर, तेज घणे निध नीतरा ॥
जोसेल गवायक नील जती, फिर तार दुयंदिसु भाल पती।
गंधमादन आद दवा दस गाजिय, कीस समाजिय क्रीतरा ॥३॥
के आया लंगर कीसांरा, सो जीते थाट अरी सारा।
देखाल तिके दिल दूठ दुवाहे, सामल कीधो साखियो ॥
अत हेत अहेश सुकंठ अनै, करुणानिध श्रीरघुवीर कनै।
दिल मोद महादिल आयर दोई, भेद सकोई भाखियो ॥४॥१३॥

शब्दार्थ—सियाची = सीता को । सोधानू = खोज के लिये । जेले = भेजे । प्राची = पूर्व दिशा । नीत वनीत सा = नीति में गरुड़ जैसे । पैराकी = प्रवीण, चतुर । इसडा = ऐसे । फ़ुफ़ = युद्ध । सरू = सारू, लिये । जीतसा = विजय करनेवाले जैसे । पिंड = शरीर । सुखेण = एक बंदर का नाम । धीट = धृष्ट, बलवान । वृदधारिया = विरदवाले । संतभली = बंदर का नाम । उतराद = उत्तर दिशा । जुड = भिडकर । जीपे = जीतना । क्रतांत = यमराज । अणकल = बलवान । वीरतवान = वीरता लिये हुए । वधारिया = वृद्धि को प्राप्त हुए, बड़े । वरियाम = श्रेष्ठ । अपंपर = अपारा । जोसेल, गवायक नील = बंदरों के नाम । जती = हनुमान का विशेषण । भालपती = जामवंत । गंधमाद = एक नाम है । दवादस = बारह । क्रीतहा = कीर्त्ति के । लगर = समूह । देखाल = देखो । दिल दूठ = मजबूत, बलवान । दुबाहे = दो हाथ के । अदेश = लक्ष्मण । सुकठ = सुग्रीव । अनै = और । सकोई = सब ।

भावार्थ—सुग्रीव ने कहा कि हे लक्ष्मण सुनो, सीता की खोज के लिये चारो दिशाओं मे योद्धाओं को भेज दिया है । पूर्व दिशा में तो नीति में गरुड़ जैसे (तेज) बंदर भेजे हैं जिनके साथ में युद्ध में चतुर, बड़े पराक्रमी बड़े बड़े शरीरवाले और युद्ध के लिये विजय प्राप्त करनेवाले योद्धाओं जैसे—ऐसे पचीस करोड़ योद्धा है ॥ १ ॥

बड़ा बलवान और प्रचंड सुखेण नामक बंदर जिसके साथ बीस करोड़ उत्तम सेना है, पच्छिम दिशा को भेजा गया है । बड़े बलवान, विरदवाले और दृढ़ संतभली नामक बंदर को—जिसके साथ यमराज के साथ लड़ कर जीतनेवाले जैसे, बलवान और वीरतावाले बीस करोड़ बंदर हैं—भेजा है ॥ २ ॥

श्रेष्ठ, महाबली, बाँका अंगद जैसा वीर लंका की ओर भेजा है जिसके साथ में बड़े तेजवाले और नीतिवान अपार योद्धागण हैं ।

जोसेल, गवायक, नील, हनुमान, तार, द्विविध, जामवंत वीर और गंधमाद आदि बारह योद्धा जो बंदरों के समूह की कीर्त्ति हैं, दोनों दिशाओं में फिर रहे हैं ॥ ३ ॥

कितने ही शत्रुओं को जीतनेवाले बंदरों के समूह आ गये। वे शत्रुओं के समूह को जीतनेवाले हैं। सुग्रीव ने उन बलवान दो हाथोंवालों को दिखा कर अपने साथ कर लिया। बड़े प्रेम से लक्ष्मण और सुग्रीव प्रसन्न होते हुए रामचंद्र के पास आये और उन्होंने सब भेद कहा ॥ ४ ॥

इति श्री रघुनाथ रूपक मुरधर देश भाषा कविमछराम विरचितोयं केकिंधाकाड षष्ठमो विलास समाप्तः।

अथ सप्तम विलास

(सुंदर कांड)

गीत जात कैवार

वरतारो—छंद दोहा

चरण विषम पद प्रौढ़ चव, सम पद नव कलसार ।
दुय गुर मोहरा अंत दे, करो गीत कैवार ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रौढ़ गीत के विषम पद (जिनमे सोलह सोलह मात्राऍं होती हैं) इस गीत के विषम पदों मे कह कर सम पदों में नौ मात्राऍं रखो । और तुकांत मे दो गुरु रखकर कैवार गीत करो ।

उदाहरण

दिसलंक अंगद आद द्वादस, तहकिया तेखी ।
इक अरण सो बिच त्रिसा आतुर, दरि द्रग देखी[1] । १ ॥
मह जाय पेखे छाह निरमल, प्रघण हिम पाणी ।
तित सयम परभा त्रिया तिणनूं, वदै मुख बाणी ॥ २ ॥
किम अठै कहियो सरब कारण, राज किण रीता ।
अवधेसरा म्हे सुभट आया, सोझवा सीता ॥ ३ ॥
लंक दिस सुण इतो हाले, अभंगी आगां ।
विण पंख नाम संपात विच में, मिलयो बन मागां ॥ ४ ॥
उर तरै सगळी ग्रीधवाली, संपेखे सांची ।
सिय हरण मरण जटायु साजी, विगत सह सांची ॥ ५ ॥

१—वांची = पाठान्तर ।

प्रभु चिरत सुण हुअ परां प्रफुलत, अखे अणसंका।
दध बीच बाग असोक देखो, लछी गढ़ लंका ॥ ६ ॥
संपातरा सुण वयण सारा, गहर नद गाजे।
चित चाव त्रिकुटा अचल चढ़िया, कूदवा काजे ॥ ७ ॥२॥

शब्दार्थ—तहकिया = चले। तेखी = क्रोधयुक्त। अरण = (अरण्य) वन। दरी = गुफा। मह = अंदर। पेखे = देखे। प्रचण = बहुत। पाणी = जल। संयम परभा = उस स्त्री का नाम। सोझवा = खोजने के लिये। हाले = चले। अभंगी = जिनका भंग न हो। आगां = आगे। संपात = नाम है। मागां = मार्ग। उर तरै—शरीर की तरह। संपेख = देख कर। साजी = सजकर कही। दध = समुद्र। लछी = (लक्ष्मी) सीता। चाव = उमंग।

भावार्थ—अंगद आदि १२ योद्धा गण क्रोधयुक्त लंका की ओर रवाना हुए। एक बन मे उन्होंने प्यास से आतुर होकर एक गुफा देखी ॥ १ ॥

उन्होंने गुफा के अंदर जाकर छांह और ठंडा जल देखा। वहां पर संयम प्रभा नामक स्त्री ने उनसे कहा ॥ २ ॥

आप लोगों का यहां किस प्रकार आना हुआ, सो कहिये। तब उन्होंने कहा—हम रामचंद्र के योद्धा हैं और सीता को खोजने के लिये आये हैं ॥ ३ ॥

'लंका की ओर'—इतना सुनते ही वे अभंगी योद्धा गण आगे बढ़े। उन्हें बन के मार्ग में संपात नामक बिना पंखों का एक पक्षी मिला ॥ ४ ॥

उन्होंने (बंदरों ने) अपने हृदय में गीध की जैसी आकृति सच्ची समझ कर सीता के हरण और जटायु के मरण की कथा बना कर कही ॥ ५ ॥

रामचद्र का चरित्र सुन कर उसके पर निकल आये। निःशंक होकर उसने कहा कि समुद्र के बीच में लंका है। वहां अशोक वाटिका में जाकर सीता को देखो ॥ ६ ॥

सबके सब संपात की यह बात सुन कर गंभीर शब्द से गरजे। और उमंग से कूदने के लिये त्रिकूटाचल पर चढ़े ॥ ७ ॥

दोहा

जोय प्रवल अणपार जल, वार रह्या भड आन।
निडर उलंघण वारनिध, हुवो त्यार हनुमान ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अणपार = अपार। वार = किनारा। वारनिध = समुद्र।

भावार्थ—अपार जलराशि को देख कर सबके सब योद्धा किनारे पर ही रह गये। तब निडर हनुमान समुद्र का उल्लंघन करने के लिये तैयार हुआ।

गीतं जात चित्तहिलोल

वरतारो-छंद दोहा

प्रौढ गीतरै ऊपरै, तवै उलालो तोल।
कहै मंछ तिणनूं सुकवि, आखै चितहिलोल ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रौढ़ गीत—(जिसके विषम चरणों में सोलह मात्राएँ और सम चरणों में दस मात्राएँ होती है) के ऊपर (बाद) उल्लाला छंद कहो और उसके आदि में 'तो' शब्द लाकर एक शब्द दो तीन दफा लाओ। मंछ कवि कहता है कि इसी को कवि लोग चित्त-हिलोल कहते हैं।

उदाहरण

ले हुकम सीता खबर लेवण, सकज राघव संत।
लह लंक दिस सज उदधलंघण, हालियो हणमंत।
तो बलवंतजी बलवंत बारध लांघवे बलवंत ॥ १ ॥

पुरे पेख महल दुरंग प्रारंभ, चपल सियपद चाव।
द्रुम तलै बाग असोक दरसे, प्रगट परसे पाव।
तो कपरावजी कपराव करदे मूँदरी कपराव ॥ २ ॥
वध रोस अंग विधूस उपवन, दळे चोकीदार।
दसकंठ सेन सिंघार दारुण, मार अपय कुमार।
तो जोधार जी जोधार, जाजुल रामरो जोधार ॥ ३ ॥
पणपाळ ब्रह्म आपचो पण, गरम असुरां गाळ।
इम उलट कमला कदम आयो, पुरी लंक प्रजाळ।
तो लंकाळजी लंकाळ कपडर घहलियो लंकाळ ॥ ४ ॥
मणधार आवुंत मांग मारुत, बंद सिय पद वेस।
बळ चरण वारज आवियो, पत चाढ़ कारज पेस।
तो अवधेसजी अवधेस, अत विरदावियो अवधेस ॥५॥५॥

शब्दार्थ—लह = लेकर। दुरंग = दुर्ग। मूंदरी = अँगूठी। वध = बढ़ा। विधूंस = विध्वंस करके। दले = मारे। जाजुल = जाज्वल्य, बलवान। पण = प्रण, प्रतिज्ञा। ब्रह्म = ब्रह्मास्त्र। गरभ = गर्व। गाल = नष्ट कर। प्रजाल = जला कर। लंकाल = रावण। घहलियो = डर गया। मणधार = शीशमणि। आवुत = आता हुआ। पत = प्रतिज्ञा। चाढ़ = पूर्ण करके। पेस = स्वामी। विरदावियो = प्रशंसा की।

भावार्थ—सीता की खोज के लिये आज्ञा लेकर रामचद्र का संत (हनुमान) लंका की ओर समुद्र को उल्लंघन करने के लिये चला। वह समुद्र उल्लंघन के लिए बहुत बलवान है और उसने समुद्र का उल्लंघन कर लिया ॥ १ ॥

सीता को देखने की इच्छा से नगर, महल और दुर्ग को देखने

१ पाथ—आयशु।

लगा। तब अशोक वाटिका मे वृक्ष के नीचे सीता को देख कर और प्रकट हो कर उसके पांवों का स्पर्श किया। और तब हनुमान ने उसके (सीता के) हाथ में वह अंगूठी दी॥ २॥

रामचंद्र के बलवान योद्ध हनुमान को बड़ा क्रोध आया। उसने उस बाग को नष्ट कर उसके रखवालो को मार डाला और रावण की जबरदस्त फौज का संहार करके उसके पुत्र अक्षयकुमार को भी मार डाला॥ ३॥

ब्रह्मास्त्र की और अपनी प्रतिज्ञा को पाल कर राक्षसो के मन को धूल में मिला कर और लंका को जला कर हनुमान सीता के चरणों में वापस आया। यह बात जब रावण को ज्ञात हुई तो वह हनुमान के भय से बहुत ही डर गया॥ ४॥

हनुमान ने आते समय सीता से शीश मणि माँगी। उसे लेकर और सीता के चरणों में प्रणाम करके रामचंद्र के चरणों में आया। उसने अपनी प्रतिज्ञा और स्वामी के कार्य को पूर्ण किया। तब रामचंद्र ने उसकी बहुत ही प्रशंसा की॥ ५॥

गीत जात पालवणी

वरतारो-दोहा

कली एक षोडष कला, चोकलिया गण चार।
धुरपद कळ उगणीस धर, अवर चरण इकसार॥ ६॥
चारपदां द्वालो चवॉ, मोहरा चार मिलाण।
लघु गुरु नेम न ल्याइये, पालवणी परमाण॥ ७॥

भावार्थ—पालवणी गीत का परिमाण इस प्रकार है—चार चौकल से प्रत्येक पद मे १६ मात्राएँ करो। प्रथम पद के प्रथम द्वाले में १६ मात्राएँ और अन्यों में एक सी मात्राएँ करनी चाहिएँ। चार चरणों

का एक द्वाला करके चारों तुकांत मिलाना चाहिए और लघु गुरु का कुछ नियम नहीं रखना चाहिए।

सोरठा

दुय दुय पदां दुमेल, मंछ कहै सोहरा मिलै।
म्होरां चारां मेल, दाखै पालवणी दुझल ॥ ८ ॥

भावार्थ—मछ कवि कहता है कि दुमेल गीत में तो दो दो पदों का तुकांत मिलता है और जहाँ चारों पदों का तुकांत मिलाया जाता है, वह पालवणी कही जाती है।

उदाहरण

मंदोदरी वायक रावण सूँ

पुलियो नँह चाप कंथं तोपाणी,
धाम जनक मिलिया रजधाणी।
हतो कठै पोरस कुल हाणी,
अब तै सिया दगैकर आणी ॥ १ ॥

गृह तो सहस बतीस लुगाई,
पिण तू ल्यायो नार पराई।
बेल त्रिकूट मीचरी बाई,
कंथा ! खोटी कीध कमाई ॥ २ ॥

कर तन समर करण सुर किरिया,
घण दल सझ नर बाँदर घिरिया।
तिण डूबत दधि पाहण तिरिया,
फारक दिवस हमै तो फिरिया ॥ ३ ॥

विसवावीस आण सिर बीती,
जाणी बात न जावै जीती।
सजयो नहीं काज गह सीती,
पणही हारे कीध फजीती ॥ ४ ॥

वीर एक आयो बन चारी,
कीधी लंका माहिं करारी।
हूँ पत ! तूंझ गुणा बलिहारी,
खाली बातां कीध खवारी ॥ ५ ॥

एक उपाव अजूं मत अंधा,
कर सिय नजर राम दसकंधा !
सहज सुग्रीव कियो सनमंधा,
कामण जुत लै दी के कंधा ॥ ६ ॥

धनुष धरण अवगुण नँह धारे,
सरण सधार कहै जग सारै।
वागसे तनै गुणो इण वारै,
चित अयणो जो विरद विचारै ॥ ७ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—वायक = वचन। पुलियो नॅह = उठा नहीं। कंथ = पति। कुलहाणी = कुलनाशक। दगो = धोखा। विण = तोभी। बेल = लता, बेलडी। मीचरी = मृत्यु की। वाई = लगाई है। कर तन = शरीर बनाया है। सुर किरिया = देवताओं की क्रिया। तिण = तृण, तिनका। दधि = समुद्र। पाहण = पत्थर। फारक = हलके। हमैं = अब। जीती = विजय। सीती = सीता। फजीती = फजीहत, बदनामी। वनचारी = बंदर। करारी = जबरदस्ती। खाली = व्यर्थ की। खवारी = ख्वारी, बदनामी। सनमंधा—सबंध। कामण = स्त्री। जुत = साथ। सरण सधार = शरणा-

गत पालक। बगसै=बख्शीस करेंगे। गुणों=गुनाह, अपराध। इण-बारै=इस समय।

भावार्थ—मंदोदरी ने कहा—हे कुल-नाशक स्वामी। जब आप जनक राजा की राजधानी में गये थे, तब आपका पुरुषार्थ कहाँ चला गया था? उस समय तो आप से धनुष नहीं उठा। अब आप सीता को धोखा देकर लाये हैं॥ १॥

आपके घर में तो ३२ हजार स्त्रियाँ हैं। फिर भी आप पराई स्त्री को ले आये हैं? हे स्वामी, आपने त्रिकूटाचल पर मृत्यु की लता बो दी है और खराब कमाई की है॥ २॥

आप से युद्ध करने के लिये देवताओं ने शरीर धारण किया है। रामचंद्र ने बंदरों और मनुष्यों के दल से आपको घेर लिया है। देखो समुद्र तृण डूब जाते हैं, पर उनके (रामचंद्र के) प्रताप से पत्थर भी तैर गये। इसलिये ज्ञात होता है कि अब आपके हलके दिन आ गये हैं अर्थात् खोटे दिन आ गये हैं॥ ३॥

अब तो सचमुच आपके सिर पर आ बीती है, विजय की कोई आशा नहीं है। सीता को पकड़ लाने से कुछ भी काम नहीं बना है। आपने अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ी और बदनामी भी कराई॥ ४॥

देखो एक वीर बंदर आया था। उसने लंका में भी बड़ी जबरदस्त बात की। हे स्वामी, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ—व्यर्थ की बातों से बदनामी मत कराओ॥ ५॥

हे मतिअंध दशकध! अब भी उपाय है। तुम उन्हें सीता लौटा दो। देखो! सुग्रीव ने उनसे सहज ही संबंध किया। तब उन्होंने स्त्री सहित किष्किन्धा नगरी लेकर उसे दे दी॥ ६॥

रामचंद्र तुम्हारे अवगुणों की तरफ नहीं देखेंगे। सब संसार उन्हें शरणागत पालक कहता है। यदि तुम अपने चित्त में अपना विरद विचार लो तो वे इस समय तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे॥ ७॥

गीत जात कवि ईलोल

चर्नाकुल

कल षोडस सगणांत करीजै, धर तुक उभै प्रबंध धरीजै ।
बे मिल तुकां उलथ्थो आवै, कवि इलोल सो गीत कहावै ॥१०॥

भावार्थ—प्रत्येक पद मे १६ मात्राएँ करके अंत में सगण रखो । इस प्रकार दो तुक करो । फिर जो दो तुक हों, उनमे प्रथम दो तुकों में उलट पलट कर शब्द लो और उन्हे बना लो । इसे ही कवि ईलोल गीत कहते हैं ।

उदाहरण

रावण मंदोदरी वायक प्रश्णोत्तरी

मंदोदर ! भोलैं भूलमती, जळ आसी वारध लांघजती ।
जल आयर वारध लांघजती, मुँह मडैं भोलैं भूलमती ॥१॥
दृढ़ आया जो अर साज दलां, वध सांमां धारे पूरबलां ।
वध मैं जद धारै पूरबलां, दहबाट करूँ अर साज दलां ॥२॥
कोतक सो मंडे भाल कपी, थाटां हुय सुण जै राड थपी ।
थिर थाटां मै जग राड थपी, करस्यूं निरबीजा भाल कपी ॥३॥
दीसै भुज बीसे सीसदसै, कह वरनैं ज्यां लग राम कसै ।
दटसी भुज बीसे सीसदसे, कोपे जद केवल राम कसै ॥४॥११॥

शब्दार्थ—आसो = आवेंगे । वारध = वारिधि, समुद्र । आयर = आवेंगे । मुँह मडें = अज्ञानी होकर । अर = अरि, शत्रु । वध = मारेंगे । सामां = सम्मुख होकर । पूरबला = पूर्ण बल । दहबाट = मारूँगा । कोतक = कौतुक । थाटां = समूह । राड = लड़ाई । भाल = भालू, रीछ । दीसैं = दिखाई पड़ते हैं । वरनै = वर्णन करो । कसै = कमर कसना । दटसी = करेंगे ।

भावार्थ—रावण कहने लगा—हे मंदोदरी, तू भूल मत कर। वे राम लक्ष्मण समुद्र के जल को उलांघ कर कैसे आवेंगे ? मंदोदरी ने कहा—राम लक्ष्मण समुद्र के जल को उलांघ कर आ जायेंगे। तुम अज्ञान में मत भूलो ॥ १ ॥

यदि शत्रु मजबूत फौज को सजा कर आ गये तो पूर्ण बल से तुम्हारा सामना करके तुम्हारा बध कर डालेंगे। रावण ने उत्तर दिया कि जब मैं पूर्ण बल से शत्रु की फौज को मारने लगूँगा तब उनका नाश कर दूगा ॥ २ ॥

जब तू यह सुन ले कि युद्ध छिड़ गया, तब देखना कि सब भालू और बंदर कौतुक से देखा करेंगे और उनको निर्बीज कर दूँगा ॥ ३ ॥

मंदोदरी ने फिर कहा—इस बात का खूब वर्णन कर लो। रामचद्र जब तक कमर कसते हैं, तब ही तक यह दस मस्तक और बीस हाथ नजर आते हैं। जब रामचद्र क्रोधित हो कमर कसके आ जायेंगे, तब ये बीस भुजाएँ और दस मस्तक कट जायेंगे ॥ ४ ॥

गीत जात त्रिपंखो

वरतारो छंद सोरठा

दुय पद धरैं दुमेल, विषम तृतिय साणो रवड।
मंछ सुकवि इण मेल, गीत त्रिपंखो गुण इणां ॥१२॥

भावार्थ—सुकवि मंछ कहता है कि इस प्रकार से त्रिपंखा गीत कहो—दो पद तो दुमेल गीत (जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं) के रखो। इसके बाद बड़े साणोर गीत के प्रथम पद (जिसमें २० मात्राएँ होती हैं) की मात्रा रखो। अर्थात् इस गीत के प्रथम और द्वितीय पद में सोलह-सोलह मात्राएँ रखो। इस गीत में तीन ही चरण होते हैं।

उदाहरण

ववीछक वायक

आवण रघुबर सुणी अवाई, बीस भुजाधर सभा बणाई।
जठै रावण अनुज बोलियो जोरवर ॥१॥

थेटू भ्रातर हितूँ हूँ थारो, मान कहूँ रे कहियो म्हारो।
जियो जो चहै तो परी दे ज्यानकी ॥२॥

पूछ्यां विना पयंपै पापी, थट विच कहै लात सिर थापी।
वदन मत दिखालैं वंस द्रोही बले ॥३॥

चितां भभीषण एम विचारी, खलची आई अडग खवारी।
हरष सूँ ध्यान कर हरि दिस हाँकिया ॥४॥

कदमां गयो भगत हितकारी, चवी विगत सगली निसचारी।
आपरै चरणरी सरण हूँ आवियो ॥५॥

आव लंकेश अखै अवधेसुर, आच दियो मस्तकरै ऊपर।
सरस मन जांणियो आगमन सीतरो ॥६॥

शब्दार्थ—आवण = आगमन। बीस भुजाधर = रावण। थेटू= हमेशा से। परी दे =दूर कर। थट=समूह, सभा। थापी=जमाकर। बले = फिर। चवी=कही। निसचारी = राक्षस। अखै=कहै। आच = हाथ।

भावार्थ—रावण ने रामचद्र का आगमन सुन कर एक दरबार किया। वहा पर उसके भाई विभीषण ने कहा॥ १॥

हे भाई, मै हमेशा तेरी भलाई चाहनेवाला हूँ। मेरा कहना मान जा। यदि तू जीवन की इच्छा रखता है तो सीता को दूर कर दे॥२॥

रावण ने कहा—अरे पापी! विना पूछे हुए ही बोलता है! और

फिर सभा के बीच में ही उसके (विभीषण के) मस्तक पर एक लात जमा कर कहा कि अरे वंशद्रोही, तू फिर अपना मुँह मत दिखाना ॥३॥

विभीषण ने चित्त में विचार किया कि इस दुष्ट की अब खराबी आ गई है। इसी लिये वह ईश्वर (रामचद्र) का ध्यान कर प्रसन्न होता हुआ रामचंद्र की ओर रवाना हुआ ॥ ४ ॥

भक्तों के हितैषी (रामचद्र) के चरणों में जाकर सम्पूर्ण हकीकत कही। और बोला—मैं आपकी शरण आ गया हूँ।

रामचद्र ने "आओ लकेश" ऐसा कहा और उसके मस्तक पर अपना हाथ रखा। और अच्छी तरह चित्त में सीता का आगमन जान लिया ॥ ५ ॥

इति श्री रघुनाथ रूपक मुरधर देश भाषा कवि मंछराम विरचित सुंदरकांड सप्तमो विलासः समाप्तः।

अष्टमो विलासः ॥ ८ ॥

अथ लंकाकांड

॥ दोहा ॥

रिषीमूक कर नवरता, पूज सगत जगपाल ।
सदल कूच करवा समैं वाजै तहक त्रमाल ॥ १ ॥

शब्दार्थ—नवरता = नवरात्रि । सगत = शक्ति । जगपाल = रामचद्र । तहक = घोर । त्रमाल = नक्कारे ।

भावार्थ—सरल ही है ।

गीत जात मनमोद

विरतारो-दोहा

गुण दोहैसी भाल गत, ऊपर कडपो आंग ।
हुवै गीत मनमोद हद वद रघुपत वाखांण ॥ २ ॥

शब्दार्थ—भाल = देखो । गत = गति । हद = अधिक । वद = वर्णन करो ।

भावार्थ—दोहा छंद बनाकर उसके बाद कडखा लाओ । यही मनमोद गीत है । इसमे रामचंद्र के यश का खूब वर्णन करो ।

उदाहरण

फौजरो प्रयाण

डेरा थी साजै इधर, पह इम कीध पयाण ।
करवा सुरां सहायकज, असूरा सूं आराण ॥

राण दिस हालिया ठांण आराण रुख,

कोह असमांण चढ़ भाण ढंका ।

गोम नेजा हलक राग सिंधु गहक,

डहक डंडाहड़ां सीस डंका ॥

जबर जय नीब सुग्रीव अंगद जिसा,

बलेपत भाल सा वीर वंका ।

बांध चालां षडे अडे नभ महाबल,

लडण दसकंध सूं लेणे लंका ॥१॥

लंका लेवण लंगरी, कप फोजा इधकात ।

प्रलै. करण जाणै प्रथी सालुलिया दध सात ॥

दध सात सालुले प्रलै करवां प्रथी,

कीस दल पूरसां वहै काथा ।

चंड दिगपाल दिस विदिस हुयचल,

विचल तजी मरजाद वड़ अचल ताथा ॥

चहल तिहुं लोकचल सिद्ध आसण चले,

हरीताली खुली सूलहाथा ।

कमठ पर भार पड छिले रस कचरकां,

मचरकां सेसारा हले माथा ॥२॥

माथा हाले सेस मह, पडे भार अणपार ।

कूच करे आया कठठ, लंगर लीधालार ॥

लार लंगर लियो पदम दस आठ कप,

तोयधर कूलवप जोस ताजा ।

ताम रघुवीर मग काज तूनीर सूं,

सोखवा नीर धनु तीर साजा ॥

विकल जलजीव लख जलथ कर जोर कर,

रूप द्विज हुय कह्यो राम राजा ।

धार तुव नाम तिरवाय गिर धूपरैं,

प्रभू मो ऊपरे बांध पाजा ॥३॥

पाजा बांधे समद पर, जंग सकाजा जोध ।

सेव थपे रामेस सिव, उतरे पार पयोध ॥

पयोधर पार पय ऊतरे अवध पत,

पाजबंध चारसै कोस पैरा ।

हूल असुरांड पड भूल सुध माण हट,

फिरैं चित्त डूल जिम चाक फेरा ॥

तवै मंदोदरी राख सिय सीख तज,

कंथ हिव चाख फल पाप केरा ।

कीध दइवाण आजाण भुजलंकरै,

डाण सूं आण नजदीक डेरा ॥४॥

शब्दार्थ—डंवर = आडंबर । पह = राजा । पयाण = प्रयाण । आराण = युद्ध । ठाण = ठान कर । कोह = धूल, रज । भांण = भानु, सूर्य । गोम = आकाश । हलक = हिल रहे है । गहक = गाते हैं । डहक = पड़ते हैं । डडाहडा = नक्कारे । जयनीव = विजय मूल कारण । पत-भाल = भालुपति, जामवंत । बाध चाला = चाल बाँध कर । खड़े = रवाना हुए । सालुलिया = उलट पड़े हैं, वा रवाना हुए है । पूरसा = परिपूर्ण । वहै = चलते है । काथा = शीघ्र । ताथा = (तथा) ऐसे चहल = चारों ओर । ताली = ध्यान । कचरका = कचूमर निकल गया । मचरकां = मचकियों से । मह = मही, पृथ्वी । कण्ठ = शीघ्रता से । लार = पीछे । तोयधर = समुद्र । कूल = किनारा । वप = वपु, शरीर । धूपरैं = मस्तक के ऊपर से । पाजा = पुल । सेव = सेवा करके । पैरा = तैर

कर अथवा पैर से पार उतर कर। हूल = भय। सुधमांण = बुद्धिमान। पाप केरा = पाप के। दइवाण = विशालकाय। आजाणभुज = आजान बाहु, लम्बी भुजा वाले। डांण = सीमा।

भावार्थ—राजा रामचंद्र ने सेना को सजा कर देवताओं की सहायता करने के लिये राक्षसों से युद्ध करने को प्रस्थान किया। युद्ध ठान कर जब रावण की ओर चलने लगे तब आकाश में सूर्य धूल से ढक गया। आकाश में नेजे हिल रहे हैं, सिंधु राग गाया जा रहा है, और नक्कारों के मस्तक पर डंडे पड़ रहे हैं। बलवान और विजय के मूल मंत्र सुग्रीव, अंगद, जामवंत और हनुमान से बांके बांके वीर रावण से लड़ने के लिये और लंका लेने के लिये आकाश को छूते हुए चाल बांध कर चले॥ १॥

कपियों का समूह (सेना) लंका लेने के लिए इस प्रकार चला मानो पृथ्वी पर प्रलय करने के लिये सातों समुद्र उलट पड़े हों (रवाना हुए हों)। जैसे सातों समुद्र पृथ्वी पर प्रलय करने चले हों, वैसे ही बंदरों की पूर्ण सेना शीघ्र चली जा रही है। प्रचंड दिगपाल चलायमान हो गये हैं और वैसे ही बड़े बड़े पर्वतों ने अपनी मर्यादा छोड़ दी। तीनों लोक चारों ओर से चलायमान हो गये, सिद्ध पुरुषों के आसन हिल गये और महादेवजी का ध्यान टूट गया। उन्होंने त्रिशूल हाथ में ले लिया। कछुए की पीठ पर इतना बोझ पड़ा कि उसका कचूमर निकल गया और मचकियों से शेष के मस्तक हिलने लग गये॥ २॥

पृथ्वी पर अपार बोझ पड़ने से शेष के मस्तक हिल गये। रामचद्र सेना को साथ लेकर शीघ्रता से रवाना हो कर आये। अठारह पद्म कपियों की सेना को साथ लेकर नये जोश के शरीर वाले (रामचद्र) समुद्र के किनारे आये। उस समय रामचंद्र ने जल सोख कर मार्ग बनाने के लिये तूणीर से तीर निकाल कर धनुष पर चढ़ाया। जल के जीवों को व्याकुल देख कर समुद्र ने ब्राह्मण का रूप बना कर रामचद्र

के आगे हाथ जोड़ कर कहा—हे प्रभु, आप अपने नाम से पर्वतो को मेरे मस्तक पर तैरवा कर पुल बांध लीजिये ॥ ३ ॥

उन योद्धाओ ने समुद्र पर पुल बाँध लिया। तब रामचंद्र ने भक्ति से सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना कर समुद्र को पार किया। रामचद्र ने चार सौ कोस में पुल बँधवा कर समुद्र के जल को पार कर लिया। (यह सुन कर) राक्षसों के चित्त मे भय और बुद्धिमानो के चित्त मे भ्रम हुआ। उनका चित्त कुम्हार के चाक की तरह फिर रहा है। (जब यह बात मदोदरी ने सुनी कि राम आ गये हैं, तब वह रावण के पास जा कर कहने लगी) मंदोदरी ने रावण से कहा कि मेरी शिक्षा को छोड़ कर सीता रखी है, अब उस पाप के फल को चखो। लम्बी भुजाओं और बड़े शरीरवालों ने समुद्र की सीमा से आकर लंका के पास डेरे लगा दिए हैं ॥ ४ ॥

गीत जात झडलुपत

वरतारो दोहा

प्रथम दुतिय चवथे पदें, मोहरा वहिस मिलंत।
रह अमेल पद तीसरो, जो झडलुपत झिलंत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—वहिस = अच्छे समय। झिलंत = सुशोभित होता है।

भावार्थ—सरल ही है।

विशेषण—वह झडलुप्त गीत पालवणी गीत का एक भेद होता है। पालवणी गीत के प्रत्येक पद की सोलह मात्राएँ होती हैं और प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १६ मात्राएँ होती हैं। चारों पदों के तुकांत मिलाये जाते हैं। किन्तु झडलुप्त में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पदों के तुकांत मिलाये जाते हैं। बाकी सब मात्राएँ बराबर होती है। इसे नेत्र पालवणी भी कहते हैं।

उदाहरण

डेरा रोपया उत्तर दिस डारण,
मन नहचै लंकेसुर मारण।
वले विचार करे लिषमीवर,
धरे जनम मरजादा धारण ॥ १ ॥
खल खूनी है तो घण खायक,
दुनिया दुज देवा दुखदायक।
करुणा उर आणी इण कारण,
निरखे कुल ब्राह्मण रघुनायक ॥ २ ॥
भेख्यो[1] पूर अघ जगत अभावण,
आगम मृत कीधो फिर आवण।
जवँर[2] दूत मेले समुझावो,
रछस अजू समजे तो रावण ॥ ३ ॥
ईखेँ बाल सुतण बुध आगर,
नीत निपुण साहस जस सागर।
आयस पाय अवधपतवालो,
गो लंका कपि वंस उजागर ॥ ४ ॥६॥

शब्दार्थ—डारण = जबरदस्त। लिखमीवर = रामचंद्र। खायक = खोटा। अभावण = अच्छा न लगनेवाला, बुरा। मृत = मृत्यु। रछस = राक्षस। ईखैं = दीखता है। सुतण = पुत्र। आयस = आज्ञा।

भावार्थ—बलवान रामचंद्र ने मन में रावण को मारने का निश्चय करके डेरों को उत्तर दिशा में खड़ा करवाया। फिर विचार किया कि मैंने तो मर्यादा रखने के लिये अवतार धारण किया है ॥ १ ॥

---

१ पाठां—मयो। २ पाठा—जरे।

वह दुष्ट अपराधी बहुत ही बुरा और संसार, ब्राह्मण और देवताओं को दुख देनेवाला है। फिर भी रामचंद्र ने ब्राह्मण समझ कर उसके ऊपर दया की ॥ २ ॥

(रामचद्र ने विचार किया) वह पाप से भरा हुआ है और संसार को बहुत ही बुरा मालूम होता है। उसकी मृत्यु आ गई है। किन्तु यदि वह रावण अब भी समझ जाय तो बलवान दूत भेज कर समझाना चाहिए ॥ ३ ॥

(जब इस बात का विचार हुआ तब सोचा कि समझाने कौन जाय ?) बुद्धि का खजाना, नीति मे चतुर, साहस और यश का समुद्र यह वालि का पुत्र (अगद) ही दिखाई पड़ता है। वंदर वश को उज्वल करनेवाला वह वंदर (अंगद) रामचंद्र की आज्ञा प्राप्त कर लका में गया।

गीत जात त्रवंकडो

वरतारो—छंद चर्नाकुलक

चरण विषम साणेर लघूचा, दुवै चतुर पद मोहरा दाखो।
कहै मंछ कर गीत त्रवंकडो, भला जिकण में प्रभु गुण भाखो ॥७॥

भावार्थ—छोटे साणोर के विषम चरण (जिनमे १६ मात्राएँ होती हैं) रख कर दूसरे और चौथे पद का तुकांत मिलाओ। मछ कवि कहता है कि इस प्रकार त्रवंकडा गीत करके उसमें ईश्वर के गुणों का वर्णन करो।

विशेषण—इस गीत को घोडादमो भी कहते हैं।

उदाहरण

अंगद दूत प्रवेश

अंगद मेलियो सद दूत अपंपर, वल अकलां मजबूत वडालो।
वप सिणगार धूत खल बैठो, रचे सभा अदभूत रढ़ालो ॥ १ ॥

मुणै जाय हरि मेले मोनूं, जड ! तोनूं आगूंच जताउं ।
सीस नमाय सिया ले साथे, वचसी जदां उपाव बताउं ॥ २ ॥
हूं लंगूर नहीं मतहीणा ! स्वान लंगूर हेक रुख सागै ।
तिकथ हते सर तूझ पितानूं, अनुचर रह्यो जिकण तू आगै ॥ ३ ॥
मरै न्याय सांभलरे मूरख, सह तो वाला लखण समूचां ।
थां मृत हिमैं जेज नह थावै, कठठ षडी आवै दर कूचां ॥ ४ ॥
रोपी पैज तंत इक रावण, ऐतो भड वलवंत अगीता ।
ते मो चरण खिसावै तारां, सोवारै तो दीधी सीता ॥ ५ ॥
षल कर जोर तांण पग खूटा, उठै राण कपि वाण उचारै ।
परस्यां पाव कहूं सुण पापी, नेट गुनो रघुनाथ निवारै ॥ ६ ॥
मुगट उतार रु घट दसमुखरा, लेकर उघट धुजाई लंका ।
वाल सुतण्ण रचायो विग्रह, आयो राघव कनै असंका ॥ ७ ॥
अरज करी प्रभुसूं इम अंगद, छलवल कर समझायो छानै ।
कंटक न मानै हेत किया सूं, मोटी डंड दिया सूं मानै ॥८॥९॥

शब्दार्थ—अपंपर = अपार । धूत = धूर्त । रढ़ालो = क्रोधयुक्त । मुणै = कहा । जड = मूर्ख । आगूंच = पहिले से । जदां = जब । रुखसागै = तरह । तो वाला = तेरे जैसे । समूचा = सब, बहुत सा । जेज = देर । खडी = रवाना होकर । पैज = दाँव लगाना, होड । तन्त = तत्व । ऐतो = यह तो । तारां = तब । खूटा = हार गये । नेट = निश्चय । गुनो = गुनाह अपराध । उघट = क्रोध करके । कनै = पास, निकट । मोटो = बड़ा भारी । डंड = दंड ।

भावार्थ—रामचंद्र ने बड़े बुद्धिमान और सच्चे दूत को वहाँ (रावण की सभा में) भेजा । जहाँ वह दुष्ट धूर्त रावण शरीर को सजा कर और क्रोध युक्त अद्भुत सभा बना कर बैठा हुआ था ॥ १ ॥

वहाँ जाकर अंगद ने कहा कि मुझे हरि (रामचंद्र) ने भेजा है। अरे मूर्ख ! मैं तुझे पहिले से ही जतला देता हूँ। मैं तुझे एक उपाय बतलाता हूँ कि तू मस्तक झुकाकर सीता को उनके पास ले जा। तभी तू बचने पावेगा ॥ २ ॥

रावण ने कहा कि कुत्ते और बदर एक से होते हैं। तब अंगद ने कहा कि हे मतिहीन ! मैं वंदर नहीं हूँ। रावण ने फिर कहा कि जिनका तू दूत है, उन्होंने तेरे पिता को बाण से मार डाला है ॥ ३ ॥

अगद बोला—अरे मूर्ख ! सुन, वह तो न्याय से ही मरा है। उसमे तेरे जैसे ही सब लक्षण थे। तेरी मृत्यु में देर नहीं है। वह बहुत जल्दी रवाना होकर आ रही है ॥ ४ ॥

अगद एक दांव लगाकर बोला—ये तुम्हारे वड़े-वड़े निडर योद्धा-गण हैं। यदि ये मेरे पांव को सरका दें तो मैं सौ बार सीता को तुझे दे दूँगा ॥ ५ ॥

वे दुष्ट (रावण के योद्धा) जोर लगाकर हार गये। तब रावण स्वयं उठा। उस समय अंगद बोला—अरे पापी, रामचंद्र के पाओं को छू। वे निश्चय ही तेरे अपराध को क्षमा करेंगे ॥ ६ ॥

रावण के श्रेष्ठ मुकुटों को उतार कर क्रोध से लका को कंपायमान करके और युद्ध करके अगद निर्भय होता हुआ रामचद्र के पास आया ॥ ७ ॥

अंगद ने रामचंद्र के पास आकर यह प्रार्थना की कि मैंने छल-बल से उसे बहुत समझाया, किन्तु वह कंटक प्रेम से नहीं मानता है। वह तो अब बड़ा भारी दड देने से मानेगा ॥ ८ ॥

नोट—पालवणी झडलुपत, दुमेल, त्रवकडो और सावक अडल ये छोटो साणोर री विषम तुकासूं वणै नै इतरा गीतारी पद दूसरी १६ मात्रा हुवै इण में मोहरा रो तफावत (फर्क) छै। इतरा गीत सैणोर बड़ारी विषम तुकारा—साव झडो अर्ध सावझडो आद वणै छै।

गीत जात सावझडो

वरतारो छंद कुकुभा

मोहरा चरण एकसा जिणमें, रीत जिसी कल राखै।
गिण सावझड़ा गोख गीत में भेद इतोहिज भाखै॥
चौथे चरण गोखरा चंगा उभै वीपसां आणै।
सकल सरीसा पद सावझडे विध इण मंछ बखाणै॥९॥

भावार्थ—मंछ कवि कहता है कि जिसके तुकांत मिलाने में और चरणों में मात्रा रखने का जो नियम है वह एकसा होता है वह सावझड़ा गीता है। और सावझड़ गोख गीत में और इस गीत में केवल यही अंतर है कि सावझड़ा गोख गीत के चौथे चरणमें वीप्सा अर्थात् एक शब्द दो दफा आता है और मात्राएँ आदि सब बराबर होती है।

विशेष—सावझडा और गोख गीत में प्रथम द्वाले के प्रथम पद में २३ मात्राएँ और बाकी के पदों में बीस मात्राएँ होती हैं और चारों पदों के तुकांक मिलाये जाते हैं। दोनों का फर्क ऊपर बताया जा चुका है।

दोहा

ऊठै सुण अंगद वयण, विग्रह कज रघुवीर।
ओपे गज घड़ ऊपरां, कोपे जाण कठीर॥१०॥

शब्दार्थ—विग्रह = युद्ध। काज = लिये। ओपे = सुशोभित होते हैं। घड़ = समूह। कोपे = क्रोधित होना। कठीर = सिंह।

भावार्थ—रामचंद्र अंगद की ये बातें सुनकर राक्षसों से युद्ध करने के लिये उठे। वे ऐसे अच्छे मालूम होने लगे, मानो सिंह हाथियों के समूह पर क्रुद्ध हुआ हो।

विशेष—इसमें उत्प्रेक्षालंकार है।

उदाहरण

प्रथम युद्ध

सुणे वयण अंगद कलह, सुभड सरसाविया,
थरक जल थाल जिम त्रिकुट जण थाविया ।
चाल बांधे धुरा दनुज ललचाविया
अंतवप अकंपन समर सज आविया ॥ १ ॥

ताखडा, नत्रीठा ओडिया तायलां,
घणा घायल किया आप घण घायलां ।
भिडे जुध पछे भीडी बँटे भायलां,
रीठ वागो उभय ओड़ अजरायलां ॥ २ ॥

उतर हरि सेस दसवदन दारुण इसा,
मरीची नील मिळ प्रसद धारक मिसा ।
निडर अंगद दिखण महोदर चरनिसा,
डुभल हणमंत घननाद पच्छम दिसा ॥ ३ ॥

वाह सुग्रीव रीष्या उठी बंकरी,
उठी चोकी विरुपाक्ष आतंकरी ।
सम सजे चोट वे तरफ निरसंकरी,
रात दिन बजै घड़ियाल जिम लंकरी ॥ ४ ॥

कितां वपवरंगा छटे कट किरमरां,
सधर धर लड़े उतवंग बोले सरां ।
चापडै मचै रिण निसाचर वनचरां,
वीर कोतिक रचे जाण वादीगरां ॥ ५ ॥

धकै असुरां पड़े भाल कप धूधडै,
खुल सिखर तूल जिम पवन आगल खड़े।
यांण मरकट हुलस गुरज रिमसिर पडे,
झट कुलसहूत गिर जांण टोला झडै ॥ ६ ॥
छवा नटका ज्यूंही कूद अंबर छुवै,
विहूँ थटका करां पूर झटका ववै।
द्रीह घटका खिरै वंट वटका दुवै,
आध जगनाथ राजाण अटका हुवै ॥ ७ ॥
धोम क्रोधानलां जाग वसुधा धमै,
राम जोधा खलां लाग आडै रमे।
गयण मग गयंदां लाग तंदुल गमै,
भेद मंडल मिहर जाण चीलां भमै ॥ ८ ॥
भुजां रघुवीर सर समर भारां वहैं,
फूट पंजर रुधर आर पारां वहै[1]।
हेम गिरि अड सजल गंग हारां वहै,
बिध सुतां जाण हुय सैंसधांरा वहैं ॥ ९ ॥
सुभट अणगिणत सूता घणां सांथरै
भगा खल तज विया खेत भाराथरै।
मना नहचै लखी धरण दशमाथरै,
निजमरण आवियो हाथ रघुनाथरै ॥१०॥११॥

शब्दार्थ—थरक=कंपायमान होना। थाविया=हुये। वप=वपु, शरीर। अकंपन=राक्षस का नाम। ताखडा=उत्साहित होना।

---

१ एक वार पारा फटै=पाठांतर।

नत्रीठा = अधीर। ओडिया = भरे हुए। तायलां = क्रोध से। भीडी = सहायक। भायलां = मित्र। रीठ = शस्त्र की मार। वागो = बजी। अजरायलां = जबरदस्त। मरीची = राक्षस का नाम। नील = बंदर का नाम। प्रसद = प्रसिद्ध। धारक मिसा = शस्त्र और बल के धारण करने-वाले। दिखण = दक्षिण दिशा। महोदर = राक्षस का नाम। चर-निसा = राक्षस। डुम्फल = बड़े बलवान। घननाद = मेघनाद नामक राक्षस। वाइ = सहायक। रीष्या = रक्षा। बकरी = हनुमान की। उठी चोकी = उठी (उस तरफ—राक्षसों की ओर) चौकी = सहायक। विरूपाक्ष = राक्षस का नाम। आतकरी = भयानक की। किता = कितने ही। वरंगा = टुकड़े। किरमरां = तरवार। उतवंग = मस्तक। सधरधर = कबंध। चापडै = प्रकट में। बादीगरां = इन्द्रजाली, बाजीगर, जादूगर। घकै = सन्मुख। धूधडै = फैकते हैं। तूल = रूई। आगल = आगे। खड़े = चलता है। गुजर = शस्त्र विशेष। रिम = शत्रु। झट = शीघ्र। कुलसहूत = वज्र से। टोला = बड़ा पत्थर या गोल पत्थर। छवा = लड़का, पुत्र। विहूथटका = दोनों सेनाओं के। दीह = दीर्घ। बटका = टुकड़े। धोम = धूम। गयण मग = आकाश मार्ग। तदुल = मस्तक। गमें = जाते हैं। महर = सूर्य। भमै = उड़ती है। पजर = शरीर। आर = बैल के मारने की आरी। वहै = वहता है। विधसुता = सरस्वती। नइचै = निश्चय। साथरै = युद्ध में।

भावार्थ—अंगद के वचन सुनकर तमाम योद्धागण युद्ध के लिये हर्षित हो गये। और लंका के मनुष्य थाल (बड़ी रकाबी) में जिस प्रकार जल कंपित होता है, उसी प्रकार कंपित हुए। राक्षस गण कमर कसके युद्ध के लिये ललचाने लगे। अकंपन नामक राक्षस और अतवपु नामक राक्षस युद्ध में सजकर आये॥ १॥

अनेक योद्धागणों ने उत्साहित, अधीर और क्रोधित (क्रोध में भरे हुए) हो कर अनेकों को घायल कर दिया है और स्वयं भी बहुत

घायल हो गये हैं। और युद्ध में मित्र के सहायतार्थ बँट कर योद्धा लड़ने लगे। दोनों तरफ से भयानक शस्त्रों की मार पड़ रही है ॥ २ ॥

उत्तर दिशा की ओर रामचद्र और लक्ष्मण बलवान रावण के साथ प्रसिद्ध शस्त्र और बल को धारण करनेवाला नील मरीची नामक राक्षस के साथ जुट रहे हैं। दक्षिण दिशा की ओर निर्भय अगद महोदर नामक राक्षस के साथ और पश्चिम दिशा की ओर बलवान हनुमान मेघनाद के साथ युद्ध कर रहा है ॥ ३ ॥

इधर हनुमान की रक्षा के लिये सुग्रीव सहायक हैं और उधर राक्षसों की सहायता के लिये विरूपाक्ष नामक राक्षस है। दोनों तरफ बराबर से वार इस तरह हो रहे हैं जिस तरह रात दिन लंका का घड़ि-याल बज रहा हो ॥ ४ ॥

कितने ही योद्धाओं के शरीर तलवारों से कट कट कर उड रहे हैं। और बाण से मस्तक उड़ जाने पर कबंध लड़ रहे हैं। प्रकट में राक्षसों और बदरों से युद्ध हो रहा है। उसमें वीर गण इस प्रकार कौतुक कर रहे हैं मानों कोई जादूगर खेल कर रहा हो ॥ ५ ॥

राक्षसों के सन्मुख पड़कर रीछ और बंदर इस प्रकार भाग रहे हैं जिस प्रकार हवा के आगे रूई का पर्वत चलता है। बदर हर्षित होकर हाथ से गुर्ज नामक शस्त्र द्वारा शत्रुओं के मस्तक पर इस प्रकार चला रहे हैं मानों वज्र से पर्वतों के टुकड़े गिर रहे हों ॥ ६ ॥

जिस तरह से नट का लड़का कूद कर आकाश को छूता है, उसी प्रकार दोनों सेनाओं की ओर से शस्त्रों के झटके चल रहे हैं। शरीर के बड़े बड़े टुकड़े होकर इस प्रकार गिरते हैं मानों जगन्नाथजी के अटके के दो टुकड़े हो रहे हैं ॥ ७ ॥

योद्धाओं की क्रोधाग्नि के धूम से पृथ्वी में यज्ञ हो रहा है। राम-चन्द्र के योद्धा दुष्टो के आडे आ रहे हैं। हाथियों के मस्तक शस्त्रों की

मार से आकाश में इस प्रकार उड़ रहे हैं मानो सूर्य मंडल को भेद कर चीलें उड़ रही हों ॥ ८ ॥

रामचन्द्र के हाथ से युद्ध में बाण खूब चल रहे हैं। (उनकी मार से) शरीर फूट कर रुधिर बहता है। (वह ऐसा मालूम होता है) मानों हिमालय पर्वत से झड़ कर गंगा की धार बड़े वेग से बह रही हो अथवा सरस्वती हजार धारा के रूप में बह रही हो ॥ ९ ॥

युद्ध में अगणित योद्धा सो रहे हैं और अन्य योद्धागण युद्ध भूमि छोड़ कर भाग गये हैं। दस मस्तक धारण करनेवाले (रावण) ने मन में निश्चय कर लिया है कि मेरी मृत्यु रामचन्द्र के हाथ आ गई है ॥ १० ॥

द्वितिय युद्ध

दोहा

सरप पास रावण सुतण, जट बांधे कप झुंड।
गुरड़ छुड़ाये गुरड़ भ्रम, भागै काक भूसंड ॥ १२ ॥

भावार्थ—रावण के पुत्र मेघनाद ने कपियों के झुंड को नाग पाश से शीघ्र बाँध लिया। गरुड़ उन्हें जिस समय छुड़ाने लगा तब उसे भ्रम हुआ कि क्या यह रामावतार हैं जिनके नागपाश बंधन को मैं दूर करता हूँ ? तब काकभुसुंड ऋषि ने उसका भ्रम दूर कर दिया।

गीत जात अरध सावझडो

बरतारो छंद कुकभा

सुध मोहरा चारूँ सावझड़ै, जप चारूँ सम जोपै।
मोहरा दुय दुय मेल मिलावै, अरध सावझड़ ओपै ॥ १३ ॥

भावार्थ—सुद्ध सावझड़े गीत के चारो चरणो के समान ही इस गीत के भी चारों चरण कहो। किन्तु आर्ध सावझड़े गीत में दो दो चरणों के तुकांत मिलाओ।

उदाहरण

दनुज आवियो वले खटकै हियैं दोयणां,
लाल मुख दसूं भटकै अगन लोयणां।
राम सामो धसै येमरिण रोपनै,
लहरनिध छले जांणे हदां लोपनै ॥ १ ॥
महोदर वजर मुसटंडु दाहैं मसत,
दुरीमुख धूंमनर धूंम वामी दसत।
तुंग-तन अकंपन देख वडतोलरा,
दस वदन मुसाहिव किया चंदोलरा ॥ २ ॥
चंड वल जीत वासव प्रसत चोजमें,
जोध मकराक्ष औ हरोली फौज में।
सश्र असि त्रांण पैराक वप साजिया,
गयण छिवता माहा भयानक गाजिया ॥ ३ ॥
हेर इम भंडा रघुवीर राहां किया,
छेल छूटा नवां जांण रस छाकिया।
जोरवर जूटिया हगांमी जंगरा,
उभै ओडां वडै वरंगा अंगरा ॥ ४ ॥
चले रत खाल रणताल इद माचियो,
खैंग किरणांर देखण समर खांचियो।
घोर घमसांण कर दूठ कपघाण में,
प्रसत कितरा अवर माडे पीठांण में ॥ ५ ॥

घण सबद सुणे असुराण दल घाबियो,

आखतो धसल अर चूरतो आवियो ।

ओलखे लखण नै वभीषण अगाड़ी,

लंघ दल प्रबल बरछी असुर लगाडी ॥ ६ ॥

पडे गणणाय मुरझाय इल ऊपरै,

पूर मंगल हुवां राषसां रूपरै ।

समर जीते हुवो दनुज अणसंक में,

लंकपत गयो पडतां निसा लंक में ॥७॥१४॥

शब्दार्थ—दोयणा=शत्रुओं के। अगन=अग्नि। लोयणां=लोचनों मे। समो=सन्मुख। लहरनिध=समुद्र। महोदर, वजर, मुसटंडु=राक्षसों के नाम। दाहैं=दक्षिण की ओर। मसत=मस्त। दुरीमुख, धूंमनर, और धूंम=राक्षसों के नाम। वामी=बायें तरफ, वाम भाग की ओर। दसत=दस्त, हाथ। तुंगतन, अकंपन=राक्षसों के नाम। बड़तोलरा=बड़े इज्जतदार। चंदोलरा=सेना के पीछे रहनेवाले। प्रसत=प्रकट में। चौज में=अल्प श्रम में। जोध और मकराक्ष=राक्षसों के नाम। हरोली=सेना का अग्रिम भाग। सश्र=शस्त्र। त्रांण=ढाल। पैराक=प्रवीण। गयण=आकाश। छिबता=स्पर्श करते हुए। जूटिया=भिड़ गये। रतखाल=रुधिर के नाले। रणताल=संग्रामरूपी तालाब। खैंग=घोड़े। किरणांर=सूर्य। घमसांण=युद्ध। दूठ=जबरदस्त। कपघांण=बंदरों का समूह। पीठाण=युद्ध। घाबियो=घायल हुये। धसल=हल्ला करके। ओलखे=पहिचानकर। गणणाय=चक्कर खाकर। इल=पृथ्वी।

भावार्थ—राक्षस (रावण) को आया हुआ देख कर शत्रुओं के हृदय में खटका पैदा हो गया। उसके दशों मुख लाल हो रहे हैं और नेत्रों से अग्नि निकल रही है। वह रामचंद्र के सन्मुख युद्ध स्थापित करके इस प्रकार आया मानो समुद्र ने अपनी मर्यादा छोड़ी हो ॥ १ ॥

रावण ने महोदर, वज्र, मुसटंद नामक राक्षसों को दाहिनी ओर, दरीमुख धूमनर और धूम का बायें ओर और तुंगतन और अकंपन को इज्जतदार समझ कर सेना के पीछे रखा ॥ २ ॥

प्रचंड बल से इंद्र को अल्प श्रम से जीतनेवाले (मेघनाद) को, जोध और मक नामक राक्षस को सेना के अग्रिम भाग में रखा। ये चतुर राक्षसगण शस्त्र, तलवार और ढाल में अपने शरीर को सजा कर और आकाश का स्पर्श करते हुए भयंकर गर्जना करते थे ॥ ३ ॥

इन्हें देख कर रामचंद्र के योद्धा भी इस प्रकार आगे बढ़े मानो कोई रसिक नवों रस में मस्त हुआ हो। वे बलवान और युद्ध में मस्त आपस में भिड़ गये। अब दोनों ओर से शरीरों के टुकड़े हो कर उड़ने लगे ॥ ४ ॥

युद्ध रूपी तालाब से रुधिर के नाले बहने लगे। ऐसे युद्ध को देखने के लिये सूर्य ने अपने घोड़ों को रोक लिया। जबरदस्त बदरों के समूह में घोर युद्ध हो रहा है। प्रकट में कितने ही युद्ध में गिर गये हैं॥५॥

मेघनाद ने यह घोर शब्द सुना—'असुर (राक्षस) गण बहुत घायल हो गये हैं'। तब वह हल्ला करता हुआ और शत्रुओं को चूरता हुआ आगे आया। वहाँ आकर उसने लक्ष्मण और विभीषण को आगे खड़े हुए देखा। यह देख कर और सेना को उलांघ कर उसने लक्ष्मण के बरछी मार दी ॥ ६ ॥

बरछी के लगते ही लक्ष्मण चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर गये। यह देख कर राक्षसों ने बहुत ही हर्ष मनाया। इस प्रकार मेघनाद युद्ध जीत कर निःशंक हो गया और रात्रि होते ही रावण लंका में चला गया।

गीत जात जांगड़ो सैणोर

कुकभा छंद

गीत अरटियो अनै जांगडो दोन्यूं सम वड दीसै।
मोहरा विषम षोडस सम बारह सारा रूप सरीसै ॥

अंतर इतो नगांण अरटियै लेस न कठै लखावै।
जपै मंछ इण गीत जांगड़े अवस नगण गण आवै॥ १५॥

भावार्थ—अरटिया गीत और जांगडा गीत दोनों ही एक से होते हैं। दोनों के ही विषम चरणों में १६ और सम चरणों में १२ मात्राएँ सब बराबर होती हैं। मंछ कवि कहता है कि अंतर केवल यही है कि अरटिये गीत में नगण नहीं होता और इसमें नगण अवश्य आता है।

नोट—इस गीत को अरटी, पुणि साणोर और छोटा कूणिया भी कहते हैं।

उदाहरण

श्री रघुनाथजी रो विलाप नै लिछमणजीनूं मूर्छा

पड़ियो मुरझाय सेस इल ऊपर सकत राण सुत सांझी।
थरके भाल वन चरां थाणा, मुख कुमलाणां मांझी॥ १॥
नैण झरे हरि बदन निहारे, अंक भरे निज अंगा।
बोले सिथल कहरे बंधव, ऊठो लपण अभंगा॥ २॥
सीता वरी जनक पण सांचव, सुपह किया अपसोसै।
छोता खलां उतोले छोलां, भ्राता तूझ भरोसे॥ ३॥
बनता हरण बलै बनवासो, लंका वणो लड़ाई।
सज इणावार छोड़ धर सूतो, भलो नचीतो भाई॥ ४॥
वकै वयण लंकेस बिभीषण, म्हे तो भुजबल मिंता।
वाणी व्रिथा हुवै रे बीरा, चित अधकाणी चिन्ता॥ ५॥
कपि कुल विपन रीछ गिर किन्नर, सुर गुर सरग समावै।
रावण अनुज सहोदर राजिद, जिको कवण घर जावै॥ ६॥

१—पाठा–चित्या खला उझोले।

निरखैं मिलैं झुरैं रघुनायक, सुण सुण वायक सारा ।
जोधा अमर बिया जड़ जंगम, व्याकुल हुआ विचारा ॥ ७ ॥ १६॥

शब्दार्थ—राणसुत = रावण का पुत्र, मेघनाद । थाणां = समूह । मांझी = मुख्य । सांचव = सत्यकी । सुपह = राजा । अपसोसै = चिंतायुक्त । छाता = समूह । उतोले = तितर बितर करना । छोलां = खेल । नचीतो = निश्चित । वकै = कहै । व्रिथा = व्यर्थ ।

भावार्थ—जब मेघनाद ने लक्ष्मण के ऊपर शक्ति का प्रयोग किया, तब वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये । यह देख कर बंदरों के और रीछों के समूह में जो मुख्य मुख्य लोग थे, उनके मुख कुम्हला गये ॥१॥

रामचन्द्र के नेत्रों से आँसू बह रहे हैं । वे लक्ष्मण के मुख की ओर देखते हैं और उसे अपनी गोद में लेकर हृदय से लगाते हैं । और अधीर होकर कहते हैं—अरे भाई ! लक्ष्मण उठो ॥ २ ॥

सीता से विवाह किया, जनक राजा के प्रण को सत्य कर राजाओं को चिंतायुक्त किया और शत्रुओं के समूह को खेल से तितर-बितर किया । हे भाई ! ये सब तेरे ही भरोसे पर किया था ॥ ३ ॥

वनवास हुआ, स्त्री हर ली गई और लंका में युद्ध स्थापित हो गया है । अरे भाई ! ऐसे समय तू छोड़ कर पृथ्वी के ऊपर निश्चित सो रहा है ॥ ४ ॥

हे मित्र । हमने तो तेरी ही भुजाओं के बल पर विभीषण को "लंकेश" कहा था । अरे भाई ! वह वचन अब व्यर्थ हुआ जा रहा है, इसकी बहुत ही चिंता है ॥ ५ ॥

अरे भाई ! बंदर तो वन में, रीछ पर्वतों की गुफा में और देवगण स्वर्ग में चले जायँगे । किन्तु यह रावण का भाई (विभीषण) किस के घर जायगा ॥ ६ ॥

रामचन्द्र कभी तो लक्ष्मण को देखते हैं, कभी उसे गले लगाते हैं

और कभी रोते हैं। उनके बचन सुन सुन कर सम्पूर्ण योद्धा, देवता और अन्य जड़ जंगम प्राणी बड़े दुखी हो रहे है ॥ ७ ॥

गीत खुडद् साणोर

जत सोलें मत विषम जांगडे समपद कळा तेरहै सोर।
जुग लघु अंत अठारह धुरम्भड सो कवि मंछ खुडद सैणोर ॥२॥१७॥

भावार्थ—जिस गीत में जांगड गीत के विषम पद में जैसे १६ मात्राएँ होती हैं, वैसे ही विषम चरणों में १६ मात्राओं पर यति होती है और सम पदों मे १३ मात्राएँ अंत में दो लघु सहित होती हैं, प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १८ मात्राएँ होती हैं, मछ कवि कहता है कि वह खुडद साणोर गीत होता है।

उदाहरण

लिषमणजीरो उपचार

व्याकुल लख सेस विभीषण बोले, कमलापतसूं जोर कर।
धनुषधरण धीरज उर धरजै, हिव कीजै उपचार हर ॥ १ ॥
वैद पतूसतूंसू लंका वस, सो आवै धारक सुरत।
जिको बतावै जड़ी संजीवन तो लिखमण ऊठै तुरत ॥ २ ॥
लायो जाय रोगहर लांगो, पिलंग सह तो सुण प्रबल।
देखे जाग रीछ कपि दोला दुसह सझोला रामदल ॥ ३ ॥
दोऊ तरफ सकोचै दारुण, सोचै रह्यो विचार सथ।
छोडै अै नँह जड़ी छिपायां, हणे बतायां वीसहथ ॥ ४ ॥
नहच बभीख कह्यो नारायण, विण रवि ऊगा जाय वद।

१ पाठा—रहै।

अचल द्रोण मूली लैं आवै, जती जिवावै बाल जद ॥ ५ ॥
नग अलगो रजनी हद नैडी, आसी कद भडलैं उचत ।
सुणता वैद उचार सियापत, दिल विचार रहिया दुचित ॥ ६ ॥
देख दुचित राम कपि दाखै, थट नचीत रहज्यो सुथिर ।
जाऊँ वेग ओषधी जडसूँ गह ले आऊँ द्रोणगिर ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—उपचार=इलाज। पतूस तूस=नाम है। धारक सुरत=विद्यावत। रोगहर=वैद्य। लांगो=हनुमान। दोला=चारों ओर। दुसह=कठिन। सझोला=बहुत। नहच=निश्चय। ऊगां=उदित होना। द्रोणमूली=ओषधि का नाम। बाल=भाई। नग=पर्वत। अलगो=दूर। नैडी=नजदीक। कद=कब। दुचित=उदास। थट=समूह।

भावार्थ—लक्ष्मण को पड़ा हुआ और रामचन्द्र को व्याकुल देख कर विभीषण ने हाथ जोड़ कर कहा—हे धनुर्धारी (रामचंद्र), हृदय में धैर्य्य रखिये और अब इसका इलाज करिये ॥ १ ॥

लंका में पतूस तूस नामक एक वैद्य बड़ा इल्मदार है। यदि वह आकर संजीवनी जड़ी बतला दे तो तुरंत ही लक्ष्मण उठ सकते हैं ॥ २ ॥

यह सुनकर हनुमान उसे शय्या सहित वहाँ उठा लाया। उसने (वैद्य ने) जाग कर अपने चारों ओर रीछ, बंदर और रामचन्द्र की बहुत सी बलवान सेना देखी ॥ ३ ॥

उसने उभय सकट देख कर विचार किया कि जड़ी को गुप्त रखने में तो यह नहीं छोड़ेंगे और बतला देने से रावण मारेगा ॥ ४ ॥

तब वह बोला कि सूर्योदय से पहिले द्रोणाचल पर्वत से यदि कोई जड़ी ले आवे तो लक्ष्मण जी सकते हैं ॥ ५ ॥

और यह भी कहा कि वह पर्वत दूर है और रात्रि समाप्त होनेवाली है। वैद्य की यह बात सुन कर रामचन्द्र बड़ी दुश्चिंता में पड़ गये ॥ ६ ॥

रामचन्द्र को इस प्रकार उदास देखकर हनुमान ने कहा कि आप लोग सेना आदि से निश्चिंत रहे। मैं औषधि लेने जाता हूँ और शीघ्र ही द्रोणाचल को ले आता हूँ॥ ७॥

गीत वीरकंठ

वरतारो छंद चर्नाकुलक

अठ अठ वरण चरण द्वै आणो, जिण इक इक कल्ल रवि २ जाणो।
सांकल गुरु लघु अंत सजोजै, तेम वरण मात्रा पद तीजै॥
छ वरण नव कल चौथे छाजै, सुध मोरा दीरघ लघु राजै।
वले चार इम रच पद द्वालो, भाणव गीत वीरकंठ भालो॥ १९॥

शब्दार्थ—तैम = वैसे ही। भाणव = हे कवि।

भावार्थ—आठ आठ वर्ण के दो चरण लाओ; उनके एक एक पद में बारह बारह मात्राएँ समझो। उनके तुकांत में गुरु लघु सजाओ। इसी प्रकार तीसरे पद में भी मात्राएँ और वर्ण रखो। चौथे चरण में ६ वर्णों में ९ मात्राएँ रखो और तुकान्त में गुरु और लघु सजाओ। इसी प्रकार चार पद और बनाकर एक द्वाला बनाओ। हे कवि, उसे वीरकंठ गीत समझो।

उदाहरण

हनुमानजी रो द्रोणगिर गवण

करां जोड रूपकीस, साम पाय नाम सीस।
बाघ चाल महावीर, कूदियो किसीस॥
निसाचरां कालनेम, पतीलंक तणो पेम।
माग बीच बणे रह्यो, सद्ंभां मुनीस॥ १॥
सांच जाण रामसंत, जठै जाय रह्यो तंत।
हणु कह्यो तृषावंत, पामजै महंत॥

मुनी देख दरीमोय, तेहि मंज छांह तोय ।
जठै वनैचरां जाय, सोवजै इकंत ॥ २ ॥
ताम गयो होद तीर, वार पाँव धोत वीर ।
जठै मछी पांव झाल, बंणी रंभ रूप ॥
पूछो जास करे प्रीत, सापची कही सरीत ।
राण दूत एण धार, रख्यो रोस रूप ॥ ३ ॥
मारलीध एकमुष्ट, दूर राल दीध दुष्ट ।
हालियो समीर द्रोण, पवै जडी हेत ॥
भूस चाल दिसां भाल, महावणी दीपमाल ।
समूलो उठाय बह्यो, ओषधी समेत ॥ ४ ॥
जोध पांण दडीजेम, आंणियो गिरंद एम ।
उठे अहीराव जांण, नींद सूँ उलास ॥
जीवियो जती जवान, कथा राण सुनी कान ।
आसुरां लंकेस आद, तजी जीव आस ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रूप कीस=बंदरों का स्वरूप, हनुमान । बांधचाल= कमर कसके । किसीस=हनुमान । कालनेम=राक्षस का नाम । सदभा=कपट सहित । तंत=उस समय । हणू=हनुमान । पामजै= पिलाइये । दरी मोय=गुफा मे । ताम=उसमें । वार=वारि, जल । धोत=धोते समय । मछी=मछली । सापची=श्राप की । पवै=पवित्र । समूलो=सबका सब, अथवा जड सहित । बह्यो=चला । दडी=गेंद । अहीराव=शेष के अवतार, लक्ष्मण । उलास=आलसयुक्त ।

भावार्थ—हनुमान हाथ जोड़कर अपने स्वामी (रामचंद्र) को प्रणाम कर कमर बाँध के कूद गया । राक्षसों में से कालनेमि नामक राक्षस रावण के हित के लिये मार्ग मे कपट मुनि बनकर बैठ गया ॥१॥

(१) पाठ–रहे ।

हनुमान उसे रामचंद्र का भक्त समझ कर उसके पास वहाँ गये और कहा—"हे महत ! मैं प्यासा हूँ, जल पिलाइये।" उस मुनि ने हनुमान को गुफा दिखला दी। उसमें ठंढा जल था। फिर कहा—"हे बंदर, वहाँ जाकर एकांत में शयन करो" ॥ २ ॥

हनुमान वहाँ हौज के किनारे पर गये और जल से पाँव धोते समय वहाँ उनके पाँव को एक मछली ने पकड़ लिया जो फिर अप्सरा के रूप में हो गई। उससे प्रेम से पूछा (तू यहाँ इस रूप में कैसे है) तब उसने अपने आप की सब बातें कह दीं। और यह भी कहा कि यह मुनि रावण का दूत है। यह सुनकर हनुमान बहुत क्रुद्ध हुए ॥ ३ ॥

उस मुनि को एक ही मुष्टि-प्रहार से मार दिया और उस दुष्ट को दूर पटक कर द्रोणाचल पर्वत की ओर पवित्र जड़ी लेने को चले। पर्वत के चारों ओर देखा कि दीपमालिका बनी हुई है। उसे जड सहित ओषधि के साथ उठा कर चले ॥ ४ ॥

उस पर्वत को वह योद्धा (हनुमान) हाथ में गेंद के समान लेकर आये। लक्ष्मण निद्रा से अलसाते हुए उठे। रावण ने जब यह बात सुनी कि लक्ष्मण जी उठे हैं, तब उसने और राक्षसो ने अपने अपने जीवन की आशा छोड़ दी ॥ ५ ॥

गीत जात सवैयो

वरतारो चर्नाकुलक

उभै सगण पद पद चहु आवैं, पंचम पद षोडस कलपावैं।
पांचहि मोरा यों सुध पुणनैं गीत सवैयो तिणनूँ गुणजैं ॥२०॥

भावार्थ—जिसमें दो दो सगण के चार पद आते हैं और पाँचवाँ पद १६ मात्राओ का मिलता है और पाँचों पदों के तुकांत मिलाये जाते हैं, उसे सवैया गीत कहना चाहिए।

उदाहरण

कुंभकरण जगांवण

परहस्त[1] पटे, कर झूँभ कटे ।
भिद्वांग भटे, हदमांण हटे ।
रत कुंभ जगावण राण रटे ॥ १ ॥
पत वैण पगे, लख जोध लगे ।
वज जंत्र वगे, जद नींठ जगे ।
इतरी जिनसां किय आंण अगे ॥ २ ॥
सतमेष सदं, अज सैंस अदं ।
मिसटान मदं, अण अन्न हदं ।
जिणरंच कलेवो कीध जदं ॥ ३ ॥
रत्त राण ररे, अखियात अरे ।
निज कोस नरे, रिण रोप खरे ॥
कुल अंगज भ्रात सिंघार करे ॥ ४ ॥
मिल मंद मती, सिय लेर सती ।
वर मानवती, त्रियलोक पती ॥
तकसीर निवारें, होय तती ॥ ५ ॥
बुधवंत वहो, कथ सांच कहो ।
सुणलीध सहो, गृह पंथ गहो ।
रस खावो जावो सोय रहो ॥ ६ ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—परहस्त=प्रहस्त नामक राक्षस। पटे=पड़ा। हदमांण=गर्व की सीमा। भिदवाण=बाणों से भेद करके। भटे=योद्धा। पत=

---

(१) पाठा—परसत्र ।

पति, रावण । नीठ = कठिनता से । बजजंत्र = वाद्ययन्त्र, बाजे । वगे = बजने लगे । जिनसा = वस्तुएँ । म्हेष = भैंसें । सैंस = हजार । रल = उदास । ररे = कहा । अखियात = नजदीक । वती = बात । तकसीर = अपराध । तती = जल्दी से । वहो = बहुत । सहो = सर्व ।

भावार्थ—रावण कुम्भकर्ण को जगाने के लिए कह रहा है कि प्रहस्त युद्ध में बाणों से भिदकर कट गया है । अतः गर्व की मर्यादा हो चुकी है । अर्थात् गर्व चूर्ण हो गया है ॥ १ ॥

रावण के कहने से लाखों योद्धागण (कुंभकर्ण को जगाने के लिये) बाजे बजाने लगे । तब कहीं वह बड़ी कठिनता से जागा । (उसके जागते ही) ये वस्तुएँ उसके आगे कीं ॥ २ ॥

सौ भैंसें, हजार बकरे, मिठाई, शराब और बहुत सा अन्न । तब उसने थोड़ा सा कलेवा किया ॥ ३ ॥

रावण उदास होकर उसके पास जाकर कहने लगा कि हमारे और बदरों और मनुष्यों के बीच युद्ध छिड़ रहा है । उसमें उन लोगों ने हमारे पुत्रों और भाइयों को मार डाला है ॥ ४ ॥

(यह सुनकर कुंभकर्ण कहने लगा) अरे मंदबुद्धि ! सीता को ले जाकर उनसे मिल जा । यह मेरी श्रेष्ठ बात मान ले । वे त्रैलोक्य के स्वामी शीघ्र ही तेरे अपराध क्षमा कर देंगे ॥ ५ ॥

(रावण ने फिर कहा) हे बुद्धिमान् ! आपने बहुत सच्ची बात कही है । हमने सब सुन ली । आप तो घर जाइये और खूब खा पीकर सो जाइये ॥ ६ ॥

विशेष—इस गीत के तृतीय द्वाले. में विभावनालंकार है ।

गीत जात सपंखरो

वरतारो कुंडलिया

विषम चरात षोडस वरणा, पद सम चवदै पाठ ।
हुवैं दवालैं एक में, सारा आखर साठ ॥

सारा आखर साठ, आद तुक अंक अठारैं ।
मंछसु मोरा मेल, अंत गरु लघू उचरैं ॥
सगण भगण नन सवद सपंखरो मन हर सममें ।
नर गायां रघुनाथ वले नह पडत विषम में ॥२२॥

भावार्थ—इस गीत के विषम चरणों में १६ वर्ण और समपदों में १४ वर्ण होते हैं। इस तरह एक द्वाले में ६० वर्ण होते हैं। प्रथम द्वाले के प्रथम पद के १६ वर्ण होते हैं। मंछ कवि कहता है कि तुकांत में गुरु और लघु कहना चाहिए। इस सपंखरे गीत में सगण, भगण और नगण नहीं आते हैं। यदि मनुष्य इस गीत में रामचद्र के गुण गावे तो वह विपत्ति में नही पड़ सकता।

उदाहरण

कुंभकरण जुद्ध

अंगा ऊसंसे सवायो तायो सुणे वैण राणवाळा,
बडालां छोह में छायो चखां चोळ त्रन्न ।
कळेसां अघायो लेण रटक्कां सजोर काथैं,
कट्टकां रामरै माथे आयो कुंभक्रन्न ॥ १ ॥

अछेहो वदन्ना वाणी बोळतो पुळस्थ अंसी,
क्रोधाळ त्रसूळ तृसां तोलवो करूर ।
मिले मूंछ भूहारां डोल तो आका रीठ महां,
गरीठ दोयणां हिया छोल तो गरूर ॥ २ ॥

उमंगे रढ़ाला छूटे सोहड़ां काकुस्थवाळा,
अताळा सजूटे तेण सामूहां अडोल ।

हुवै चुरा पव्वै कीसा विछूटे ऊछल्ला हूत,
फूटै काच सीसा जांणे कुभांथला फील ॥ ३ ॥
लचे चीलहारांव सीस हजारूं ढालवा लागा,
दिगीस ठालवा लागा दिसावा बुम्भाल ।
लेवा मुंड सुरांगणां भूतेस चालवा लगा,
खचे रथां दिवेसां भालवा लागा ख्याल ॥ ४ ॥
गाढेराव वारंगा वरेवा उभै पाखां गिरै,
लाखा साखा मृगानै हरेवा खेध लाग ।
जिके कान रंध्रां हुवै नीसरै करेवा जंगा,
महा कूप हूतां ज्यूं परेवा गैण मांग ॥ ५ ॥
ऊभो हेर सुग्रीव नूं चोफेर बोहणी आडो,
मूठो जेर करले त्रकूट मांडे मांग ।
तिके वेर चाहीजैं विछुट्टे हवाई तेम,
गंध ग्राही श्रुतां लेर हालियो गैणांग ॥ ६ ॥
नुडे नासा कांना हीण आरांण रोपीयो मांझी,
अढंगो ओपियो के करंतो सत्रां अंत ।
प्रथम्भी ऊपरे जाणें लोपियो समंद पाजां,
किना प्रलै काजां महा कोपियो कृतंत ॥ ७ ॥
नरां अहो अंमरां उछंडे थंडे थाल नीर,
मही रसां तलां घोर थंडे आसमांण ।
महावीर देवांसाल विलोके रोस में मंडे,
पुले कपी भाल छंडे, पछाड़ी पीठांण ॥ ८ ॥
'येखे खलु आवतो संभाय चाप चंडपांणा,
माथो भुजा भमाये मयंक वाणां मोक ।

झूझ जाडो करै रामचन्द्रै सायकां झडे,
लंक आडो पड़े ज्यूं गिरंद लोका लोक ॥ ९ ॥

आचां जोडे हरषे निमाया सीस इंद्रादका,
वृन्दारका अमाया वरषे फूल वार ।
वसू आसुरेस आद सारा है हकार बोले,
जै जैकार बोले राघवेसरा जोधार ॥ १० ॥२३ ॥

शब्दार्थ—ऊसंसे=उठा । तायो=क्रोध । छोह=क्रोध । चोल ब्रन=रक्तवर्ण । कलेसां=क्लेश । अघायो=बहुत । रटकां=युद्ध । काथै=शीघ्रता से । कटकां=सेना । अछेहो=बहुत । पुलस्थ अंसी=कुंभकर्ण । तूर्सा=तिगुना । करूर=क्रूर । आकारीठ=बलवान । गरीठ=बदला लेनेवाला । गरूर=गर्व । वढ़ाला=क्रोधित । सोहडां=योद्धा । काकुस्थ वाला=रामचद्र के । अताला=शीघ्रता से । सजूटे=भिड गया । अडील=अडनेवाला । पव्वै=पहाड़ । उडल्ला=उड उड़ कर। फील=हाथी । चील्हारांव=शेषनाग । ढालवा लागा=हिलने लग गये । ठालवा लागा=खोंजने लगे । दुझाल=कंपित हो गई । भूतेस=शिव । ख्याल=खेल । गाढ़ेराव=शूर वीर । वारंगा=अप्सराये । वरेवर=वरमाला डालने के लिये । पाखां=पक्ष, तरफ । साखांमृग=वंदर । हरेवा=हराने के लिये । खेद लाग=क्रोध करके । परेवा=कबूतर । गैंणमांग=आकाश मार्ग । षोहणी=अक्षोहिणी सेना । मूठी जेरकर=मूँठी में पकड कर । मंडि मांग=मार्ग लिया, चला । वेर=समय । गंधग्राही=नासिका । गैणांग=आकाश मार्ग । मुडै=लौटना । आरांण=युद्ध । के=कितने ही । पाजां=मर्यादा । किनां=अथवा । कृतंत=यमराज । उछडे=कंपित हुआ । थडे=सामने । वोरथड=हाहाकार । पुले=भाग गये । भमाये=घुमाये, फिराये । मोक=चलाकर, छोड़कर । लोकालोक=पर्वत का नाम ।

आर्चा = हाथ। वृन्दारका = देवता। वार = न्यौछावर करके। हह-कार = हाहाकार।

भावार्थ—कुंभकर्ण रावण के वचन सुनकर अंग अंग में क्रोधित होता हुआ उठा। बड़े क्रोध मे छका हुआ और लाल नेत्र किये हुए बड़े क्लेश से युद्ध करने को रामचद्र की सेना के ऊपर शीघ्रता से आया॥ १॥

महा बलवान, क्रूर और बदला लेनेवाला कुंभकर्ण बहुत बकता हुआ, क्रोध से त्रिशूल को सँभालता हुआ, मूँछें भौंहों से मिलाता हुआ और शत्रुओं के हृदय के गर्व को नाश करता हुआ (रामचद्रकी सेना पर आया)॥ २॥

रामचंद्र के हठीले योद्धागण उत्साह से उसके सामने बढ़े और शीघ्रता से उससे युद्ध करने लगे। बंदरों से फैंके हुए पर्वत कुंभकर्ण के लगकर चूर चूर हो रहे हैं। मानो हाथी के कुंभस्थल पर लग कर कांच की शीशी फूट रही हो॥ ३॥

(भयंकर युद्ध होने से) शेष नाग के हजार मस्तक हिलने लग गये, दिग्पाल कंपित होकर दिशाओं को खोजने लगे और देवांगनाएँ और महादेव कटे हुए मस्तक लेने को चलने लगे और सूर्य अपने रथ को रोक कर यह खेल देखने लग गये॥ ४॥

शूरवीरों को वरमाला पहनाने के लिये अप्सराएँ दोनों ओर गिरने लगीं। कुंभकर्ण ने क्रोध करके लाखों बंदरों को हराने के लिए घेर लिया। वे बंदर युद्ध करने को उसके (कुंभकर्ण के) कानों के छेदों में होकर इस प्रकार निकल रहे हैं जिस प्रकार किसी बड़े भारी कूएँ से कबूतर आकाश को जा रहे हों॥ ५॥

कुंभकर्ण सुग्रीव को अक्षौहिणी सेना के आगे खड़ा हुआ देखकर उसे अपनी मुट्ठी में पकड़कर लंका की ओर जाने लगा। तब वह सुग्रीव उसकी नाक और कान काटकर हवाई छूटने की तरह छूटकर आकाश मार्ग में उड़ गया॥ ६॥

वह कुंभकर्ण नाक कान से हीन होकर वापस आ युद्ध करने लगा। वह वेढंगा (कुंभकर्ण) शत्रुओं को मारता हुआ ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वी पर समुद्र ने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो अथवा महाप्रलय करने को यमराज ने क्रोध किया हो ॥ ७ ॥

देवताओं के शत्रु कुंभकर्ण को क्रुद्ध देखकर मनुष्य, सर्प, देवता थाल के पानी की तरह कंपित हो गये। पृथ्वी पाताल में जाने लगी। आकाश में हाहाकार हो गया और युद्ध छोड़ छोड़कर रीछ और बंदर भाग गये ॥ ८ ॥

तब रामचंद्र ने उसे अपनी ओर आता देख अपने प्रचंड हाथों से धनुष चढ़ा चंद्रबाण चलाकर उसके मस्तक और हाथ उड़ाकर गिरा दिये। उसने भी रामचंद्र से खूब ही युद्ध किया। अंत में वह उनके बाण से लंका के आगे लोकालक पर्वत के समान गिर गया ॥ ९ ॥

इंद्रादि सम्पूर्ण देवतागण ने हर्षित हो हाथ जोड़कर रामचंद्र को प्रणाम किया और उन्होंने न्योछावर करके बहुत से पुष्पों की वर्षा की। पृथ्वी पर रावण आदि राक्षस हाहाकार करने लगे और रामचंद्र के योद्धागण जय जय शब्द बोलने लगे ॥ १० ॥

गीत जात सुवग

वरतारो चर्नाकुलक

कल चवदै इक तुकमें कीजै, चोपद द्वालो एक चवीजै।
चरणें चोकल अंत उचारैं, चोथे चरण वीपसा धारैं॥
सम मोहरा चारूं सरसावै, गीत मंछ सुवग इम गावै ॥२४॥

भावार्थ—मंछ कवि सुवग गीत इस प्रकार गाता है—एक पद में चौदह मात्राएँ कर ऐसे चार पद एक द्वाले में कहने चाहिएँ। प्रत्येक पद के अंत में एक चौकल (चार मात्राओं का शब्द) रखो और

चौथे चरण मे वीसा (एक शब्द दो दफा) रखो। चारों चरणों के तुकांत मिलाओ।

'उदाहरण'

लंगरी रिम सेन लाडो, गुमर धारक लाज गाडो।
इल झडे कुंभेण आडो, झूझ जाडो झूझ जाडो ॥१॥
सुणे वायक तजे संगा, जांण जै रघुबीर जंगा।
पड लुडैं रावण पिलंगा, अजक अंगा अजक अंगा ॥२॥
इंद्रजीत सुजाव आयो, तोलतो तस आभ तायो।
भडां पित चै मना भायो, छोह छायो छोह छायो ॥३॥
भ्रात थारो कटे भारो, सोकि हुवैं धरा सारो।
करूं विग्रह हिव करारो, धीर धारो धीर धारो ॥४॥
वाण सुण त्रंबाल वावत, तांण मूंछा क्रोधतावत।
गहर सुतचा विरद गावत, रंग रावत रंग रावत ॥५॥२५॥

शब्दार्थ—लंगरी = शूरवीर। रिम = शत्रु। लाडो = दूलह, मुख्य पुरुष। गुमर = गर्व। झूझ जाडो = भयंकर युद्ध करके। लुडैं = लोट रहे है। अजक = तड़फडाना। सुजाव = पुत्र। तस = हाथ। आभ = आकाश। तायो = क्रुद्धित। सोकि = शोक, रंज। करारो = कठिन, भारी। त्रबाल = नक्कारे। वावत = वजने लगे। क्रोधतावत = क्रोध में तप्त हो।

भावार्थ—शूरवीर शत्रु सेना का मुख्य पुरुष घमंडी और लज्जावंत कुभकर्ण भयंकर युद्ध करके पृथ्वी पर गिर गया ॥ १ ॥

जिन जिन ने यह बात सुनी, वे सब रामचद्र की विजय समझकर युद्ध से भाग गये। और रावण तड़फड़ाता हुआ शय्या पर लोटने लगा ॥२॥

इसी समय में रावण का पुत्र क्रोधित इंद्रजीत आकाश को हाथों से

तोलता हुआ अर्थात् स्पर्श करता हुआ आया। वह क्रोध से मस्त योद्धा (इंद्रजीत) पिता के (रावण के) मन को बहुत अच्छा लगा ॥ ३ ॥

इंद्रजीत रावण से कहने लगा—आपका भाई मरा, सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसका शोक हो रहा है। आप धैर्य्य रखिये, अब मैं कठिन युद्ध करूँगा ॥ ४ ॥

यह बात सुनकर नक्कारे बजने लगे और रावण क्रोध से तप्त होता हुआ मूँछों को चढ़ाने लगा और हर्षित होकर पुत्र की बहुत प्रशंसा करने लगा ॥ ५ ॥

गीत जात अठतालो

वरतारो छंद चोपई

तुक कल चवद चवदरी तीन, लख चौथी तुक दशकल लीन।
जिणमें स्होरैं गुर लघुजाण, इम फिर चोतुक द्वालो आण॥
पिण अठ तुक इकसांकल पाठ, आद तणों तुक कल दस आठ।
यों अठतालो गीत उचारैं, कहैं मंछ प्रभु गुण इधकारै॥२६॥

भावार्थ—तीन चरण चौदह २ मात्राओं के और चोथा चरण १० मात्राओं का रखो, जिसके तुकांत में गुरु लघु जानो। इसी प्रकार चार चरण फिर करके एक द्वाला बनाओ। आठों चरणों के तुकांत मिलाओ अर्थात् चौथे और आठवें का और प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम, षष्ठ और सप्तम का तुकांत मिलाओ। प्रथम द्वाले के प्रथम पद की १८ मात्राएँ करो। मंछ कवि कहता है कि इस प्रकार अठताला गीत करके उसमें ईश्वर के गुणानुवाद करो।

उदाहरण

इंद्रजीत वध

काकैं कुंभवालैं वैंर काजा, सक्रजीत उभेल साजा।
कियण गो खल कुंभ[1] लाजा, जाग ताजा जोस॥

---

१ काजां

जाय जोगण वंद जाजा, प्रजुण वन्ही करे प्राजा।
चहुण आवध होम वाजा, रूपि[२] दराजा रोस॥ १ ॥
भगत राकस भेद भाले, चक्रधरवां वयण चाले।
दनुज सुत देवां दवाले, जँग संभाले जोध॥
जेण रथ धज अयन जाले, नीसरयां अणद्रष्ट न्हाले।
पहल पांणी वंध पाले, विमल ठाले बोध॥ २॥
घखे संभल धनुप धारण, मेलियो अहिराव मारण।
क्रोध साथे घणों[३] कारण, धरम धारण धीर॥
हणु अंगद खल प्रहारण, भालपत नल नील भारण।
आद भेदग दस अधारण, बड़ा डारण वीर॥ ३॥
वाजिया रोसैल वंका, धमे आवध धार धंका।
असतरां भेदे असंका, भिडे लंका भूर॥
झींक अंगा हुवे झंका, प्रथी माचे रुधर पंका।
कहर धापे ग्रीध्र कंकां[४], प्रवल संका पूर॥ ४॥
जंग जूटां रोष जागां, लषण घणनद खेद लागां।
प्रचंड वीरारसां पागां, वडा रागां बांण॥
खुले पोंलां भिम्त खागां, नमे मसतक राव नागां।
महर थंभे गयण मागां, तुरी वागां ताण॥ ५॥
पिड पोरस अप्रमाणां, पेख प्राक्रम असुर पाणां।
मुडण लागा छोड माणां, दुसह दाणां दीस॥
सुमंत्रातण क्रोध साणां, तसां कोडंड करण ताणां।
उडाले दिस आसमांणां, सोम वाणां सीस॥ ६॥

---

२ पाठांतर=कपदराजा। ३ घसे भी पाठ है। ४ कंपा भी पाठ है।

राण जळ तट सांझ ररतां, कमल करगा त्रिपण करतां।
झटके पडियो रुधर झरतां, पेख अरता पांण ॥
धाम गो द्रिग नीर ढरतां, जीव आसां तजी जरतां।
मेघनाद सुजाव मरतां, हुई चिरतां, हांण ॥ ७ ॥ २७॥

शब्दार्थ—उझेल=विस्तार से। कियण=करने के लिये। गो=गया। जाजा=बहुत। प्रजुण=प्रज्वलित। प्राजा=पराजय। वहण=वाहन, सवारी। आवध=आयुध, शस्त्र। होम वाजा=घोड़ों का हवन किया। रुपि दराजा=क्रोध में स्थिर होना। भगतराकस=विभीषण। चक्रधरवां=रामचंद्र से। दवाले=देवालय। धज=ध्वजा। न्हाले=देखना। पहल=पहले। पाले=बांध। धखे=क्रोधित हुए। भेदग=भेद जाननेवाले। दस अधारण=दस प्रकार के भेद। रोसैल=क्रोध-युक्त। धमे=चलाये। धंका=हल्ला करके। भूर=वहुत, श्रेष्ठ। झींक=शस्त्र की मार। झंका=कटे। कहर=वहुत। कंका=गिद्ध की स्त्री। खेद लागा=घेरकर अथवा क्रोधकर। वढ़ा रागां=सिंधु राग। वांण=वोले। पोलां=द्वार। भिस्त=वहिश्त, स्वर्ग। खागा=खड्ग। राव-नागां=शेष नाग। महर=सूर्य। तुरी=घोड़े। पींड=शरीर। मुडण-लागा=भागने लगे। दाणां=दानव, राक्षस। सांझ ररतां=संध्या करते समय। करगा=हाथ। त्रिपण=तर्पण। अरता=अड़ता हुआ। सुजाव=पुत्र।

भावार्थ—काका कुंभकर्ण का वैर लेने के लिए इंद्रजीत ने अपने शस्त्रों से परिपूर्ण सज कर नवीन जोश के साथ जाकर कुमिला देवी को अनेक प्रकार से प्रणाम किया। रामचंद्र पर क्रोध करते हुए शत्रु के पराजय के लिये अग्नि जलाई और उसमें रथ, घोड़े और शस्त्र का हवन करने लगा ॥ १ ॥

---

१ वरतां भी पाठ है।

विभीषण ने जब यह भेद देखा तब रामचन्द्र से कहा कि राक्षस का पुत्र (इद्रजीत) देवी के देवालय पर गया है और वहां जाकर वह युद्ध-यज्ञ करता है। उसके रथ की ध्वजा अग्नि में जल गई है। यदि वह वापस निकल आवेगी तो अनर्थ हो जायगा। अतः विभीषण ने बहुत अच्छी तरह समझाया कि जल जाने से प्रथम ही बंध बांध लो ॥ २ ॥

यह बात सुनकर धनुर्धारी (रामचन्द्र) बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने इद्रजीत को मारने के लिए लक्ष्मण को भेजा और उसके साथ में युद्ध करने के लिए धर्म को धारण करनेवाले वीर हनुमान दुष्टों के मारने-वाले अगद, जामवत, नल, नील आदि वीर, जो दशों भेदों को जाननेवाले और बड़े-बड़े वीरों को पटकनेवाले थे, लका के श्रेष्ठ वीर से भिड़ कर क्रोधित हो लड़ने लगे ॥ ३ ॥

और हल्ला करके शस्त्रों को चलाने लगे। शस्त्रों को निशंक होकर भेदने लगे। शस्त्रों की मार से शरीर कट रहे हैं, पृथ्वी पर रुधिर से कीचड़ हो गया है, गिद्ध और गिद्धनियाँ खूब तृप्त हो गई हैं और राक्षस (इद्रजीत) भयभीत हो गया है ॥ ४ ॥

लक्ष्मण और मेघनाद क्रोधित होकर युद्ध करने लगे। वे दोनों प्रचंड वीर युद्ध में मस्त हो रहे हैं। सिंधुराग के बाजे बज रहे हैं। खड्गो से स्वर्ग के द्वार खुल गये है, शेषनाग के मस्तक झुक गये हैं। और सूर्य आकाश मार्ग में ,अपने घोड़ों की लगाम खींच कर ठहर गये हैं॥५॥

राक्षस (इंद्रजीत) के शरीर का अपार बल और हाथों का परा-क्रम देख कर वीरगण अभिमान छोड़ कर युद्ध से भागने लग गये। दानव (इंद्रजीत) का यह दुःसाहस देख कर लक्ष्मण ने क्रोध से बाण चढ़ा चद्र बाण से उसके मस्तक को आकाश में उड़ा दिया॥ ६ ॥

जिस समय रावण जल के किनारे संध्या कर रहा था, उस समय तर्पण करते हुए उसके कमलरूपी हाथों में इंद्रजीत का रक्त टपकता हुआ मस्तक आकर पड़ा। हाथ में उसे (मस्तक को) अड़ता हुआ

देख रावण रोता हुआ घर गया। हृदय में जलते हुए रावण ने अपने जीवन की आशा छोड़ दी। पुत्र मेघनाद के मरने से उसकी बहुत ही हानि हुई ॥ ७ ॥

गीत त्राटको

वरतारो छंद चर्नाकुलक

सोल सोल कल त्रिय पद साजै, सुघ इक सांकल रीत समाजै।
भण चौथे म्होरें इण भंता, एकादश कल गुर लघु अंता ॥
वेले[1] चार तुक एम वखाणों, आठ तुकां द्वालो इक आणों।
धुर पद कला अठारैं धरजै, कवि त्राटको गीत सुकरजै ॥ २८ ॥

भावार्थ—तीन चरणों में सोलह सोलह मात्राएँ सजाओ और तीन की एक सांकल करो अर्थात् तीनों के तुकांत मिलाओ। चौथे चरण में इस प्रकार मात्राएँ रखो कि ११ मात्राओं के अंत में गुरु लघु आवे। इस प्रकार चार चरण और करके आठ चरणों का एक द्वाला बनाओ। प्रथम द्वाले के प्रथम पद में १८ मात्राएँ रखो। हे कवि लोगों! इस प्रकार त्राटका गीत रचना चाहिए।

उदाहरण

रावण क्रोध मंदोदरी शिख्या

रद चंपै होठ डसे रढ़ रावण, अंग खड़ा रोमंच अभावण।
सोक सुजाव प्रनालां सांवण, नीर झरै जिम नैंण ॥
नाखे बारंबार निसासा, हत्था तेग गही चंद्र हासा।
कीधो दारुण कोप प्रकासा, दोट सिया सिर दैंण ॥ १ ॥

---

१. पाठांतर = वड़े चार तुक एम वखाणों।

हाले वाग दिसां कुल हाणी, जाजुल वात मंदोदरि जाणी ।
वाटां रोक वके मुख वाणी, सांभल नाह सभीत ॥
पोरसतो प्रथमी लखपायो, एण करां कइलास उठायो ।
धूपट तीनूं लोक धुजायो, जैत करी जम जीत ॥ २ ॥

सो इलरी भेली कर सारी, धूक सीया पर रीसा धारी ।
बुद्ध जिका तैं वीस विचारी, मूंज तणी पिण मांन ॥
अंगज वैर सबंधो आवै, राम लखम्मण मारर लावै ।
कंत कदे नँह नाम कहावै, वाम हण्यां बलवान ॥ ३ ॥

पीतम ! तूज किते परचायो, भ्रात कह्यो तद मार भगायो ।
मांडे राड कुटुंब मरायो, आप तणां गुण एह ॥
मोटा वाली धीरज मोटी, खांवद ! कीध इती तैं खोटी ।
पैली अंगद कीध परोटी, ताण पछै किय तेह ॥ ४ ॥

आहिज नेक सलां अण चूका, रेवंत जेल वजाडे रूका ।
भांजे भाल करे कप भूका, मूक मती हिव मांण ॥
जीतां आहव कीत जगावै, मुवां धारां मुकत मिलावैं ।
दोहूं बात तणै बडदावैं, आण वण्यो अवसांण ॥५॥२९॥

शब्दार्थ—चंपैं = दाबना । रढ़ = क्रोध करके । अभावण = जो अच्छे नहीं लगे, बुरे । प्रनाला = परनाले । नाखे = डालना । निसासा = सर्द आह । दोट = डोरा । बाटां = मार्ग । धूपट = पूर्ण रूप से । जैतकरी = विजय प्राप्त की । रीसां = क्रोध । अंगज = पुत्र । बांधा = भाई । परचायो = समझाना । पैली = पहले । परोटी = समझाना । तेह = क्रोध । आहिज = यही । सला = सलाह । भेली = एकत्र करके । रेवत = घोड़े । जेल = दौड़ा कर ले जाना । वजाडे = बजा कर । रूका = तरवार । भांजे = नाश कर के । मूक = छोड़ना । आहव = युद्ध ।

भावार्थ—रावण क्रोध से दाँत पीस रहा है और होठों को काट रहा है। उसके अंगों में रोमांच हो रहा है। पुत्र-शोक से उसके नेत्रों में से श्रावण के परनालों की तरह जल गिर रहा है। वह बारंबार ठंढी साँस ले रहा है। रावण ने क्रोध करके अपने हाथ में चन्द्र-हास नामक खड्ग लिया और वह उसे सीता के मस्तक पर चलाने के लिये दौड़ा ॥ १ ॥

वह कुल-नाशक अशोक वाटिका की ओर गया। जब यह जाज्वल्य बात रानी मंदोदरी ने जानी तब वह मार्ग रोक कर कहने लगी—हे भयभीत स्वामी! सुनो, आपका पुरुषार्थ सम्पूर्ण पृथ्वी जानती है। इन्हीं हाथों से आपने कैलाश पर्वत को उठाया था और यमराज को जीत कर तीनों लोकों को खूब कंपित किया था ॥ २ ॥

इतनी विजय एकत्र करके सीता के ऊपर क्रोध करते हो। धिक्कार है आपको! यह आपने क्या बात सोची है। अब मेरी बात मानो। पुत्र और भाई का वैर तब चुकेगा जब आप राम और लक्ष्मण को मार कर लावेंगे। हे स्वामी, स्त्री को मारने से बलवानों में यश नहीं होगा ॥ ३ ॥

हे प्रियतम! पहले आपको कितना समझाया था। जब भाई ने कहा था, तब तो उसे मारकर भगा दिया और युद्ध करके सम्पूर्ण कुटुम्ब को मरवा दिया। आपके तो यह गुण हैं! देखो बड़े आदमियों का तो धैर्य भी बड़ा ही होता है। हे स्वामी! आपने तब भी बड़ा खोटा काम किया जब अंगद ने आपको समझाया था। उन्होंने (राम-चन्द्र ने) तो जब यह बात तन गई, तब क्रोध किया है ॥ ४ ॥

अब तो यह श्रेष्ठ सम्मति मत चूको। घोड़ों को दौड़ाकर खड्ग चलाओ। रीछों को नाश करनेवाले और बंदरों के भूखे राक्षसों के मान को अब मत छोड़ो। यदि युद्ध में विजय प्राप्त करोगे तो यश फैलेगा और तलवार की धार से, मर जाओगे तो मुक्ति प्राप्त होगी। देखो, अब नौका आ गया है, दोनों ही बातों के दाव हैं ॥ ५ ॥

गीत जात लहचाल

वरतारो छंद चौबोला

पहिलै विसराम कलां दस पूरैं फिर अठ मिल तुक बिषम फवैं।
सम तुक आठ रगण मोरा सझ, सिर जिखणारे जोकर सवैं॥
रच इण मांहि मनोहर रचनां गुणी गीत लहचाल गुणैं।
चरणें तिण मांहि ज्यानकी वल्लभ, प्राणी वे धिन मंछ पुणैं॥ ३०॥

भावार्थ—विषम चरणों मे दस मात्राओ और आठ मात्राओं पर विश्राम होता है। सम चरणों मे आठ मात्राऍ रखकर एक रगण के (ऽ।ऽ) बाद "जी" शब्द होता है। इसके अंदर सुंदर रचना करो। गुणवान् मनुष्य इसे लहचाल गीत कहते हैं। मंछ कवि कहता है कि वे पुरुष धन्य हैं जो इसमें रामचन्द्र का वर्णन करते है।

उदाहरण

रावण गूढ़ होम विधान

सुत भ्रात कटे सक धीट बधे धक,
बीस भुजाण विचारियो जी।
निरवीजां वानर नेम गमुन्नर,
धेख इसौं मन धारियो जी॥ १॥
साजे द्रढ़ आसण इष्ट अराधण,
पैठो जाय पताल में जी।
दिल पंच इंद्री दम धोम सखी,
धम झोखे आहुत भ्माल में जी॥ २॥
घुल धूंम छिले घण भाल विभीषण,
राघव हूँत उचारियों जी।

दस कंठ करै सद होम हुवां हद,
मंद मरै नह मारियो जी ॥ ३ ॥
सुण बाल तणों सुत मेले मारुत,
लोप घसे गढ लंक में जी ।
पेखे मख प्रारंभ खोय अडीखंभ,
कीध सामग्री पंक में जी ॥ ४ ॥
सिर लातां सव्बल थाप मुखांथल,
ध्यान तोही दसकंधरैं जी ।
महजाय मंदोदर केस गहे कर,
आंणी आगल अंधरैं जी ॥ ५ ॥
वामाकिय वाहर वेष कनै वर,
इज्जत जावै आजनूं जी ।
सुत मीत सहोदर हांणकरी हर,
कंथ जिया किण काजनूं जी ॥ ६ ॥
ऊठे सुण आतुर धाख धरैं धर,
रोप बधे असुरेसनूं जी ।
कूदे कर चाला वीर वडाला,
आय नमें अवधेसनूं जी ॥ ७ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—सक = सब । धीट = धृष्ट । धक = ताप । नेम=प्रतिज्ञा । गमुन्नर = खो दूंगा । घेख = द्वेष । पैठो = घुसा, गया । धोम = धूम । सिखी = अग्नि । धम = प्रज्वलित करके । झोखे = देना । झाल=ज्वाला । घुलधूंम = धुंम बढ़ करके । छिले = आच्छादित हो गया । मेले = भेजे । लोप = उल्लंघन करना । मख = यज्ञ । खोय = प्रकृति से । अडीखंभ = अचल । थाप = थप्पड़ । वेष = देख । धाख = तप्त होता हुआ ।

भावार्थ—उस धृष्ट रावण के पुत्र और भाई सब कट गये। तब हृदय में तप्त होते हुए उसने विचारा और उसके हृदय में यह द्वेष हुआ कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बंदरों को निर्बीज कर दूँगा॥ १॥

वह अपने इष्टदेव का स्मरण करने के लिए पाताल में जाकर बैठ गया। वह पाँचो इंद्रियो और मन को बस में करके और अग्नि को प्रज्वलित करके उसकी ज्वाला में आहुति देने लगा॥ २॥

उस धूँए को आकाश में छाया हुआ देख कर विभीषण रामचन्द्र से कहने लगा कि रावण तत्काल फलदायक हवन कर रहा है। उसके पूर्ण होने पर वह मारने से भी नहीं मरेगा॥ ३॥

यह बात सुनकर रामचन्द्र ने अंगद और हनुमान को यज्ञ भ्रष्ट करने के लिये भेजा। वे कोट को उलाघ कर लका वाढ़ में चले गये। उन्होंने यज्ञ को और अचल बैठे हुए रावण को देख कर यज्ञ की सामग्री कीचड़ में मिला दी॥ ४॥

बड़े जोर से उसके मस्तक पर लात और मुँह पर थप्पड़ दिया। फिर भी रावण अपने ध्यान से नहीं डिगा। रावण को डिगता हुआ नहीं देखकर वे अदर जाकर मंदोदरी के बाल पकड़ कर उसे रावण के आगे ले आये॥ ५॥

रावण ने मदोदरी को अपने पास पुकारते हुए देखा। वह कह रही थी कि आज आपकी इज्जत जाती है। पुत्र, मित्र और भाइयों को इन्होंने नष्ट कर दिया है। हे स्वामी! आप अब किसलिये जीवित हैं॥६॥

यह बात सुन कर रावण क्रोध से जलता हुआ और व्याकुल होता हुआ उठा। उसके उठने पर वे बड़े वीर अगद, हनुमान यज्ञ को नष्ट करके कूद गये और रामचन्द्र के पास आकर उन्होंने प्रणाम किया॥७॥

गीत जात पाडगत

वरतारो छंद चर्नाकुलक

विषम चरण उगणीस विचारैं, आणें सम पद कला अठारैं।

प्रथम चरण इकवीस पढ़ीजै, दीरघ लघु मोरा सज दीजै।
आगडदी आद शब्द पे आवै, गुणी पाडगत गीत गिणावै ॥३२॥

भावार्थ—जिसके विषय चरणों में १६ मात्राओं का विचार होता है और समपदों में १८ मात्राएँ रखी जाती हैं, प्रथम द्वाले के प्रथम पद की २१ मात्राएँ पढ़ी जाती हैं और तुकांत में गुरु लघु रखे जाते हैं। प्रथम शब्द के आगे 'आगडदी' शब्द आता है, उसे ही पंडित लोग पाडगत गीत कहते हैं। (शब्दों की प्रतिध्वनि बताने की युक्ति के शब्द हैं। भाषा में ऐसे शब्द कई कवियों ने लिखे हैं।)

'उदाहरण'

गंगागड्दि दुहुओडां दल गाजैं,
तागड्दि तबल बाजैं रिणातूर।
रागड्दि राम रावण जुध रोपे,
सागड्दि समाम अडे सजसूर ॥ १ ॥
भागड्दि भूत जोगण गण भैरव,
आगड्दि अमर अपछर गण आंण।
पागड्दि प्रबल परचर दुर पेखत,
वागड्दि व्योम सुर छया विमांण ॥ २ ॥
डागड्दि डुले कूरम अहि डंबर,
घाघड्दि घुले रवि रजड्ड घोर।
छागड्दि छोभ आवध हद छूटा,
जागड्दि जुलम जूटा जँगजोर ॥ ३ ॥
धागड्दि धमंक ओयण धहले धर,
दागड्दि दिसां दहले दिगपाल।

हागगड़दि हुवै आलम हैं कंपे,

कागड़दि कयामत जांण कराल[1] ॥ ४ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—गंगागडदी = हुकार शब्द का अनुकरण, हुंकार। तागडदी = तडतड शब्द। रागडदी = रण में जम कर युद्ध करना। सागडदी = जोड़ी। समाम = बराबर के। भागडदी = भागते हैं। आगडदी = आगे। अपछर = अप्सराएँ। पागडदी = पखवाड़े, एक पक्ष की तरफ। परचर = पलचर, मांसहारी। दुर = छिपकर। बागडदि = (बगना) चलना। डागददी = डगमगा कर। डंबर = आडंबर। घाघदडी = गहरी, गम्भीर। धुले = छा गई, आच्छादित हो गई। छागड़दी = मस्त होकर। छोभ = क्षोभ। आवध = आयुध, शस्त्र। जागडदी = जाग कर। धागडदी = जल्दी से चले। ओयण = पैर। धहले = कंपित हुए। धर = पृथ्वी। दागडदी = डगमगा कर। दहले = कंपित हुए। हागडदी = हाहाकार। कागडदी = कठोर।

भावार्थ—हुंकार शब्द करके दोनों ओर की सेना गर्जना कर रही है। तड़ तड़ शब्द से तबल और रिणतूर बज रहे हैं। आपस में एक दूसरे को छोड़ कर रामचन्द्र और रावण ने युद्ध स्थापित किया है जिसमें बराबर की जोड़ीवाले शूरवीर सज कर भिड़ गये।

भूत, योगिनियाँ, भैरव, देवता और अप्सराएँ भागकर आगे आईं। मांस खानेवाले पक्षी छिपकर अपने पसवाड़े की ओर देख रहे हैं। आकाश में देवताओं के विमान आच्छादित हो गये।

कच्छप और शेष डग-डग डिगने लगे। बहुत रज उड़ने से सूर्य गहरे रज में मिल गये। क्रोध से शस्त्र बहुत चले। बहुत जोर से वीरगण युद्ध में जुट गये। पैरों के धमकों से पृथ्वी हिलने लगी। डगमगा कर दिशाओं में दिगपाल कंपित होने लगे। संसार कराल कयामत जान कर हाहाकार कर कांपने लगा।

---

१ पाठां—कागडरी क्रात जाणे करणाल। क्रांत = तेज। जाणे = भया, मानो, करणाल = सूर्य।

गीत जात त्रकूट-वंध

वरतारो छप्पय

आद दवालो अरध गीत दोढैरो गुणजैं।
दे मोरा फिर दोय पाय दोढेरो पुणजैं॥
चवद कला धुर चरण विया कल बारै बारैं।
अठ इक सांकल अंत साज दुय दुय लघुसारैं॥
तुक बले दवा दस कलतणो, ठिक गुर लघु म्होरा सुठव।
कवि मंछ इधक अनुराग कर, त्रकूट वंध इम गीत तव॥३४॥

भावार्थ—आदि में दोढ़ा गीत के आधे पद कहो। इसके बाद उक्त पदों की तुक मिलाकर दो पद फिर दोढ़ा गीत के कहो। तत्पश्चात् प्रथम पद १४ मात्राओं का और बाकी के बारह मात्राओं के पद, उनके अंत में दो लघु रखकर आठ पद इस तरह बनाओ। फिर एक पद बारह मात्राओं का दो जिसके अंत में गुरु लघु रखकर (चौथे पद से) तुकान्त मिलाओ। मंछ कवि बड़े प्रेम से इस प्रकार त्रकूट वंध गीत कहता है।

रावण बध

दोहा

रांण चढ़े कस रोपरिण, येम धरे उर आव।
श्रग वरणा करणूं सुजस, है मरणों ही साव॥३५॥

शब्दार्थ—कस = कमर कसकर। रिण = युद्ध। आव = उत्साह। श्रग = स्वर्ग। साव = आनंद।

भावार्थ—रावण कमर बांध कर और हृदय में इस प्रकार उत्साह भर कर युद्ध के लिये चढ़ा। (उसने सोचा) मुझे तो स्वर्ग प्राप्त कर यश करना है, क्योंकि मरने में ही आनंद है।

गीत-उदाहरण

कुल भ्रात मंत्री सुत कटे, उर क्रोध रावण ऊपटे।
मन समझ नहचैं थटे मरणों, सजे घण घमसांण ॥
वध ओप वाजत्र वाजिया, सझ्झ रोप वगतर साजिया।
कस कमर बडकर गहर कर, धर धजर आवध सधर धर ॥
चढ़ चले रथ पर ढुर चमर, भड अवर निसचर रिण भंवर।
मिल चहुर मूछां भुहर भर, वज पखर गूघर भिडज वर ॥
गज चीर फरहर खुल अगर, झुक अतुर लोयण अगन झर।
अर अवियो आराण ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ऊपटे = उठा। नहचैं = निश्चय। थटे = स्थापित कर। वाजत्र = वाजे। वगतर = कवच। गहर = गर्व। धजर = तीक्ष्ण। सधर-धर = सावधान होकर। भुहर = भँवारे। भर = तक। चहुर = चारो ओर। पखर = घोड़े के पहनने का लोहे का पाखर अर्थात् कवच। भिडज = घोड़े। अगर = आगे। अर = शत्रु। आराण = युद्ध।

भावार्थ—सम्पूर्ण भाइयों और मंत्रियों के कट जाने से रावण के हृदय में क्रोध उठा। उसने मन में अपना मरण निश्चय करके घोर युद्ध की तैय्यारी की। खूब वाजे बजने लगे। टोप और कवचों से अपने शरीर सजाये। कमर कस कर और बढ़ कर गर्व करके तीक्ष्ण शस्त्रो को धारण कर के सावधान होकर और रथ पर चढ़ कर चँवर ढुलवाता हुआ चला। उसके साथ युद्ध के भंवर अन्य राक्षस हैं जिनकी मूछैं भँवरों से मिली हुई हैं। घोड़ों के लोहे के कवचों के घूँघरू बज रहे हैं। हाथियो के झंडे आगे खुल कर फहरा रहे हैं। आतुरता से झुके हुए नेत्रों से अग्नि निकल रही है। इस प्रकार वह शत्रु (रावण) युद्ध भूमि में आया ॥ १ ॥

निरसंक असुर निहारियो, धनु धरण धानुष धारियो।
भूथाण बांधे करण भारथ, रोप धर रघुवीर॥
सेसादि अंगद साथरा, कप हाकेल जुध काथरा।
रिण रीछ मरकट जयत रट, भट प्रगट गज ठटकज सुभट।
झट गरट गिर थट गह झपट, नट जेम बूघट कर निपट॥
वज खंभ आहट हुय विकट, हृद कियग खल पट लाग हट।
वल अमट ऊवट गयण वट, द्रढ़ दनुज दहवट कज दपट॥
भट भिड़े वीर सधीर॥ २॥

शब्दार्थ—भूथाण = तरकश, भाथा। भारथ = युद्ध। हाकले = उत्साहित किए। जुध काथरा = युद्ध में स्थिर रहनेवाले। ठट = समूह। गरट = वृक्ष। थट = समूह। बूघट = बालक। वजखंभ = ताल ठोक कर। आहट = आवाज। खट = छेड़ना। अमट = अमिट। ऊवट = मार्ग छोड़कर। गयण = आकाश। वट = मार्ग। दहवट = नाश करने को। दपट = दौड़ना।

भावार्थ—राक्षस रावण को निःशक देख कर रामचद्र ने हाथ में धनुष लिया और क्रोध कर तरकश को युद्ध के लिये कमर पर बाँधा। लक्ष्मण अगदादि अपने साथ के युद्ध में स्थिर रहनेवाले योद्धाओं को उत्साहित किया। युद्ध में बदर और रीछ जय-जय कर रहे हैं। वे योद्धा-गण हाथियों के झुंड के लिये और योद्धाओं के लिये वृक्ष और पर्वतों को झपट कर नट के बालक की तरह पकड़ते हैं। उनके ताल ठोंकने से भयानक शब्द हो रहा है। उन्होंने दुष्टों को घेर कर हद कर दी है। अमिट बलवाले बदर मार्ग छोड़ कर आकाश मार्ग से मजबूत राक्षसों को नष्ट करने के लिये दौड़े। इस प्रकार वे सधीर योद्धा शत्रु से भिड़ गये॥२॥

वे तरफ भड़ वेढिंग रा, जूटा हँगामी जँगरा।
धस मसक धरणी कसक कूरम, ससक नासा सेस॥

उड गिरद छव असमांखनूं, भरपूर ढांके भांणनूं।
जल उभझल झल झलधार जल, चल विचल दिग्गज अचल चल ॥
बड जीव जल थल विकल वल, संध मेर सलसल हुए सकल।
दुहुं ओर हूकल कलल दल, वध वहै बीजू जल विमल ॥
सुर असुर दमगल लख सकल, थक प्रबल ऊथल पथल थल।
इल हुवे सकल असेस ॥ २ ॥

शब्दार्थ—वेढिगरा = वेढंगे। ईंगामी = उत्साही। धसमसक = कंपित होना। कसक = लचकना। ससक = सिसकना। गिरद = गर्द, रज। छव = छा गई। ऊभल = मर्यादा छोड़ना। धारजल = समुद्र। सध = संधि। सल सल हुए = खुल गई। हूकल कलल = हल्ला गुल्ला। बीजूजल = बीजल सार, तलवार। दमगल = युद्ध।

भावार्थ—दोनों ओर के वेढगे और युद्ध के उत्साही वीर भिड़ गये। (उनके घोर युद्ध करने पर) पृथ्वी कंपित होने लगी, कच्छप लचकने लग गया, और शेषनाग नासिका से सिसकने लग गया। रज ने उड़ कर आकाश को आच्छादित कर सूर्य को पूर्ण रूप से ढक लिया। समुद्र के जल ने झल झल कर के मर्यादा को त्याग दिया। दिशाओं के हाथी विचलित हो गये और पर्वत चलायमान हो गये। जल और स्थल के बड़े-बड़े जीव व्याकुल हो गये। मेरु पर्वत की सम्पूर्ण संधिया खुल गई। दोनों तरफ की फौजों में हल्ला हो रहा है। मारने के लिये तलवारें चल रही हैं। देवताओं और राक्षसों के इस युद्ध को देखकर पृथ्वी के सम्पूर्ण स्थानों में उथल पुथल हो गई। कहीं कुछ कमी नहीं रही।

हुय हाक बीरां हडहडे, घर धूज कायर धड़ धड़े।
वज तबल तूर निघोप बंबी, सरां सोक असंक ॥
तस जंत्र जंत्री ताणिया, वरमाल गह गिर वाणिया।
घण वहण लोहण सघण घण, हुय गजण कण २ असण हण ॥

चप तीर छण २ रंध्रवण, हय हींस हण २ मचग हण ।
तरवार खण खण तूट तण, पण मंत्र भण भण रसण पण ॥
गहवगां जण जण अगण गण, सुरभवण कंपण लगण मण।
लंकाल धूजिय लंक ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—हाक = हल्ला। घर = शरीर। धूज = कंपित होना। निघोष = शब्द। बंबी = नकारे। सरां सोक = बहुत से बाणों का एक साथ चलना। तस = हाथों से। जंत्र = वीणा। जंत्री = नारद। ताणिया = तैयार की। गिरवाणियां = देवियाँ। वहण = बहना। लोहण = रुधिर। असण = सवार। हींस = हिनहिनाना। गहवगां = मल्लयुद्ध। सुर भवण = तीनों लोक। लंकाल = रावण।

भावार्थ—हड़ हड़ करके वीरों ने हल्ला किया जिससे कायर पुरुषों के शरीर धड़-धड़ कंपित होने लगे। तबल, तुरही और नक्कारे के शब्द हो रहे हैं और बहुत से बाण एक दम चल रहे हैं। यह देख कर नारद ने हाथ में वीणा तैयार की और देवांगनाओं ने वरमाला हाथ में ली। रुधिर बहुत बहने लगा। हाथियों के टुकड़े टुकड़े हो गये, और उनके सवार मारे गये। सन-सन तीरों के चलने से शरीर में छेद हो गये। घोड़े हिना-हिना कर मर गये। खन-खन करके तलवारें टूट रही हैं। अगणित राक्षस और बंदर प्रतिज्ञा रूपी मंत्र अपनी जिह्वा से कह कर आपस में मल्ल युद्ध करने लगे। यह देखकर तीनों लोकों के निवासियों के मन कंपित होने लगे। रावण और लंका के निवासी कंपायमान हो गये ॥ ४ ॥

धम जगर मातो धूधड़े, असमरां धड़छा ऊघड़ै।
घण घाव कलह कबंध घूमत, गुड़े भिडज मतंग ॥
पग धरे लोथां ऊपरे, कप वाह असुरां पर करै।
सिर तड़क तूटत झड़ कसक, धड़ गरक सम हर धधक धक।

जस किलक बक बक मुख जपिक, भुव खलक रुधरक भभक भक ॥
छिल बहत धक धक अछक छक, अंतराल गरलक डुल इधक ।
फी फरड फरडक नद फरक, हुय विढ़क हक हक, वीरहक ॥
खित गहक सूर खतंग ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—घम जगर = युद्ध स्थल । मातो = मस्त । धूघड़ै = लड़ते हैं । असमर्रा = तलवार । धड़छा = शरीर के टुकड़े । ऊघड़ै = कटते हैं । गुडे = पड़े । लोथा = मुर्दा शरीर । वाह = वार, प्रहार । धड़ = शरीर । गरक = भरा हुआ । समहर = संग्राम । धधक धक = तड़फड़ाना । जपिक = कहते हैं । खलक = बहता है । भभक भक = भक भक करके । अछकछक = अपार । अंतराल = अंदर । गरलक = सर्प, शेषनाग । फीफरड = फेफड़ा । विढ़क = युद्ध के लिये । खित = क्षिति, पृथ्वी । गहक = पकड़ना । खतंग = घायल ।

भावार्थ—युद्ध-स्थल में वीर पुरुष मस्त होकर लड़ रहे हैं । तलवारों से उनके शरीर के टुकड़े उड़ रहे हैं । युद्ध में बहुत से घाव खाकर कवध घूम रहे हैं । बहुत से हाथी घोड़े गिर गये हैं । बदर मुर्दा शरीरों पर पैर रख कर राक्षसों के ऊपर प्रहार कर रहे है, जिनके मस्तक शरीर से तड़ाक टूट कर गिर रहे हैं । युद्ध में शरीर तड़फड़ा रहे हैं । वीर गण अपनी अपनी शोभा उच्च स्वर से कह रहे हैं । पृथ्वी के अदर शेषनाग डगमगाने लग गया । और उसके फेफड़ो की आवाज हो रही है । घायल वीरगण हक हक हल्ला करते हुए पृथ्वी पर गिर गये ॥ ५ ॥

मह कहर आवह माचियो, खूदाल खित रवि खांचियो ।
छिव अरस विबुध विमाण छायो, इंद्र आद असेस ॥
किलकार काली किलकिलै, कंमाल धारक विलकुलै ।
नृत करत नारद गत अनंत, रत सगत किलकत पियत रत ।

सुर सरत धर सिर भरत सत, पल चरत फलचर अघत अत।
मिल अछर हरपत चित महत, पख निरप वीरत वरत पत।
खग गिलत गूंदा तत अखत, वण असत परवत मेरवत ॥
सह त्रिपत विहंग विसेप ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मह = पृथ्वी । कहर = जबरदस्त । आहव = युद्ध। खूदाल खित = पृथ्वी पर भ्रमण करनेवाला रथ। अरस = आकार। कंमाल = मस्तक। धारक = धारण करते हैं। सरत = बाणों से। पलचरत = मांस खाते हैं। अघत = तृप्त। अछर = अप्सराएँ। वीरत = वीरों को। असत = हड्डियाँ।

भावार्थ—पृथ्वी पर बड़ा जबरदस्त युद्ध छिड़ गया है। सूर्य ने पृथ्वी पर भ्रमण करनेवाले रथ को रोक लिया। आकाश में इंद्र आदि सम्पूर्ण देवगणों के विमान छा गये हैं। काली किल-किल शब्द कर रही है। मुडमाला धारण करनेवाले (शिव) प्रसन्न हो रहे हैं। अनेक प्रकार से नारद मुनि नृत्य कर रहे है। शक्ति प्रसन्न हो कर प्रेम से रुधिर पी रही है। शूरवीरो के शरीर और मस्तक बाणों से भरे हुए हैं। मांसाहारी पक्षी मांस खाकर बहुत तृप्त हो गये हैं। अप्सराएँ मिलकर हर्ष से वीरत्व के पक्ष को देखकर वीरगणों को पति रूप में वरण कर रही हैं। पक्षी अधीर होकर मांस खा रहे हैं। बची हुई हड्डियों से मेरु पर्वत बन गया है। सब पक्षी खूब तृप्त हो गये हैं ॥ ६ ॥

बड़ झड़े असुर विलोकिया, मुक सन्न सिरदस भोकिया।
सुग्रीव मूसल सुलभ अंकुस, पटिस नील प्रचंड ॥
सिल विकट फरस सुखेणरे, तिरसूल गवायख तेणरे।
भिंडपाल गजगव विटप भड़, धिख गदा वभीषण उवरधर ॥

हणु तुमर केहर कूंतहार, कर करत दुय दसमुख चकर।
सभ्क सगत लिखमण हरत्रिसर, भड अवर आवध अमर भर ॥
डर देख निज दल हुय अडर, कर क्रोध रघुवर घुल कहर।
कर सधर धर कोमंड ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—झड़े=पड़े। झोकिया=चलाये। भिड़पाल=गोफण शस्त्र विशेष। धिख=द्वेष से। तुमर=बरछी। कूंतहर=भाला। दुय=वैरी। चकर=तलवार से दो टुकड़े करना। सगत=बरछी। त्रिसर=तीन बाण।

भावार्थ—बड़े २ राक्षसों को गिरा हुआ देखकर रावण ने शस्त्र निकाल कर प्रहार करना आरम्भ किया। सुग्रीव के मूसल की दी, सुलभ नामक वदर के जोर से अंकुश की मारी, नील के कटारी की दी; सुखेण नामक वंदर के निकट सिला की दी, गवाक्ष नामक वंदर के त्रिसूल की, गजगव नामक वंदर के भिंडपाल नामक शस्त्र की, और भटों के वृक्षों की, विभीषण के द्वेष से गदा की, हनुमान के बरछी की, और केहर नामक वंदर के भाले की दी। अन्य शत्रुओं के रावण ने तलवार से दो टुकड़े कर दिये। लक्ष्मण पर बरछी का प्रहार किया और अन्य योद्धाओं को जिनके शस्त्र नहीं लगा था, शस्त्रों से भर दिया। अपनी सेना को डरता देखकर रावण ने इस प्रकार उन्हें निडर किया। यह देखकर रामचन्द्र ने सावधान होकर अत्यंत क्रोध से धनुष उठाया ॥७॥

किय चाप आक्रत कुंडल, इषु छोड़ छेदे ऊंडला।
दससीस दुजै सीसदसरा, दडक दूर दराज ॥
लंकेस झाड़ियो लंगरी, जै हुई राघव जंगरी।
हुय सबद अणहद अरस अध, मिल सुमन वरषे गिरदमध।
सुर सुरपतादिक सुरब सध, विध कहवि गदगद विरद वध ॥
असुरांण जद जद भय असध, प्रभु साय तद तद किग प्रसिध।

खल अखल वद वद समर खुद, वर निरख रावण कियण वध ।।
घन धिनो अवधधिराज ।। ३६ ।।

शब्दार्थ—इषु = बाण । अंडला = अमृत कुड नामी । असध = असाध्य । साय = सहायता ।

भावार्थ—रामचन्द्र ने धनुष को कुडलाकार करके (चढ़ा कर) बाण चलाकर रावण की नाभी को छेद दिया और दूसरे बाण से उसके दशों मस्तक दूर गिरा दिये । लड़ाकू रावण गिर गया । रामचन्द्र की युद्ध मे विजय हो गई । इससे आकाश और पाताल में अपार शब्द हुआ । सम्पूर्ण देवताओ ने मिलकर त्रिकूटाचल पर फूलों की वर्षा की । इंद्रादि सम्पूर्ण देवताओं और ब्रह्मा ने रावण-वध का यशोगान किया । यह प्रसिद्ध है कि जब जब राक्षसों का असाध्य भय हुआ है, तब तब ही हे प्रभू, आपने सहायता की है । आपने सम्पूर्ण दुष्टों को युद्ध में परास्त कर नाश किया है । रावण के वध को श्रेष्ठ देखकर सबने कहा—हे अयोध्या पति रामचन्द्र, आप धन्य हैं, धन्य हैं ।। ८ ।।

दूजो त्रकूट बंध

वरतारो छप्पय दोढ़ो

उभै तुकां तो आद भंवर गुंजार तणी भण ।
कल चवदा दस कलां वलै म्होरै गुर लघुवण ।।
चवद चवद कर चरण दोय सांकल इकदीजै ।
वल तुक सोलै विमल कला सत सतरी कीजै ।।
धुर तिणा नवकल धार सार सांकल अनुप्रासह ।
तुक तुक दुय लघु अंत पछै दसकला प्रकासह ।।
जिण मांहि अंत मोहरैं जुगत रच द्वालो इण रूसरो ।
कवि मंछ प्रभू कीरत करैं दखें त्रकुटबंध दूसरो ।। ३७ ।।

भावार्थ—आदि में दो पद भँवर गुंजार गीत (जिसके प्रथम चरण मे १६ और द्वितीय में १४ मात्राएँ होती हैं) के कहो। तीसरे चरण में १४ मात्राएँ और चौथे चरण मे १० मात्राएँ और अत में गुरु लघु लाओ। फिर चौदह चौदह के दो चरण रखकर उनका तुकांत मिलाओ। फिर १६ पद सात सात मात्राओं के करो जिनमें प्रथम पद की ६ मात्राएँ रखो (और बाकी १५ सात सात की) और सब का अनुप्रास मिलाओ। प्रत्येक पद के अंत मे दो लघु रखो। फिर दस मात्रा का पद प्रकाशित करो, जिसके अन्दर युक्ति में तुकान्त (चौथे पद से) मिलाओ। मछ कवि इस प्रकार दूसरा त्रकूट बंध कह कर ईश्वर के गुण गाता है।

उदाहरण

विभीषण राजतिलक सीता मिलाप

रघुनाथ श्रीहथ हथे रावण, परम संता कीध पावण।
जयत अह नर अमर जंपै, समर करुणासार ॥
चित खून खिण न विचारियो, धणियाप निजवृद धारियो।
अण अडर निसचर अवन ऊपर कहर कर कर साज लसकर,
प्रचंड खितधर कियण पाधार।
अवर अहनर अवर निरजर, धरण हर हर रखी तिणधर॥
पहर थिर चर अतर थरथर, तेण कृत भर काज दुसतर।
हुवर तिण पर महर नरहर, पसर किय भवपार॥ १॥

शब्दार्थ—हये = मारा गया। अह = अहि, सर्प। अमर = देवता। समर = स्मरण करके। खून = अपराध। खिण = क्षण भर। धणियाप = स्वामित्व। खितधर = राजा। पाधर = सीधा, दुरुस्त। निरजर = देवता। हरहर = छीनकर। पहर = पहरा दिया। अतर = बहुत। पसर = पड़ गया।

भावार्थ—रामचन्द्र ने अपने हाथों से रावण को मार कर संतों को

पवित्र कर दिया। दया के सार रामचन्द्र का स्मरण करके नाग, मनुष्य और देवतागण जय जय कह रहे हैं कि आपने अपने स्वामित्व और विरद को धारण कर उसका (रावण का) क्षण भर भी अपराध नहीं विचारा। उस निडर राक्षस ने पृथ्वी के ऊपर क्रोध करके और सेना सजा कर बलवान राजाओं को सीधा कर दिया। बड़े बड़े देवता, सर्प और मनुष्यों की स्त्रियों को छीन कर उसने घर में डाल रखा था। उससे चर और अचर (सभी) बहुत थर थर कंपित होते थे। ऐसे रावण पर, जो खोटे कार्यों से भरा हुआ था, हे नरहरि रामचन्द्र, आपने उस पर कृपा की। उसे पटक कर आपने संसार से पार कर दिया ॥१॥

दनुज जण जिह अटल पद दिय, कृपाकर तिय लंकपत किय।
दले सगली रिद्ध रघुवर, वयण वर वरियाम ॥
मुखहुती तिय मंदोदरी, ध्रुव सुजण अंतेवर धरी।
अरु महल भुवतल विरल उज्जल, अनुग निसचल अमृत भृतयल ॥
चपल कोतिल कलल चंचल, विहद मद गल भ्रमर अलवल।
रथां जल हल चित्र रल रल, दुझल अणचल प्रवल पैदल ॥
अचल त्रिय वल महल पुरि यल, प्रघल दल वल रीझ इक पल।
सकल वगसे स्याम ॥ २ ॥

शब्दार्थ—दनुज जण = राक्षसों में भक्त, विभीषण । जिह = जिसको। सगली = सब। वयण वर = वर मांग। अंतेवर = जनाने में। विरल उज्जल = अच्छे। अनुग = नौकर। निसचल = राक्षस। भृतयल = चाकर, सेवक। कोतिल = घोड़े। कलल चञ्चल = दूसरे चञ्चल घोड़े। विहद = बेहद, अपार। अलवल = लिपटे हुए। रल रल = सुन्दर। दुझल = युद्ध। वगसे = वकसीस कर दिये, दान दे दिये। यल = पृथ्वी। प्रघल = प्रगल्भ।

भावार्थ—राक्षसों में जो भक्त था, उस विभीषण को रामचन्द्र ने

अटल पद दिया और उसे कृपापूर्वक लका का राजा करके सम्पूर्ण ऋद्धि आदि दी। और फिर मुँह से श्रेष्ठ वचन कहे कि वर माँग। उस श्रेष्ठ भक्त विभीषण ने मदोदरी को जो रावण की रानियों में प्रधान थी, अपने जनाने महल में रख लिया। रामचंद्र ने एक पल मात्र में प्रसन्न होकर अच्छे महल, जमीन, नौकर, चपल घोड़े, अन्य प्रकार के चंचल घोड़े, बेहद मद झरने से लपटे हुए हैं भौंरे जिनके ऐसे हाथी, विचित्र झलझलाहट करते हुए सुंदर रथ, युद्ध में अचल रहने-वाली पैदल सेना, त्रिकूटाचल, स्त्रियाँ, महल और नगर ये सब विभीषण को प्रदान कर दिये।

कहि कार खाना गिणत कुण कुण, संभ्रमैं तिहूंलोक सुण सुण।
विसद जग उजवाल विरदां, सत्रा सांझण सूर॥
वध दोट भुज भुजबीसरा, सिर वोट कर दससीसरा।
तत इंद्रपरगह सहत तावह, करे कलपह असह रह रह॥
पवन वरुणह अनल धनपह, नखत नवग्रह दोन हुय वह।
रहत दर गह नृपह दिग्गह, जीति विग्रह दुसह जह जह॥
कलह गह गह बंध कीधह, सगह रघुपह जिकांरो सह।
दुषह कीधो दुर॥ ३॥

शब्दार्थ—कुण कुण=कौन कौन। संभ्रमें=आश्चर्य करते हैं। विसद= अच्छा। उजवाल=प्रकाशित करके। वोट=काटना। परगह=सभा। तावह=नौकर। कलपह=कल्प। असह=असह्य। धनपह=कुवेर। वह=चलते थे। दरगह=सभा। दिग्गह=दिगपाल। सगह=उत्साह सहित।

भावार्थ—कौन मनुष्य उन कारखानों को गिन कर बता सकता है, जिनकी गणना सुन कर तीनों लोक आश्चर्य करते है? शत्रु को मारनेवाले रामचन्द्र ने संसार मे अपने यश को प्रकाशित कर रावण की बीस भुजाएँ और दस मस्तक काट कर उसे मार डाला। वहाँ इंद्र ने

भी अपनी सभा सहित नौकरी में असहाय होकर काल व्यतीत किये हैं। पवन, वरुण, अग्नि, कुवेर, नक्षत्र और नवग्रह दीन होकर चलते थे। राजा लोग और दिगपाल उसकी सभा में रहते थे। रावण ने इन्हें युद्ध में जीत कर और पकड़ कर कैद कर रखा था। उन सब लोगों का रामचन्द्र ने उत्साह सहित दुःख दूर कर दिया।

हो मिलण सीता परसपर हर, घणां उतसव उमड़ घर घर।
वखत जिण आमोद वरणण, को करे कवराज ॥
जंपे जु कीरत जेणरी, सो थके रसना तेणरी।
प्रभु करे रिण कस धार पोरस, विहस सिरदस करण निरवस।
लंक रापस विखस लिय खस, विभीषण वस वरस वीरस ॥
तिलक किय तस विपस हस हस, दिवस केतस नाम दिस दस।
नृमल कर जस वहस सुमनस, आविया अस अवध अरघस ॥
सरससाज समाज ॥ ४ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—रिण = रण, युद्ध। निरवस = निर्वंश। विरवस = दान दी। लियखस = सार लेकर। वरस = हठ से। वीरस = शूर वीर। केतस तस = कितने ही। वहस = अच्छे। अस = ऐसे। अरघस = शत्रुओं का नाश करके।

भावार्थ—रामचन्द्र और सीता का परस्पर मिलना हो गया, इससे घर घर में बहुत ही उत्सव हुए। उस समय के आनंद का कौन कवि वर्णन कर सकता है। जो कोई मनुष्य उनकी कीर्ति को कहता है, उसकी जिह्वा थक जाती है। रामचन्द्र ने बड़े पुरुषार्थ से और हँसकर रावण को निर्वंश करने के लिए युद्ध में कमर कसी थी। लंका के राक्षसों का सार लेकर उन्हें क्षमा कर दिया। विभीषण के हठ से उन शूरवीर रामचन्द्र ने हँस हँस कर उसको राज्य तिलक किया। रामचन्द्र वहाँ कितने ही दिन व्यतीत करके और अपने नाम, दशों दिशाओं, यश और श्रेष्ठ

देवताओं को स्वच्छ करके इस प्रकार शत्रुओं का नाश करके खूब ठाठ बाट के साथ अयोध्या आये।

गीत लघु चितविलास

वरतारो छंद चर्नाकुलक

कलषट करे वीप्सा करणो, विच जिण गुर संबोधन वरणो।
तुक चवदैकल फेर जतावैं, उहीज मोरो तिण मे आवै॥
इणविध दुय पद वले उचारे, घर चोकल सम मोहरा धारै।
आदि संबोधन धुर तुक अंत, चित विलास सो गीत चवंत॥३९॥

भावार्थ—षट् मात्राओं के दो पद करने चाहिएँ जिनके बीच में एक संबोधनवाची शब्द रखना चाहिए। उसके बाद १४ मात्राओं का एक चरण लाना चाहिए। इसमें तुकांत पहलेवाला ही आना चाहिए। इसी तरह से दो चरण फिर कहना चाहिए और तुकांत मे चौकल रखना चाहिए। प्रथम चरण में जो संबोधनवाची शब्द आया हो, वही अंतिम पद के अंत में रखकर आदिवाला पद रखना चाहिए। यही चित विलास गीत कहा जाता है।

उदाहरण

जुध जूटेजो जुध जुटे।
जोसेल दसांणण जूटे॥
त्रिजडां मुहडै तर तूटे, वसु पड़ियों प्रांण विछूटेजो जुध जुटे॥१॥

महमाया जी महमाया।
मजबूत प्रभुची माया॥
करतो गृभ कैतो काया, पल मे ह्वा माल पराय, जी महमाया॥२॥

वृद वंका जी वृद वंका ।
वेधीर महा भड़ वंका ॥
लड़ लीधं हणे खल लंका, नृप कीध विभीष निसंका जी वृद वंका ॥३॥

सुर सारा जी सुर सारा ।
सुमनां वरषे सुर सारा ॥
हरषे हिय वारम वारा, अतजै जै वैण उचारी, जी सुर सरा ॥ ४ ॥४०॥

शब्दार्थ—जोसेल = वलवान । त्रिजडां = तलवार । मुहडै = मुख । विछूटे = छूट गये । गृभ = गर्व । हां = हो गया ।

भावार्थ—वलवान रावण युद्ध में खूब लड़ा । तलवारों से उसके मस्तक और शरीर के टुकड़े हो गये । इससे वह पृथ्वी पर गिर गया और उसके प्राण निकल गये ॥ १ ॥

ईश्वर की माया वहुत वडी है । रावण अपने शरीर का कितना गर्व करता था । देखो एक क्षण भर में सब माल दूसरों का हो गया ॥ २ ॥

उन वाके धीर वीरो का यश वड़ा वाँका है । उन्होंने दुष्टों को मार कर लंका ले ली और राजा विभीषण को निःशंक कर दिया । सम्पूर्ण देवतागण फूलों की वर्षा कर रहे हैं और वे वारम्वार अत्यन्त हर्षित होकर जय जय शब्द कर रहे हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ४० ॥

इति श्रीरघुनाथ रूपक मरुधरदेस भाषा कवि मंछराम विरचित
लकाकाण्ड अष्टमो विलासः समाप्तः ।

---

१ पाठां—सोध ।

नवमोविलासः

(उत्तर काण्ड)

गीत जात ललत मुकुट ।

वरतारो-दोहा ।

भण दोहे पर छंद त्रभंगी, सिघविलोकण सार ।
ललत मुकुट सो गीत सुलक्षण, वरणे मंछ विचार ॥ १ ॥

भावार्थ—सरल ही है ।

विशेष—इस गीत को पिंगल ग्रन्थों में "ललित त्रिभंगी" छंद भी कहा है ।

उदाहरण

करै जीत लंका कलह, दे भ्रत राज उदार ।
आया राम अयोधिया, कवसल राज कँवार ॥
कवसल्ल कंवारं लेसिय लारं, जग जोधारं सेस जती ।
वभीप वधारं अवर अपारं, पदम अठारं कीसपती ॥
अमरा असमाणां बैठ त्रिमाणां, सुमन सपाणां वरसावै ।
घुर नोपत घाई सुरां सुहाई, नवल वधाई सरसावै ॥ १ ॥

शब्दार्थ—कलह = युद्ध । लारं = पीछे, साथ मे । सेस = शेष के अवतार लक्ष्मण । जती = हनुमान का विशेषण । वधारं = बड़प्पन देकर । कीसपती = सुग्रीव । अमरा = देवता । सुमनस = पुष्प । घुर = बजाना । घाई = बहुत शीघ्रता से ।

भावार्थ—लंका का युद्ध जीतकर और अपने सेवक विभीषण

को राज्य देकर कौशल्या के पुत्र रामचन्द्र, सीता, जगत के योद्धा लक्ष्मण, हनुमान, बड़प्पन दिये गये विभीषण, सुग्रीव और अठारह पद्म अन्य वंदरों को साथ में लेकर अयोध्या में आये। आकाश में विमानों में बैठे हुए देव गण अपने हाथों से पुष्प बरसा रहे हैं। और उनके (रामचन्द्र के) बहुत शीघ्रता से नक्कारे बज रहे हैं और देवताओं को अच्छी लगनेवाली नवीन बधाइयाँ गाई जा रही हैं।

सरसावै सारंगधर, मेले मारुत माय।
भूप अवधचो भरथनूं, आगम कहियो आय ॥
आया अवधेसर सुणे सहोदर भडां परसपर अंक भरे।
रेवत गज राजा सुभट समाजा कर रथ साजा त्यार करे ॥
उतमंग खड़ाऊ उमग अगाऊ दर सण दाऊ पाव पिले।
भादव घण भारी फैल अफारी महण तटारी जाण मिले ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सारंगधर=धनुर्धारी, रामचन्द्र। मेले=भेजे। मारुत=हनुमान। माय=अंदर। अवधचो=अयोध्या के। सहोदर=भाई। रेवत=घोड़े। त्यार करे=तैयार किये। उतमंग=उत्तमांग, मस्तक। अगाऊ=आगे। दरसण दाऊ=दर्शन के लिये। पावपिले=पैदल चले। महण=समुद्र। तटारी=तीर, किनारा।

भावार्थ—धनुर्धारी—(रामचन्द्र) ने प्रसन्न होकर हनुमान को अयोध्या में भेजा। उसने वहाँ आकर अयोध्या के राजा रामचन्द्र का आगमन भरत से कहा। भाई (भरत) ने सुना कि 'रामचन्द्र' तब वह और हनुमान आपस में अंक भर कर मिले। भरत ने घोड़े, हाथी, योद्धागण और रथों को सजा कर तैयार किया। और उमंग से खड़ाऊँ मस्तक पर रखकर सबके आगे आगे रामचंद्र के दर्शनों के लिए पैदल चले।

भरत रामचंद्र से इस प्रकार आकर मिले मानों भाद्रपद के सघन धन समुद्र से तट पर आकर मिले हों।

मिले राम लिषमण मिले, नम सिय पद नर नाह ।
मरकट भाल वभीपण मिल, उमंग अंग अथाह ॥
अथाह उमंगे भड अणभंगे जेता जंगे सह संगे ।
श्री रंम सुवेसं पुरपरवेसं चमर अहेसं कर चंगे ॥
वड कलस वंदावे गायण गावे कवि विरदावे कह क्रीतां ।
ईखे असवारी नर अरु नारी, पुरी सिगारी कर प्रीतां ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—श्रीरग=रामचद्र । परवेश=प्रवेश किया । गायण=गानेवाली । क्रीता=कीर्ति । ईखे=देखते हैं ।

भावार्थ—भरत रामचद्र से मिले, लक्ष्मण से मिले और फिर उन्होंने सीता को प्रणाम किया । विभीपण, वदर और रीछो से मिल कर उनके शरीर मे अपार हर्ष हुआ । युद्ध मे विजय प्राप्त करनेवाले अन्य योद्धा-गण भी उनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए । रामचंद्र ने इन सब के साथ अयोध्या में प्रवेश किया । रामचंद्र के ऊपर लक्ष्मण हर्ष से चॅवर डुला रहे हैं । अयोध्या निवासी बड़े बड़े कलश बॅधवा रहे हैं । गानेवाली स्त्रियाँ गा रही हैं, कवि लोग यशोगान कर रहे हैं । पुरवासी गण बड़े प्रेम से नगरी सजा कर सवारी देख रहे हैं ।

कर प्रीतां कवसल कंवर, इस चढ़िया आथांण ।
सुरलोकां तोले सुमर, बोले जै जै वांण ॥
बोले जय वाणं सबद सुहाणां निघस निसाणां हरख हुवो ।
प्रभु कर कर पवण भड मन भांवण डेरां जावण दीध दुवो ॥
रिणवास पधारे सुर कज सारे अंग अपारे धांख धरे ।
परसे मां प्रीतां सीत सहीतां कर रीतां डंडोत करे ॥ ४ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—आथाण=स्थान । निघस=बजते है । निसाणा=नक्कारे । दुवो=आज्ञा । धांख=उमंग । डंडोत=दंडवत, प्रणाम ।

भावार्थ—बड़े प्रेम से कौशल्या के पुत्र रामचन्द्र अपने स्थान पर आये। इससे तीनों लोक वडे गर्व से श्रेष्ठ शब्दों में जय जय शब्द बोल रहे हैं। उनके (रामचन्द्र के) आ जाने से नकारे वज रहे हैं। बहुत ही हर्ष हो रहा है। रामचन्द्र ने सब को पवित्र करके मन इच्छित ठहरने के स्थानों में जाने की आज्ञा दी और आप स्वयं सब कार्य सिद्ध करके हर्ष से जनाने में गये, और वहाँ सीता सहित माता से मिले और उन्हे विधि सहित प्रणाम किया।

इति गीत संख्या वेहोतर हुआ।

दोहा

कहे वोहोतर मंछ कवि, गीत प्रबंध गिनाय।
राजतिलक वरणन करूँ, दुवा वैत दरसाय ॥ ३ ॥
तवै मंछ कवि है तिकै, दवावैत विध दोय।
एक "सुद्धवंध" होत है, एक "गद्दवंध" होय ॥ ४ ॥

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—यह कोई छंद नहीं है जिसमें मात्राओं, वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अत्यानुप्रास मय गद्य चाल है। अंत्यानुप्रास, मध्यानुप्रास और किसी प्रकार सानुप्रास वा यमक लिया हुआ गद्य का प्रकार है। यह संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा, फारसी भाषा, उर्दू भाषा और हिन्दी भाषा में भी अनेक कवियों और ग्रन्थकारों द्वारा प्रयोग मे आया हुआ मिलता है। आधुनिक लल्लूजी लाल के प्रेमसागर आदि ग्रन्थों में तथा उर्दू के वहारवेखिजां, नौवतन आदि ग्रन्थों में तथा फारसी के ग्रन्थों में भी देखा जाता है। संभव है डिंगलवालों ने भी उनका अनुकरण किया है। यह दवावैत दो प्रकार की होती है। एक सुद्धवंध अर्थात् पदवंद जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है और दूसरी गद्दवंध जिसमें अनुप्रास नहीं मिलाते हैं।

अथ द्वा वैत पदबंध

प्रथम ही अयोध्या नगर जिसका बणाव[1],
बारै[2] जोजन तो चौड़े सोलै जोजन को धाव[3],
चोतरफूँके फैलाव चौसठ जोजन के फिराव[4]।
तिसके तले[5] सरिता सरिजू के घाट,
अत उतावल[6]सूँ वहै चोसर कोसों के पाट।
बड़ी बड़ी कीताबूँ में जिस गंगाका बखाण,
केती[7] वार नगरीकूँ मेली निरवाण।
सरवर[8] अनेकूँ उपमा विसाल,
पचरंगूँके कमल राजहँसूंके माल[9]।
चारूँ तरफसूँ बंधे सरवर दरसावै,
तिसकूं देखेतें मानसरोवर के [10]भोला आवै।
[11]कुवा वावड़ियूंके [12]डंबर,
वाड़ी बागूंके आडंबर।
रिषराजूँ के आश्रम जिहं सोभा अपार,
होम हवन के हगामे वेदधुन की उचार।
[13]गुलजारुकी [14]पंकत रोसी सरसावै,
तिसकूं देखिये नंदन वन सहसा लखावै।
सहरकी तारीफ [15]कूँन करसकै,
[16]अमरावती के अमर तिस [17]गहरकूं तकै।

---

१ वनावट। २ वारह। ३ लवाई। ४ घेरा, परिधि। ५ नीचे। ६ शीघ्रता से। ७ कितनो ही दफा। ८ सरोवर, तलाव। ९ समूह। १० भ्रम। ११ कूप। १२ समूह। १३। पुष्प। १४ पक्ति, कतार। १५ कौन। १६ स्वर्ग। १७ वडप्पन।

राजमहलूंके [1]अंडाव [2]अंरस सेती अड़े,
मनू धवलागिर [3]विसकर्मा जड़ावसूं जड़े।
जिस नगरी का राव दिलका [4]दर्याव,
जिसके भंडार परवर दिगार।
लंका [5]फतेह कर अवधकूं आये,
तमाम जीव अत उमंगसूं छाये।
[6]निंमां स्याम आई [7]बंदी रूंसनाई,
पीछे रघुराजा दंपत सुख साजा।
महल तिस [8]दोर्लां रागूंके [9]हवोलों,
त्रियलोकराई रजनी विताई।
[10]फजरके पहर [11]गजर [12]ठकोरा [13]बगे,
[14]ठोड़ २ धवल मंगल होणें को लगे।
तिसके [15]दरम्यान [16]खलकूंके [17]खालक,
अवतारूं के अवतंस मुनराज के मालक।
दसरथका [18]पिसर [19]अंतेवरसूं आये,
तामम जण हरष सै छाया [20]दीदार पाया।
सबके दिल फूले,
आनंद उरभय त्रिविध के ताप भूले।
वासिष्ट रिष आद [21]दवा पढ़ी,

---

१ ऊंचाई। २ आकाश से। ३ विश्वकर्मा। ४ दरिया। ५ जीतकर। ६ निश्चय। ७ रोशनी जलवाई। ८ चारों ओर। ९ लहर। १० प्रातःकाल। ११ घड़ियाल चार चार घटे बाद बजने वाली टन टन। १२ चोटें। १३ बजे। १४ स्थान-स्थान पर। १५ बीच में। १६ संसार। १७ मालिक। १८ पुत्र। १९ जनाना। २० दर्शन पाकर। २१ आशीर्वाद।

उरकी अनुराग वाहिरकूं कढ़ी ।

पोडस प्रकारूं के दान वेदोक्त करवाये,

पंचांग सुध सोध [1]मोरत वतलाये ।

दरवाजे २ तोरण कलस बांधे,

पताका के डंड अरससूं सांधे ।

हनमंतादि हाजर तिस [2]वखत में लह्या,

तीरथूं के जल जड़ी [3]ल्यावने का कह्या ।

सुनतांई जोधारपुर [4]चोगडद [5]तूटे,

[6]कवान के [7]चल्लेतें सायक से छूटे ।

सुमित्रा सा मंत्री सद सहूरका सागर,

लाजूंका [10]कोठार [11]कुलपाजू के आगर ।

आगमूं के जाणगर सब हुन्नर खबरदार,

राजकाजूं के कर्त्ता इक हुकम के इकतार ।

सो तिस वखत आया जस अवनेतसूं जड़े,

[12]अदवूं बजाय अपने [13]ठिकाने पै खड़ें ।

जिस समै महरबान होय श्रीजुवान फरमाई,

राजतिलकूं की कीजै [14]सतावी सूं सजाई ।

सोतिस वखत साज दिवानखानै,

सारे छत्तोसूं कारखाने ।

दूतांकूं [15]हंकारे आतुर सूंभागे मृगरूप सा [17]सागे ।

खबर जाय दीनी, त्यारी सब कीनी ॥

---

१ आशीर्वाद । २ मुहूर्त । ३ समय । ४ लेने के लिये । ५ चारो ओर । ६ चले । ७ धनुप । ८ धनुप की डोरी । ९ ज्ञान । १० लज्जा । ११ खजाना । १२ कुल-मर्यादा । १३ प्रणाम करके । १४ स्थान पर । १५ शीघ्रता । १६ बुलाये । १७ प्रकट में ।

दूहा

कहै मंछ इतरी कही, पद्बंध नाम प्रबंध ।
दवावैत फिर दूसरी, कहूं इमै गद्बंध ।।५।।

भावार्थ—सरल ही है ।

हाथियों के हलके[1] खंभू[2] ठाणा तै खोले अरांपत[3] के साथी भद्र-जाती के टोले[4] अत देहुके दिग्गज विंध्याचल के सुजाव[5] रंग रंग चित्रे सुंडा डंडूंके वणाव झूल की जलूसें वीर घंटूके ठंणके[6] बादलों की जगमपा भरे भौंरों की भकी भंणकै, कल कंदमूंके[7] लंगर भारी कनक की हूंसें[8] जवाहर के जेहर[9] दीपमाला की रूस[10] भाल्के[11] आडंबर चहुँ तरफ कूं भाखे[12] माहुतनै गज अैसा हाजर कर राखे, वरणू वरणू के विलास खेतु[13] में कायम[14] आरसी[15] से मंजुल मूखमल्[16] से मुलायम वरवागू[17] के सांचे पंखराव[18] सी धाव[19] खुरतालु[20] के झमके सत सिंपा[21] के सिलाव[22] आउ जाउ में चक्री, निरत[23] करवे में हूर[24], जग जंगू में गरीत[25], सालोतरूं[26] मे पूर, चांमीकर[27] की सागत, जडी नगू से ललाम, गज गुलखूं[28] के गहणे[29] अंगु अंगु के तमांम, सपतास[30] के सहोदर, लडां लूवां[31] में

---

१ झुंड । २ हाथियों के बांधने के स्थान के खूँटे । ३ एरावत । ४ झुंड । ५ पुत्र । ६ आवाज । ७ पैर । ८ चाह । ९ जेवर, भूषण । १० तरह । ११ माले । १२ महावत, हाथी को चलानेवाला । १३ संग्राम में । १४ अडिग । १५ दर्पण । १६ मखमल । १७ श्रेष्ठ लगाम । १८ गरुड । १९ दौड । २० नाल । २१ बिजली । २२ चमक । २३ नृत्य । २४ अप्सरा । २५ प्रबल । २६ शालि-होत्र शास्त्र । २७ स्वर्ण, सोना । २८ भूषण विशेष । २९ भूषण । ३० सप्ताश्व । ३१ आभूषणों से भरे हुए ।

अथाग, [३२]तिलवागूं के लीने स्थावे पवनूं की पाय, [३३]साणियांनै भली विध [३४]सीरै खानके [३५]पुलग साज तिणनिजरूं गुजराय, धजेराजू के समाज अत जातूके अनेक सज, रथूके घमसाण जिसकूं देख लजावै सुधाभुंजू के विमाण, अवरही कारखाने तिस तिसके ओधायत अपनी २ जिनसूं ले आय, जिस सायत परदल के विगारू निज दलके किवाड जंगूके जैतवार अंगूके ओनाड आंचूके उदार कार्छवाचूके अडोल, अंनीके म्होरे, मेरगिरके से तोलरिणं फतूहके [११]फरसते, साम काम में सधीर, [१२]सूरूंके सहायक, दोनवूंके [१३]दावागीर, [१४]दिलपाकूंके [१५]दोसत, [१६]सरणांया के साधार, आगू आयकर खडे, रघुवीर के जोधार, तीन काल के दरसी, चार निगमूं की उक्त, सपतादि रिपूं के गण रिप पतनियां संयुक्त सिव ब्रह्मादि इंद्रादिक सातूं भवन के मूल शिवा सावत्री आद सुर अंगना के झूल नागलोग के नायक, नाग कन्या समेत [१७]सरभ ही आय [१८]ऊभे, उर दरसणूं हेत नोपतूं के [१९]निवाहव वजाजूके ततकार पटरागूं के धीर, वारवंधुके नृतकार विछायतूंके वणाय अत अंतरूके डंवर साईत्रानूंकी झिलामिल पडदूं के अंबर सगला ही निज मिसलूं मे अदवूं सूं फावै मनु चित्रामके लिखे सब हूकमू के तावै वेदकी विधान से अभिशेष कूं साजै, कुल

---

३२ तिल जितनी लगाम खींचने से। ३३ घोडा फेरनेवाले; चाबुक सवार। ३४ अच्छी खान के। ३५ घोडे। १ घोडे। २ देवता। ३ हाकिम। ४ समय। ५ विगाडनेवाले। ६ पैठनेवाले। ७ हाथ। ८ जितेन्द्रिय। ९ सेना। १० युद्ध का झंडा। ११ फरिश्ते। १२ शूर वीरों के। १३ मारनेवाले। १४ पवित्र मनवाले। १५ मित्र। १६ शरणागत। १७ सर्व। १८ खडे हुए। १९ बजानेवाले। २० वेश्या। २१ छत्र। २२ तम्बू।

जीवां के तारक तखत ऊपर विराजै, लषमण के हाथूं चमर, सत्र-घण के हथ छत्र, अवर ही खवासी में कुल राखसूं के सत्रु, कुंकम को पात्र ले भरथ राज तिलक करे मोतियां के अक्षत तिस-पर भरपूर भरे अमरूं नै वरसाये सुध फूलके डोले जै जै काखँ की धुनि नवखंड में बोले।

इति दवा वैत

अथ दोय प्रकार वचन का

दूहो

बैत दवा, जिम वचनका, पद गदबंध प्रमांण।
दुय दुय विध तिणरी दखूं, सुणजैजका सुजाण॥

भावार्थ—सरल ही है।

विशेष—ये वचनिकाएं भी दवावैत के ही भेद मालूम होती हैं। इतना सा भेद मालूम होता है कि वचनिका कुछ लम्बी और विस्तृत होती है, जैसा कि इसी ग्रंथ में उदाहरण है। और गद बंध में तो कई छंदों के जोटे अर्थात् युग्म वचनिका रूप में जुडते चले जाते हैं, जैसा इस ग्रथ में उदाहरण दिया गया है।

उदाहरण

पदबंध वचनका

जिण सभारै मांहे ब्रह्मादिक सिवादिक इंद्रादिक आद तेंतीस क्रोड देवता इठ्यासी हजार रिषा विद्याधर गंध्रप जक्ष आद देस देसरा राजा बैठा है तिणबखत श्रीरघुनाथजी लिखमणजीरा बखाण श्रीमुख सूँ किया।

दूजो भेद

तिण सभा में श्रीमुखवाणी,
लिखमणजी तारीफ आणी ।
अेतो[1] साराही जाण पाई,
इण बल रावणसूं जीतां नै सीता आई ॥
अवर ही इणरी गुणांरी एक २ बात,
रूम रूम जीभ हुवै नैं जपैं दिन रात ।
उमर पिणजिके ब्रह्मारी पावै,
तद क्यूं[2]क कहणी में आवै ॥
इच्छां जिकां बात अँरस[3] सूँ आणैं,
कयां कठांतक[4] जीव हीज जाणैं ।
मन गिणा कि[5] बुधरो भाव,
हात गिणां कनां गिणां पाव ॥
मित्र गिणा कि सखा मित्र,
जो २ गिणां सोदर[6] पवित्र ।

इति पदबंध

अथ गदबंध वचनिका

श्रीमुख सूं हणुमानजी का बखाण । चँक्री[7] विर्चाल[8], रघुबर विसाल, जंपे जरूर सुण भरथ सूर, हणमंत एह इण गुण अछेह, सेवा सुवेस किनो कपेस, वे कहूँ बैण सुण विगत सैंण, पंचवटी

१ यह तो । २ कुछ । ३ आकाश । ४ कहा तक । ५ अथवा । ६ सहोदर भाई । ७ सभा । ८ मध्य में ।

प्रीत रहतां सुरीत, उणठांम आय अवसाण[1] पाय, आसुर अभीत तिण हरी सीत, वन्न जिकण वेर[2] हम करत हेर[3], वनके विहार अंजन कँवार, धुर मिले धाय चित इधक चाय, सिय दीध सोध जी वखत जोध, पटले प्रचीन कप निजर कीन, फिर इण प्रसंग सुग्राव संग, भड हुवो भ्रात वसुधा विख्यात, जल कूद जोस सो चार कोस. ली जाय लंक सोधी निसंक, विध्वंस वाग खल हणे खाग[4], आतस[5] अथाह दे लंक दाह, सिय वयण सार सुण समाचार, लै पाय जंग आयो अभंग, जलनिधि[6]राज पर बंधि पाँज[7], झड अनड़ झाड़[8] आंणे उपाड[9], दल मिले [10]दूठ रिण भिडे [11]रूठ, तेगां अताल वागो [12]विढाल, तिण वखत तात भड लखण भ्रात, चल सगत चोट लग पडे लोट, जद तुरत जाय आणे उठाय, पाणां कपंद द्रुणांगिरंद, तन जडी तार लागी [13]लिगार, लिखमणों [14]लोड ऊठे अरोड, सो तणां मित तोनूं अचित, धुर कह्यो धाय आगम्म आय, रह कपीराज किय किता काज, जस इण जुबांन गिणतान ग्यान, चितकरी चाह श्रीमुख सराह ।

"दूजो भेद इणनूं लोकोक्त सिलोको ही कहै छै ।"

बोलै सीतांपत [15]इसडीजी वांणी, सुरनर नागां नैं लागै सुहांणी ।
सैसाजल[16] हणमंत जिम ही सरसाई, वीरां अवरांरी कीधी वड़ाई ॥
धनुधरा बायक सांभल जो धारा, पोरस अंगा में वधियो अणपारा ।
पुणवे करजोड़ जीतव फल पायो, मांनै श्रीखांवद इतरो फुरमायो ।

---

१ अमय । २ समय । ३ खोज । ४ खड्ग, तलवार । ५ अग्नि । ६ समुद्र । ७ पुल । ८ पाठ-झड़झाड । ९ उखाड़ कर । १० बलवान । ११ क्रोध करके । १२ बेढंगा । १३ थोड़ी सी । १४ छोटा भाई । १५ ऐसी । १६ लक्ष्मण ।

वार्ता

दोय तो दवावैतां तिण में पदबंध दवावैत में मात्रारो नेम नहीं नै गदबंध में चोबीस मात्रारो पद में प्रमाण हुवै ।

इति दवावैत

दोय भेद बचनकारा एक पदबंध दूजी गदबंध, सू पदबंध दोय भेद एक तो बारता दूजी बारता में मोहरा राखणां । दोय गदबंध बचन का है एक तो आठ मात्रारो पद हुवै, दूजी गदबंध में बीस मात्रारो पद हुवै ।

इति बचनका लक्षण

अथ जथावां

दोहा

वयण सुणे रघुबीर रा, उमगे कविअद्भूत ।
जिका तणी करजै जथा, तऊ हमें असतूत ॥

भावार्थ—रामचंद्र के वचन सुनकर कवि हृदय मे बहुत ही प्रसन्न हुआ और अब जथा द्वारा उनकी स्तुति करता है ।

जथा लच्छन

रूपक मांहे रीत जो, वरणन करे विचार ।
सो क्रम निबहै सो जथा, तवै मंछ विसतार ॥

भावार्थ—कविता में वर्णन करने के लिये जिस रीति का आरंभ किया गया हो, उस क्रम के निर्वाह को 'जथा' कहते हैं । उसका मंछ कवि विस्तार से वर्णन करता है ।

जथा नाम

विधानीक, सर, सिर, वरण, अहिगत, आद, अतांण।
सुद्ध, इधक, सम, नूंनसो, जथा इग्यारह जाण॥

भावार्थ—सरल ही है।

विधानीक जथा लच्छन

तुक तुक में क्रम सों तवैं, अवर अवर विधजाण।
सझ चौथी तुक नाम सों, विधानीक बाखांण॥

भावार्थ—इस तरह से प्रत्येक पद में क्रम से जिनका वर्णन किया जाय, उनका नाम उसी क्रम से चौथे पद में जहाँ आता है, वहाँ विधानीक जथा कही जाती है।

उदाहरण

लीधी लंका सी समांपे पाणां फैली मंजु कोस लाखां,
संपासी समंद छोलां सारदा सुवेस।
आहवा अजीत, छाह हमाँऊ पुनीत एही,
रूक, रीभा, क्रीत यूँ तिहारी राघवेस॥ १॥
फुंकार अहेस, हरी चंदणा पयोध फैण,
माहेस त्रिनैंण इंद्र जुन्हाई समाथ।
गिरवाणां सहाई मनोज धेनु ग्यानगोभा,
नाराज, वरीस, सोभा इसी प्रथीनाथ॥ २॥
दंडकाल करंगा तरेस सी गणेसदंत,
सूर प्रलैरसम्मा मणेश सुधासार।
चंडी सूल पारजात मरालां पंकतां चंगी,
किरमालां मोज पंगी कोसल्या कंवार॥ ३॥

पत्रा विहंगेस वाली मंदार हेमंक पव्वै,
धोम कालकूट मेघधारां गंगधार ।
धूप दान क्रीत राम माह वाह मोटा धरणी,
तीनूं बातां तूझतणी मोखरी दातार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—समांपे=समर्पण करना, देना । सपा=बिजली । समद=समुद्र । छोला=उछाल । आहवा=युद्ध । रूक=तलवार । रीझा= =दान । क्रीत=कीर्ति । हरीचंदण=कल्पवृक्ष । माहेस=महादेव । समाथ=समाती है । मनोजधेनु=कामधेनु । ग्यानगोभा=ज्ञान की जड़ । नाराज=क्रोध । दडकाल करंगा=यमराज के हाथ का दड । तरेस=कल्पवृक्ष । सूरप्रलै रसम्मा=प्रलय के सूर्य की किरणें । मणेश=चिन्तामणि । सुधासार=अमृत । पारजात=कल्पवृक्ष । पकतां=पक्ति । किरमाला=तलवार । मोज=दान । पंगी=कीर्ति । पत्रा=पाखै । मंदार=कल्पवृक्ष । हेमंक=हिमालय । पव्वै=पर्वत । धूप=तलवार । माहबाह=बड़े हाथोंवाले । धणी=स्वामी ।

भावार्थ—(मछ कवि रामचन्द्र की तलवार, दान और कीर्ति की प्रशसा में कहते हैं) हे रामचन्द्र, आप की तलवार ने लका जैसी विकट नगरी को जीत लिया है । आपका दान प्रशंसनीय है जो आपने लका पर विजय प्राप्त कर अपने हाथों से दान कर दिया और आपकी कीर्ति लाखों कोसों तक फैल रही है । आपकी तलवार बिजली के समान चमकदार है, दान आपका समुद्र की उछाल के समान है और कीर्ति सरस्वती के सदृश उज्वल है । आपकी तलवार युद्ध में अजेय है, आपका दान हुमा पक्षी की छाया के समान है और आपकी कीर्ति पवित्र है ॥ १ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! आपकी तलवार शेषनाग की फूत्कार के समान प्रलय-कारक है, आपका दान कल्पवृक्ष के समान है, और आपकी कीर्ति समुद्र के झाग के समान उज्वल है । आपकी तलवार शिवजी के तृतीय नेत्र के समान है, आपका दान इंद्र की तरह है और कीर्ति चांदनी के

सदृश्य उज्वल है। आपकी तलवार देवताओं की रक्षक है, आपका दान कामधेनु गाय है और आपकी कीर्ति ज्ञान की जड़ है ॥ २ ॥

हे कौशल्या के पुत्र! आपकी तलवार यमराज के हाथ का दंड है, आपका दान कल्पवृक्ष के समान है और कीर्ति गणेश के दंत के समान है। आपकी तलवार प्रलय के सूर्य की किरणों के समान है, आपका दान चिन्तामणि के सदृश है और कीर्ति अमृत के समान है। आपकी तलवार देवी के हाथ का त्रिशूल है, आपका दान कल्पवृक्ष है और आपकी कीर्ति हंसों की पंक्ति है ॥ ३ ॥

हे बड़े हाथोंवाले स्वामी! आपकी तलवार गरुड की पंखों के समान है, आपका दान कल्पवृक्ष जैसा है और कीर्ति हिमालय पर्वत के समान है। आपकी तलवार विष के समान, आपका दान वर्षा के समान और कीर्ति गगा की धारा के समान है। और यह तीनों ही बातें मुक्ति को देनेवाली हैं ॥ ४ ॥

सरजथा

जथा संख्य कर कर जुगत, सज सांकल इकसार।
जाहि मंछ कवि सरजथा, वरणे विविध विचार ॥

भावार्थ—यथा सख्य अलंकार युक्ति से करके और एक सी उसकी शृङ्खला बनाई जाती है। मंछ कवि अनेक विचार कर उसे सरजथा कहते हैं।

उदाहरण

गीत चोसर

तो पद अविधान प्रवाडा सूरत अरविंद इडग तंत इधकार।
नामैं रटे सांभलै निरखे मसतक जिहैं श्रुत नयण मुरार ॥ १ ॥
पग अविधां गुण बदन अप्रंपर अबुंज अचल सार अभिराम।
बंदै जपै सुणै अवलोके सीस जीभ श्रवणां दृग सांम ॥ २ ॥

पै संज्ञा कीरत मुख प्रीतां वारज अवध मूल दुतवीस ।
प्रणवे भंजैं संगृहे पेखैं उतवंग जवां करण चख ईस ॥ ३ ॥
ओयण नाम चरित्रां आंणण विमल निरंतर भेद सुवेस ।
धोकै कहलै लखै जिके धन घू रसणां श्रव चख अवधेस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अविधान = नाम । प्रवाड़ा = गुण । इडग = अडिग, नाम के लिये आया है । जिहै = जिह्वा । पै = चरण । संज्ञा = नाम । दुतवीस = कांतिवाला । ओयण = पग । धोकै = नमस्कार करना । घू = मस्तक ।

भावार्थ—हे मुरारि, आपके चरणों को, (सम्पूर्ण मनुष्य) मस्तक झुकाते हैं, नाम को जिह्वा से रटते हैं, गुणों को कानो से सुनते हैं और आपके स्वरूप को आँखों से देखते है ॥ १ ॥

(आगे के तीनों द्वालों का अर्थ भी ऊपर की तरह ही है)

दूजो भेद

दोयण रमणीय कवेसुर दासां जज्र समर सुरतर निज जोत ।
अवध भूय दरसै तो वालां अवनी सोहे रूप उद्योत ॥

शब्दार्थ—दोयण = शत्रु । रमणीय = रमण करने योग्य, स्त्री । जज्र = वज्र । समर = स्मर, कामदेव । तोवाला = तुम्हारा ।

भावार्थ—हे अयोध्या के राजा (रामचंद्र) । आपके रूप का प्रकाश पृथ्वी पर शत्रुओं को वज्र, स्त्रियों को कामदेव, कवीश्वरों को कल्पवृक्ष और भक्तों को आपकी शुद्ध ज्योति दिखलाई पड़ता है ।

विशेष—उक्त सारजथा के दोनों भेदों में और मिश्र तीसरे और चौथे भेद में थोडा ही अंतर है । प्रथम भेद में तो केवल यथा संख्य अलंकार द्वारा ही वर्णन किया जाता है, दूसरे भेद में यथासंख्य के साथ उल्लेख अलंकार भी होता है, और तीसरे भेद में देखनेवाले, या समझनेवाले का नाम अंत मे आता है और अलंकार उल्लेख ही होता

है और चौथे भेद में जिसका वर्णन किया जाता है, उसका नाम प्रथम आता है और प्रथम भेद में अंत में आता है और प्रथम और चतुर्थ भेद में अलंकार यथा संख्य ही आता है। (उदाहरणों से अच्छी तरह समझ में आ जायगा)

तीजो भेद

तरुपत सी रीझ वज्र सी तेगां अरणव जिसी दया वरियांम।
अरथी असुर संत जण ऊपर राजै तूझ तणी रघुरांम॥

शब्दार्थ—अरणव = समुद्र। वरियाम = श्रेष्ठ। अरथी = याचक।

भावार्थ—हे रघुकुल के रामचंद्र! आपका दान याचकों को कल्पतरु के समान है, आपकी तलवार राक्षसों को वज्र के समान है, आपकी दया संत पुरुषों को समुद्र के समान है।

चौथो भेद

तुव नाम कथा दरसण भगताई ररै सांभलै करै धरंत।
रसणां श्रवण लोयणां हिरदै सोई धिन्न वसुधा में संत॥

भावार्थ—हे प्रभो! वही संत पुरुष पृथ्वी पर धन्य हैं जो आपके नामको जिह्वासे रटते हैं, आपकी कथा को कानों से सुनते हैं, आपके दर्शन आँखों से करते हैं, और आपकी भक्ति को हृदय में धारण करते हैं।

सिरजथा लछन

जथा वरण पहली जतां, अंत सुद्ध इकसार।
रूपक इण विध सूं रचै, सो सिरजथा संवार॥

भावार्थ—इस विधि से जहां कविता की जाती है कि प्रथम द्वाले में जो वर्णन किया जाय, वह अंत तक एकसा होता चला जाय, वहां सिरजथा होती है।

उदाहरण

अवतारां छात नमो अवधेसर सझतोवाला प्रातसमै ।
चरणां नहीं नमायो चाचर नर वे अवरां चरण नमैं ॥१॥
चंद चकोर जेम हुय अणचल प्रेम करै ते नेम पकै ।
सनमुख आय तकी नह सूरत ते पर सूरत न्याय तकै ॥२॥
रसणां नाम ध्यान उर धरिया जप माला कर कीध जिरै ।
आप ठोड जे उमंग न आया फिरता ठोड अनेक फिरै ॥३॥
रजनी दिवस एकरंग रावत वयणमनां सुरवंद विकै ।
ओलग जिकान की तो आगल जण जणरे ओलगै जिकै ॥४॥

शब्दार्थ—अवतारां छात = अवतारो के रक्षक । चाचर = मस्तक । पकै = परिपक्व । जिरै = जो । ठोड = स्थान । रावत = मनुष्य । ओलग = रात्रि को जागकर भजन कीर्तन करना ।

भावार्थ—हे अवतारो के रक्षक रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है । जो मनुष्य प्रातःकाल आपके गुणों को समझ कर नमस्कार नहीं करता, वह औरों के पैरों पड़ता है ॥ १ ॥

जो चद्रमा और चकोर की प्रीति के सदृश नियम से प्रेम करे उसका प्रेम पक्का होता है । किन्तु जो आपके सन्मुख आकर आपकी सूरत को नहीं देखता, वह दूसरो के मुख को ताकता है ॥ २ ॥

जो मनुष्य अपनी जिह्वा से आपका नाम लेता हुआ, चित्त में आपका ध्यान धरता हुआ और माला हाथ में लेकर आपके स्थान पर उमग कर नहीं आता, वह अनेक स्थानो पर फिरता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य रात दिन इच्छानुसार बोलता है, किन्तु आपके आगे जिसने रात्रि जागरण नहीं किया, वह प्रत्येक मनुष्य के आगे गाता बजाता फिरता है ॥ ४ ॥

"दूजो गीत"

मूके सर हेक ताडका मारी चंड सुवाहु हणे कर चाव ।
जिग मे कियो धनुष भंग जालम, रंग भुजां थारा रघुराव ॥ १ ॥
दनुज कवंध त्रिसर खर दूखण सपत ताड वेधे इक साथ ।
वाळ जिसा छेदे अतुलो वळ नमों तूझ बाहां सियनाथ ॥ २ ॥
अण संख्या मेटे असुराणों रावण कुंभ आद खलरेस ।
निडर किया सुर नर नागां ने आचां तो भामी अवधेस ॥ ३ ॥
लीधो गढ़ पल में लंका रो सुपह वभीष थपे थिर संत ।
पाणां एण तिहारी ऊपर वारी हूँ प्रभु वार अनंत ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मूके=चलाये। हेक=एक। जिग=यज्ञ। रंग= धन्य है। वाहां=हाथ। खलरेस=दुष्टों को नष्ट करके। आचां=हाथ। भामी=न्योछावर, वलिहारी। सुपह=राजा।

भावार्थ—(मंछ कवि रामचद्र के हाथों की प्रशंसा में कहते हैं) हे रामचद्र! आपकी भुजाओं को धन्य है, जिनके द्वारा आपने एक ही वाण चलाकर ताडका नामक राक्षसी को मार डाला, उमंग से प्रचंड सुवाहु नामक राक्षस को मारा और जनक के स्वयम्बर में बड़े भारी धनुष को तोड़ा ॥ १ ॥

हे सीतापति! (रामचंद्र!) आपकी भुजाओं को नमस्कार करता हूँ जिनके द्वारा आपने कवंध, त्रिशर, खर और दूखण नामक राक्षसों को मारा, एक ही साथ सप्तताड के वृक्षों को वेध दिया और वाली जैसे वड़े भारी वलवान को छिन्न भिन्न कर दिया ॥ २ ॥

हे अयोध्या के स्वामी! (रामचंद्र!) आपके हाथों की वलिहारी है जिनके द्वारा आपने रावण और कुंभकर्ण आदि असंख्य राक्षसों का जडमूल से नाश करके देवताओं, मनुष्यों और नाग देवों को निडर किया है ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! मैं अनंत बार आपके इन हाथो पर वलिहारी हूँ जिनके द्वारा आपने पल भर में लंका को ले लिया और अपने भक्त विभीषण को वहा का राजा स्थापित किया ॥ ४ ॥

वरणजथा लच्छन

किया जाय वर्नन सुकवि नवो नवो वरणाव ।
वरण जथा जिणनूं विमल, चवै मंछकर चाव ॥

भावार्थ—जिसमें सुकविगण नवीन वर्णन करते जायँ, उसको मंछ कवि वर्णजथा कहते हैं ।

उदाहरण

पावडियां सहत नरम पद पंकज,
नूपुर-हाटक परम पुनीत ।
छक कडबंध सुचगां छाजै
पट अंगा राजै पुंण पीत ॥ १ ॥
पुणचा जडत जड़ाऊ पुणची,
कल आजान भुजा केयूर ।
वैजंती बल मुगत विसाला,
प्रगट हियै माला भरपूर ॥ २ ॥
कंडसरी ग्रीवा श्रुत कुंडल,
चंदण निले तिलक दुत चंद ।
सिर सिरपेच सुघट हीरा सद,
क्रोट मुगट सोभैं सुखकंद ॥ ३ ॥

---

१ भर, पाठांतर है ।

जलधर वरण भगत भव भंजण,
सीता मन रंजणा सज साथ।
मो मन आंण सुजांण सिरोमण,
नित इण वांण वसो रघुनाथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—पावडिया = खडाऊँ। सहत = सहित। हाटक = स्वर्ण। छक = श्रेष्ठ। कडवध = किंकिणी। सुचंगा = सुंदर। पुणचा = पहुँचा हाथ का। पुणची = भुजबंध। मुगत = मोती। कंठसरी = कटसरी, ग्रीवा के भूषण का नाम। चदण निले = मलयागिरि का चंदन। सुघट = अच्छे घाट का। वाण = बनाव।

भावार्थ—खडाऊँ सहित कोमल चरण कमलों में स्वर्ण के पवित्र नूपुर हैं, कमर में श्रेष्ठ किंकिणी और शरीर पर सुंदर पीला वस्त्र सुशोभित होता है ॥ १ ॥

हाथ के पहुँचे पर जडाऊ पहुँची और सुंदर आजानु भुजाओं पर भुजबंध सुशोभित हैं। हृदय पर बड़े बड़े मोतियों की वैजयंती माला है ॥२॥

ग्रीवा में कठसरी, कानों में कुंडल, (ललाट पर) मलयागिरि चदन का द्युतिवंत तिलक और मस्तक पर अच्छे घाट के सच्चे हीरों का सिरपेंच, किरीट और मुकुट सुशोभित होता है ॥ ३ ॥

भक्तों के भय को नाश करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों के सिरमौर राम मेघवर्ण और मन को प्रसन्न करनेवाली सीता के साथ हमेशा इस रूप से मेरे मन में निवास करे ॥ ४ ॥

"अहिगत जथा लच्छन"

रचवैं कवियण रूपगां, गवण सरप जिम गीत।
कहैं मंछ तिणनूं सुकवि, अहिगत जथा अभीत ॥

भावार्थ—कवि लोग कविता में सर्प की चाल के अनुसार जो वर्णन करते हैं, उसको सुकवि मंछ भय रहित अहिगत जथा कहते हैं।

'उदाहरण'

तरवर नदियांण सुरसरी सुरतर, सरपां गज ऐरावत सेस ।
सरां नखत रजनीस मांनसर अवनीसां ओपम अवधेस ॥ १ ॥
पाहण वरत इग्यारस पारस, सांमत कुसुम कंज सामीर ।
विवुधां गिरां हेमगिरि वासव, वसुधा भूप सिंघा रघुबीर ॥ २ ॥
मिण धनुधरां पाथ चिन्तामण, ग्रहां धरम करुणां ग्रहराज ।
ग्यानी कला बीणधर गोतम, सुपहां में रघुबर सिरताज ॥ ३ ॥
ग्रंथां जतियां लखमण गीता मुनि विहंगा तारक ससि माथ ।
सतियां नाम रामसू सीता, नरपतियां ओपम रघुनाथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सरा = तालाब । पाहण = पत्थर सांमत—युद्ध । वासव = इंद्र । वीणधर = नारद । तारक—गरुड ।

भावार्थ—वृक्षो में जिस प्रकार कल्पवृक्ष है, नदियों में जिस प्रकार गंगा है, सर्पों में जिस प्रकार शेषगण हैं, हाथियों में जिस प्रकार ऐरावत है, तालों में जिस प्रकार मानसरोवर है और नक्षत्रों में जिस प्रकार चद्रमा है, उसी प्रकार राजाओं में अयोध्यापति रामचंद्र जी सुशोभित होते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार पत्थरो में पारस, व्रतों में एकादशी व्रत, योद्धाओं मे हनुमान, पुष्पों में कमल, देवताओं में इन्द्र और पहाडों में हिमालय है, उसी प्रकार पृथ्वी पर राजाओं में रामचंद्र सिंह हैं। जिस प्रकार मणियों में चिन्तामणि, धनुर्धारियों में अर्जुन, ग्रहो में सूर्य, धर्म में दया, ज्ञानियों में गौतम और नीतियों में नारद है, उसी प्रकार राजाओं में रामचंद्र सिरताज है। जिस प्रकार ग्रथों में गीता, यतियों में लक्ष्मण, मुनियो में शिव, पक्षियों में गरुड, सतियों में सीता और नामों में राम नाम है, उसी प्रकार राजाओं में रामचंद्र सुशोभित है ॥ ४ ॥

आद जथा लच्छन

वरण करै जिण नाम विध, आद द्वालैं आण।
क्रस क्रम पछला में कहै, जथा आद सो जाण ॥

भावार्थ—जिसका वर्णन किया जाय, उसका नाम प्रथम द्वाले में लाया जाय। फिर क्रम से आगे के द्वालों में वर्णन किया जाय, उसे आदजथा समझना चाहिए।

उदाहरण

प्रसध नाम इधकार जगजारे मोटी पणो,
अतुल दातार कीरत उजाळा।
भलमवातां चिहुँ बेस आणियां भमर,
वाहरैं कंवर अवधेस वाळा ॥ १ ॥
तरंगां तुंग अणथाह आपार तस,
करै नह नाव उपचार किरिया।
महण जिण नाम थी चार सो कोस में,
तरवरां पांन जिम गिरंदतिरिया ॥ २ ॥
धनुष किय भंग मद मलै फरसा धरण,
कीसपत बालसा ढले काथा।
मार खल अनेकां बळे दस माथरा,
मोख सर एकदस दळे माथा ॥ ३ ॥
दुरद धज दिख गढ़राज कितरा दिया,
कीगिणां बडम सो अचल कीधी।
तुव नमो नाथ पुर स्वान सूकर तिका,
देव दुरलभ जिका मुगत दीधी ॥ ४ ॥

सिव तिलक चिहुर विध सेस तन मण सरप,
छत्र नृप अभूपण नरां छाजै ।
सुरग पाताल मृतलोक तीनां सरस,
राज जस तणो सिणगार राजै ॥ ५ ॥
खलक तारण तरण खलां खंडण खतम,
रोर जण विहंडण सुखद सरसैं ।
सियावर तूझसो तुही दाखै सको,
दूसरो समो वड़ न को दरसै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—प्रसध = सिद्ध । इधकार = अधिकार । जार = जाहिर । माटीपणौं = स्वामीपन । उजाला = उज्वलता । भलम = अच्छी । अणि-याभमर = फौजों के भ्रमर । वाहरे = धन्य २ । तुंग = ऊँची । महण = समुद्र । तरवरा = वृक्षों के । पान = पत्र, पत्ते । मदमलै = मानमर्दन किया । फरसाधरण = परशुराम । ढलै = मारा गया । काथा = वलवान् । धज = घोडे । दिरब = द्रव्य । कितरा = कितने ही । की गिणां = कहांतक गणना करे । वड़म = वड़प्पन । अचड़ = अचल । चिहुर = केश । खलक = संसार । खतम = खूब । रोर = दारिद्र । सको = सब कोई । समो वड़ = वरावरी का ।

भावार्थ—हे अयोध्यापति के पुत्र (रामचन्द्र) आप धन्य हैं । आपका स्वामित्व और नाम का अधिकार जगत मे प्रसिद्ध है । आप का वड़ा भारी दानीपन, कीर्ति की उज्वलता और सेना के भवरापन ये चारो वातें श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥

उच्च तरंगोंवाले, अथाह और अपार जलवाले समुद्र मे नाव का उपचार कुछ भी काम का नहीं रहता । उस समुद्र मे चार सौ कोस तक आपके नाम से वृक्षों के पत्तो की तरह पहाड़ तैरे हैं ॥ २ ॥

आपने (जनकपुर मे) धनुष को तोड़ा है, परशुराम के मद का

नाश किया है, बाली जैसे बलवान बंदरों के स्वामी को मारा है, अनेकों राक्षसों को मारा है और फिर एक ही बाण चलाकर रावण के दसों मस्तक काट गिराये हैं ॥ ३ ॥

आपने हाथी, घोड़े, द्रव्य, किले और राज्य कितने ही दिये हैं। उनकी गणना कहाँ तक करें। आपने अपने बड़प्पन को अचल कर दिया है। हे नाथ ! आपको नमस्कार करता हूँ। आपने देव-दुर्लभ मुक्ति अयोध्या के सूअर कुत्तों तक को भी दे दी है ॥ ४ ॥

शिव के तो तिलक रूप में, ब्रह्मा के केश रूप में, शेष के तन रूप में, सर्पों के मणि रूप में, राजाओं के छत्र रूप में, और मनुष्यों के आभूषण रूप में आपके यश का शृङ्गार स्वर्ग, पाताल और मृत्यु तीनों लोकों में सुशोभित हो रहा है ॥ ५ ॥

आप संसार में तरन-तारन हैं। दुष्टों को मारकर आपने हद कर दी है। आप अपने भक्तों के दारिद्र को नाश करनेवाले हैं और आप सबको सुख देनेवाले हैं। अतः हे सीतापते, सब कोई यही कहते हैं कि आप जैसे आप ही हैं। आपके बराबर दूसरा कोई नहीं दिखाई पड़ता ॥ ६ ॥

अंतजथा लच्छन

अनुक्रम द्वाला आदसूं, विध विध करै विचार ।
मुदो अंत द्वाला मही, अंतसु जथा उचार ॥

भावार्थ—अनेक प्रकार से वर्णनीय का प्रथम द्वाले से क्रम से वर्णन किया जाता है और उसका मतलब (खुलासा) अंत के द्वाले में किया जाता है, उसे अंतजथा कहते हैं।

उदाहरण

इकबीसे बार नछत्री अवनी, कीधी पोरस धार करूर।
डर बधियो दुजराज अमायो, दरप गमायो जिणरो दूर ॥ १ ॥

वाहां वीस तणें भय बंधव, छुले वभीख पनाहां लीध।
रखे ओट तिणनूं फिर राजा, कनक दुरंग सकाजा कीध ॥ २ ॥
कीर ग्रीध सवरी जिण केता, मन सुध भगत करी अणमाप।
जांमण मरण भंवण जग व्हांसे, आवा गमण मिटायो आप ॥ ३ ॥
सेस महेस गणेस सारदा, नारद सुर ग्रंधप नर नार।
पुणै दिवस रजनी गुण तोविण, पामें नह चिरतांरो पार ॥ ४ ॥
गृभ गंजण रिच्छक सरणागत, संताभव भंजण संसार।
सद उपमां जितरी तो साजै, तितरी ही छाजै करतार ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—वाहांवीस = रावण। पनाहां = शरण। दुरंग = दुर्ग। अणमाप = बहुत। जामण = जन्म लेना। चिरतांरों = चरित्रों का।

भावार्थ—जिसने पृथ्वी को २१ बार कठिन परुषार्थ को धारण कर क्षत्री रहित कर दिया था, ऐसे उस ब्राह्मण परशुराम का हृदय में बढा हुआ दर्प आपने दूर किया ॥ १ ॥

बीस भुजावाले रावण का भयभीत भाई वीभीषण नम्र होकर शरण में आया। उसे आपने रक्षा में रखा और फिर उसे सोने की लका का राजा बना दिया ॥ २ ॥

शुकदेव, जटायु और शबरी आदि कितने ही भक्तों ने आपकी शुद्ध मन से बहुत भक्ति की थी। उनका आपने जन्म और मरण होना और आवागमन मिटा दिया ॥ ३ ॥

शेष, महेश, गणेश, सरस्वती, नारद, देवतागण, गंधर्वगण और स्त्री-पुरुष आपके गुण रात-दिन गाते हैं। फिर भी वे आपके चरित्रों का पार नहीं पाते ॥ ४ ॥

हे ईश्वर! आप गर्व के नाशक हैं, शरणागतों के रक्षक हैं और सत पुरुषों के संसार के दुःखों का नाश करनेवाले हैं। संसार में जितनी श्रेष्ठ उपमाएँ हैं, वे सब आपको सुशोभित होती हैं ॥ ५ ॥

सुधजथा लच्छन

घुर द्वाले परबंध सो, द्वाले. द्वाले. देख ।
आद अंत निरभाव इक, लखण जथा सुधि लेख ॥

भावार्थ—प्रथम द्वाले. में जो वर्णन किया जाता है, वही आदि से अंत तक के द्वाले. में देखा जाता है। यही शुद्धजथा का लक्षण समझो।

उदाहरण

अवधनाथ तोनूं नमो परम मेटण अगत,
घर सगत तिरै ते भगत वारैं ।
आप पावां पगत वहै इल ऊपरां,
तिका गंगा सकल जगत तारै ॥ १ ॥

तूझभांमी धनुष धरण तारण तरण,
लिये गत ठीक जे सरण लेवैं ।
छुवै तुव चरण परवाह अवनी छिलै,
दुख हरण सरत जग मोख देवै ॥ २ ॥

कृपानिध भांमणै तूझ टालण कुगत,
झटक जण न्यायते सुगत झेलैं ।
परस कदमां चली जुगत भव भूम पर,
माहसो नदी भव मुगत मेलैं ॥ ३ ॥

तारवै अनेकां दया महरांण तस,
गिणां की वड्म ग्रंथांण गावै ।
तो उदक ओयणं आंण लागै तनां,
पद जिके जीव निरवांण पावै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—परम अगत=बड़ी भारी कुगति। घर सगत तिरै=पृथ्वी में शक्ति तैरती है। पगत=नित्य। इल=पृथ्वी। भामी=बलिहारी। महरांण=समुद्र। ओयणा=चरण।

भावार्थ—हे अयोध्या के स्वामी! (रामचन्द्र!) आपको नमस्कार करता हूँ। आप बड़ी भारी कुगति को मिटानेवाले हैं। जो मनुष्य आपकी भक्ति को धारण करता है, वह उस शक्ति से (संसार से) तैर जाता है (इससे बढ़कर तो यह बात है) आपके चरणों से नित्य जो पृथ्वी के ऊपर बहती है, वह गंगा सम्पूर्ण ससार को तारती है॥ १॥

हे धनुर्धारी! तारण-तरण! आपकी बलिहारी हूँ। जो आपकी शरण में आता है, वह श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है। और आपके चरणों का स्पर्श कर जिसका प्रवाह पृथ्वी पर बहता है, वह दुःख हरनेवाली नदी संसार को मोक्ष देती है॥ २॥

हे कृपानिधि! कुगति टालनेवाले! मैं आपकी बलिहारी हूँ। जो आपके सच्चे भक्त हैं, वे शीघ्र ही सुगति को प्राप्त होते हैं। आपके चरणों का स्पर्श करके जो शिवजी की युक्ति से पृथ्वी पर चलती है, वह महानदी गगा इस संसार से मोक्ष को भेज देती है॥ ३॥

हे दया के समुद्र! आपने अनेकों को तार दिया है। कहाँ तक गणना की जाय। बड़े-बड़े ग्रंथ गुणगान करते हैं। आपके चरणों के जल के जिनका शरीर आकर लग जाता है, वे जीव निर्वाण पद प्राप्त करते हैं॥ ४॥

इधक जथा लच्छण

कर रूपक ऊपर करै, रीत अवर वतरेक।
इधक जथा सो मंछ इम, वरणें इधक विवेक॥

भावार्थ—वर्णनीय का वर्णन रूपकालकार द्वारा करके उस पर व्यतिरेकालंकार रखें। उसे मंछ कवि अधिक विवेक के साथ अधिक जथा वर्णन करता है॥

उदाहरण चंद्रमा सूं रूपक

करणमोद जण प्रकाशक धरण मंजुल कला,
तरण वल्लभ अमो सहज ताजा ।
इला सारी नमैं कहै लख आरखो,
रयणपत सारखो रामराजा ॥ १ ॥
विसंभर जिका आ केम मानां वती,
उडपति समो वड आप वालै ।
करैं प्रतिपाळ ओ ओषधी चकोरां,
परम थिरचिर जंतु सरव पालै ॥ २ ॥
कितै इक जास परकास मृतलोक में,
लोक त्रिय तूझ परकास लोपैं ।
कलाधर तणी घट वाढ़ै षोडसकला,
अचल तो बोहोत्तर कला ओपे ॥ ३ ॥
प्रभा रवतणी सूं वधैं उणरी प्रभा,
तूझसू वधे रव प्रभा तेई ।
सुधाश्रव अमर उण कियो नह सांभल्यो,
कियां तैं अमर न्यारीत केई ॥ ४ ॥
जोय दिन बीज वंदै जगत जेणने,
रिधू वंदै तनै सुजस रोडै ।
तितर गुण इधक वाखांण जे ताहरा,
जाणजैं किसी विध चंद जोड़े ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तरण वल्लभ = स्त्री को प्यारा । आरखो = परीक्षा करो । सारखो = जैसा । केम = केसै । मानां = जानैं । वती = बात । थिरचिर =

त्रसस्थावर। रव = रवि, सूर्य। दिन बीज = द्वितीया के दिन। रिधू = हमेशा। रोडै = एकत्र करते हैं। ताहरा = तुम्हारे।

भावार्थ—भक्तों को आनंदित करनेवाले, श्रेष्ठ कला से पृथ्वी पर प्रकाश करनेवाले, स्त्रियो के प्यारे और अमृत जैसे श्रेष्ठ स्वभाववाले आपको देखकर सम्पूर्ण पृथ्वी नमस्कार करके कहती है कि देखो, राजा रामचन्द्र चन्द्रमा के समान हैं ॥ १ ॥

विश्वंभर (विश्व का भरण-पोषण करनेवाले) हैं, वे चन्द्रमा के सदृश हैं यह बात कैसे मानी जाय ? यह चन्द्रमा तो ओषधि और चकोरों ही का पालन करता है और रामचन्द्र त्रस और स्थावर दोनो प्रकार के सब प्राणियों का प्रतिपालन करते हैं ॥ २ ॥

चन्द्रमा का प्रकाश तो केवल मृत्यु लोक मे ही है और आपका प्रकाश तीनों लोको का उल्लंघन कर जाता है। और चन्द्रमा की सोलह कलाएँ तो घटती बढ़ती रहती है; पर आपकी बहत्तर कला भी अचल सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

उसकी (चद्रमा की) प्रभा तो सूर्य की प्रभा से बढ़ती है और सूर्य की प्रभा आपसे वृद्धि को प्राप्त होती है। उस सुधाश्रव-अमृत के झरने (चद्रमा) ने किसी को अमर किया, यह बात तो सुनने में नहीं आई। और आपने कितनों ही को अमर किया, यह प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

इस चद्रमा को तो द्वितीया के दिन ही देखकर संसार नमस्कार करता है। और आपको बारंबार नमस्कार करते हैं और आपके यश को एकत्र करते हैं। आपके गुण उसके गुणों से अधिक कहते हैं। तो फिर आपको चद्रमा के बराबर कैसे समझें ॥ ५ ॥

दूजो गीत

ध्यावै नर नृपत नृपत सुर ध्यावै, सुर ध्यावै इंद्रादि सधीर।
ध्यावै इंद्र रुद्रादिक धारण, रुद्र तनै ध्यावै रघुबीर ॥ १ ॥

लेकर दरबार में उपस्थित होता है। सावचेत — सावधान। दुबाह — दोनों बातें। अहयो — हे, संबोधन।

भावार्थ—यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड तो २१ सूबा है गुणी इन्द्र सूबेदार है। खंड द्वीप अक्षौहिणी सेना ये सत्तर खाने और बहत्तर सूर हैं। ब्रह्मा मंत्री हैं, महादेव सेनापति हैं, धैर्यवन्त, धर्मराज कोतवाल हैं, चतुर चित्रगुप्त आपके दरबार का प्रसिद्ध नवसंदा है॥ १॥

अष्ट सिद्धियों और नव निधियों को बड़े-बड़े खजाने समझो, सभा में इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता सेना में हाजिर रहते हैं और नवोग्रह सर्वदा आज्ञानुसार ऊँदी का कार्य करते हैं॥ २॥

चौरासी लाख जो पवन हैं और संसार में चराचर जितने प्राणी हैं, वे सब प्रजा हैं। और फिर उनका स्वामी ऐसा सावधान है कि उनका पल-पल में प्रतिपालन करता है॥ ३॥

हे राम, आपका विरद अथाह है। आप बादशाहों के भी बादशाह हैं और आप 'राजा को रंक' और रंक को राजा करते हैं जो मन की इच्छा होती है, दोनों बातें-करते हैं॥ ४॥

न्यूनजथालच्छन

धुर द्वाले रचना धरै, मंछ करे परमांण।
करे जिकणसूं न्यूमक्रम, जथा न्यूनसोजाण॥

भावार्थ—मंछ कवि कहते हैं कि जहाँ प्रथम द्वाले में वर्णन का जो प्रमाण किया गया हो, आगे उससे न्यून वर्णन किया गया हो, वहाँ न्यूनजथा समझो।

उदाहरण

कणां मेह सावण कुशल कवण गिणती करै,
उडै पंखी कवण जाय आभै।

इसो तेरू कवण फाड आवै उदध,
लछीवर कवण नर पाल लाभै ॥ १ ॥

तवैं कुण मेघ परमांण वूंदा तणो,
जिदे खग कवण असमांग जावै ।
तोय पैराककुंण मांह वारध तिरै,
पुरुप कुंण ताहराचिरत पावै ॥ २ ॥

गहर मतवंत कुंण मेह छांटांगिणें,
भेदवे कवण नभ आप भाणे ।
जोरवर कवण सौपेंड लंघै जलध,
जगतपत तूझ गत कवण जाणें ॥ ३ ॥

कही विध हुवै तहतीक वरषा कणा,
वले परसे अरस कहे किणवार ।
तोयधर कदाचित पार लंघै तऊ,
प्रभू गुण ताहरा न लाभै पार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कणां = कण, बूँद । आभै = आकाश । तेरू = तैरने-वाला । लछीवर = लक्ष्मीपति । पैराक = तैरनेवाला । आपभाणै = पक्षी । तहतीक = निश्चय । पेड = पांवडे, डग । अरस = आकाश ।

भावार्थ—श्रावण के मेघ की बूँदो की कौन चतुर गणना कर सकता है ? कौन सा पक्षी आकाश में जाकर उड़ सकता है ? ऐसा कौन सा तैरनेवाला है जो समुद्र को पार कर सकता है ? हे लक्ष्मीपति रामचन्द्र ! कौन मनुष्य आपके गुणों का पार पा सकता है ॥ १ ॥

कौन सा मनुष्य मेघ की बूँदों का प्रमाण कह सकता है ? कौन सा पक्षी हठ करके आसमान में जा सकता है । कौन सा जल में तैरनेवाला

समुद्र में तैर सकता है ? और कौन सा मनुष्य आपके चरित्रों का पार पा सकता है ॥ २ ॥

कौन सा गंभीर बुद्धिवाला मनुष्य मेघ की बूँदों को गिन सकता है ? कौन सा पक्षी आसमान को भेदन कर सकता है ? ऐसा कौन सा बलवान तैरनेवाला है समुद्र को उलांग सकता है ? और हे जगतपति ! आपकी गति कौन जान सकता है ? ॥ ३ ॥

किसी प्रकार से मनुष्य मेघ की बूँदों का निश्चय कर ले, किसी समय आकाश को पक्षी स्पर्श कर ले, और कदाचित् मनुष्य समुद्र को पार कर ले, किन्तु हे प्रभो ! आपके गुणों का पार नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ४ ॥

दूजो भेद इणनूं लुप्तजथाविण कहें छै

कह पीवै कवण समंद विण कुंभज, अचै कवण जहरविणईस ।
त्रिभवण जीत असुरपत जिणतूं, दलै कवण तो विण जगदीस॥१॥
धारे उदर अगस्त पयोधर, जालै कालकूट जोगेस ।
जोरांवरां बीस भुज जेहा, धडचै सोतूहिज अवधेस ॥२॥
सोखै मुनिंद जलाहल सायर, संकर गहे हलाहल संघ ।
राघव तूझ विनां रावणरा, काटै कुण दूजो दसकंध ॥३॥
वारध मुनि पीधो त्रंबक विष, जिके प्रकट दरसे जगजांण ।
दे रीठां नीठां तै दाणव, दीठा सो न अजूं दइवांण ॥४॥

शब्दार्थ—कुंभज = अगस्त ऋषि । अचै = खाना । जोगेस = महादेव । धडचै = मारै । त्रंबक = शिव । रीठां = दड । नीठां = नाश किये ।

भावार्थ—(मंछ कवि ईश्वर से पूछता है) हे जगदीश ! यह कहिये । अगस्त ऋषि के बिना, समुद्र कौन शुष्क करता ? महादेव के

बिना जहर कौन खाता ? और आपके बिना त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को कौन मारता ? ॥ १ ॥

हे अयोध्या के स्वामी ! अगस्त ऋषि ने समुद्र को अपने उदर में धारण कर लिया, महादेव ने जहर को भस्म कर दिया और आपने बलवान बीस भुजावाले रावण को मारा ॥ २ ॥

हे रामचन्द्र ! अगस्त ऋषि ने बड़े भारी समुद्र को शुष्क कर दिया, महादेव ने हलाहल जहर को ग्रहण कर लिया और आपके बिना दूसरा ऐसा कौन है जो रावण के दस मस्तक काटता ॥ ३ ॥

अगस्त मुनि ने तो समुद्र को, और महादेव ने विष को पी लिया है। फिर भी वह समुद्र और विष संसार में दिखलाई पड़ते हैं। हे दद्रवाण ! (रामचन्द्र !) आपने दंड देकर राक्षस रावण को जो मारा वह आज तक दिखाई नहीं देता ॥ ४ ॥

इति जथा

अथ निसानियां

दोहा

जथा इग्यारह जेणमें, रची सतुत कविराव ।
द्वादस नीसाणी दखूं, भूप अवध परभाव ॥

भावार्थ—सरल ही है।

शुद्ध निशाणी लक्षण

कल तेरह फिर दशकला, दे मोहरे गुर दोय ।
कली एक ते बीस कल, शुद्ध निसाणी सोय ॥

भावार्थ—शुद्ध निसाणी वह होती है जिसमें पहले तेरह मात्राएँ और फिर दस मात्राएँ इस प्रकार २३ मात्राएँ प्रत्येक पद में होती हैं और तुकांत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

सिंघ अजा सामळ सलल पीवै इक थाला,
तसकर दबे उलूक ज्यूँ ऊँगां किरणालां ।
पहीन छेडै पारको चिहुँवरण विचाला,
ऐसा राज करै अवध दशरथ नृपबाला ॥

शब्दार्थ—अजा = बकरी । सामल = एक साथ । किरणांला = सूर्य । पारकी = अन्य की । विचाला = मध्य में ।

भावार्थ—अयोध्या के स्वामी दशरथ नृप के पुत्र इस तरह राज्य करते हैं कि उनके राज्य में सिंह और बकरी एक साथ पानी पीते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय से उल्लू छिप जाते हैं, उसी प्रकार उनके राज्य में चोर दब गये हैं और चारों वर्णों में—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों में—कोई दूसरे की गिरी हुई वस्तु नहीं उठाता ।

गरवत निसाणी लक्षण

तेरह कल कर दस तवै, लघु दुइ मोहरे लाय ।
कहे निसाणी मंछ कवि, सो गरवत दरसाय ॥

भावार्थ—सरल ही है ।

उदाहरण

दढ़ प्रताप आठूंदिसा पसरै अवनी पर ।
हितू कमळ फूले विहद भात चक्र हणभर ॥
निस अनीत कहुँ लेस नह तह के दुख तीमर ।
सूरजकुळ सूरज तपैं बड़ तेत सियावर ॥

शब्दार्थ—पसरै = फैला है । चक्र = सभा । तहके = भयभीत हो गये ।

भावार्थ—सूर्यकुल के सूर्य बड़े तेजधारी सीतापति इस तरह तप रहे हैं—आपका दृढ़ प्रताप पृथ्वी पर आठों दिशाओं में फैल रहा है जिससे मित्र, दास और सभासदरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये हैं और अनीति रूपी रात्रि और दुःख रूपी अंधकार भयभीत हो गया है। उसका कहीं नामो निशान भी नहीं है।

निसाणी गध्धर लक्षण

दस अठकल कर सांकल दीजै, चवदै माला फेर चवीजै।
मोहरे जिणरे मगण मिलावै, गध्धर सो नीसाणी गावै॥

भावार्थ—सरल ही है।

उदाहरण

जिण पुर चुपराजै[1] अवरन गाजै केवल मेघ घुरायंदा।
सब रहे ठिकाणे हुकम प्रमाणें, मारुत मते चलाइंदा॥
कालाद अराणें भय नहि आणें भय दुज दीना लायंदा।
राघव राजिन्दा अवधति नंदा, ऐसा राज दिपा यंदा॥

भावार्थ—राजा रामचंद्र ने अपना राज्य इस प्रकार सुशोभित कर रखा है कि निन्दा तो वृद्धि को प्राप्त होती ही नहीं है और शहर में सब शांति से रहते हैं। कोई गर्जना नहीं करता, केवल मेघ ही गर्जना करता है। सब आज्ञानुसार अपने अपने स्थान पर रहते हैं, केवल हवा ही अपने इच्छानुसार चलती है। और काल आदि शत्रुओं का कोई भय नहीं रखता, केवल ब्राह्मणों और गरीबों से भय खाते हैं।

निसाणी पैडी लच्छन

सज ठारह कल सोलै सोलै, झट सांकल तिण मांहिज बोले।
पुन चवदैं मगणांत पुणाजैं, गुणियण पैडी जिका गुणीजै॥

---

१. पा० उपराजै।

भावार्थ—जिसके प्रत्येक पद में अठारह, सोलह और सोलह मात्राएँ सजाकर अनुप्रास मिलाया जाता है और फिर अंत में मगण सहित १४ मात्राएँ कही जाती हैं, उसे गुणवान पैडो निसाणी कहते हैं।

उदाहरण

जिण रइयत सात सुखां सरसई, सातू ईत भीत नहकाई,
निजदळ गवण अगम कर दीरघ घेरत नगर अरंदा है।
षट रित ही सफल कुसुम वन दरखत, षटही साख उपावै हरषत।
बारह मास सदा मन भाया पावस पूर झरंदा है॥
विध हर इंद्रादि थपेथिर थाणां, तज २ सुण बसे गिरवाणां,
ते नर ध्यान धरे निसवासर जै २ सबद ररंदा हैं।
सर[1] सातूँ दीप नऊँ खंडभारी, फैळी उज्जल कीत अफारी।
दसरथ नंद अवधपुर नायक ऐसा राज करंदा है॥

शब्दार्थ—रइयत = प्रजा। अगम = अगम्य। अरंदा = शत्रु। थाणां = स्थान-स्थान पर। ररंदा है = कहते हैं। अफारी = अपार।

भावार्थ—राजा दशरथ के पुत्र और अयोध्या के स्वामी रामचंद्र इस प्रकार राज्य करते हैं जिससे सातों द्वीप समुद्रों में और नवों खंडों में बड़ी भारी कीर्ति फैल रही है। आपके राज्य में प्रजा सातों सुखों को प्राप्त है और प्रजा को सातों ईतिका भय नहीं है। और अपनी फौज को अगम्य स्थानों पर भेजकर शत्रुओं के बड़े-बड़े नगर घेरते हैं। षट ऋतुओं में वन के वृक्षों के फल-फूल आते हैं और छओं शाखें उत्पन्न होती हैं और बारहों महीने मन-इच्छित वर्षा होती है। ब्रह्मा, शिव, इंद्रादि देवता स्थान-स्थान पर स्थापित हैं। देवतागण

---

१. उर पाठान्तर।

स्वर्ग छोड़कर वहाँ आ बसे हैं, और मनुष्य रात-दिन उनका ध्यान लगाकर जय-जय शब्द का उच्चारण करते हैं।

निसाणी सिर खुली लच्छन

कल द्वादस विसराम कर, मोहरा तठै मिळाय।
नव कळ फिर ऊपर निरख, सिर खुल्ली सरसाय ॥

भावार्थ—सरल ही है।

उदाहरण

नाचै मोर निहारे अहिफण ऊपरे,
मूषक सीस न घारैं घात मंजारियाँ।
माहोमाह न मारै बैर बुन्यादराँ,
ऐसै तेज अकारैं राजै रघुपति ॥

शब्दार्थ—मंजारियाँ = बिल्लियाँ। माहोमाह = आपस मे। बुन्यादराँ = परंपरा का।

भावार्थ—रामचद्र अपनी प्रतापमान आकृति से ऐसे सुशोभित हो रहे हैं कि उनके राज्य में मयूर सर्प के फण के ऊपर नृत्य करता हुआ दिखाई पड़ता है, बिल्लियाँ चूहे के मस्तक पर घात नहीं करती हैं। जिनका परपरा का वैरभाव है वे आपस में किसी को मारते नहीं हैं।

निसाणी सोहणी लच्छन

कल तेरह षोडस कला, गुरमोहरा दुयगाय।
सो नीसाणी सोहणी, बेदग कहै बणाय ॥

भावार्थ—प्रत्येक पद में प्रथम तेरह मात्राएँ और फिर सोलह मात्राएँ तथा तुकांत में दो गुरु रखकर, पडित लोग सोहणी निसाणी कहते हैं।

उदाहरण

फिरै नचीता ग्वालिया गायाँ सिंघ करै रखवाली ।
निधडक एण पिलंग सूँ दावालेण लगाकर आली ॥
चिडिया आद विहंग वन बाजाँ हूत हसैं दे ताली ।
बधे गरीबाँ बल इधक ऐसी धाक सियावर वाली ॥

शब्दार्थ—नचीता = निश्चित । निधडक = भय रहित । एण = हरिण । पिलंग = शिकारी कुत्ता । आली = छेड़कर ।

भावार्थ—सीतापति रामचंद्र की ऐसी धाक है कि गौ चरानेवाले निश्चित होकर घूमते हैं और गायों की रक्षा सिंह करते हैं । हरिण भय रहित होकर शिकारी कुत्तों को छेड़कर उनसे दावा लेने लगा है । चिड़ियाँ (पक्षीगण) वन के बाज से ताली दे-दे कर हँसती खेलती हैं । और गरीब मनुष्यों का बल बहुत बढ़ रहा है ।

निसाणी रूपमाला लच्छन

सोरठा

सोलह कल विसराम, करो वले सोलह कला ।
मोरा भगण तमाम, रूपमाळ इण विध रचो ॥

भावार्थ—सरल है ।

उदाहरण

बामण चार वेद के बकता, आगम दृष्टी ग्याँन धुरंधर ।
साहुकार सको धजबंधी दूजी जात अलेप कुरंदर ॥
सारा ही सुखपूर विचारैं निंदत और नरेस दरंदर ।
ऐसी राम प्रभा जिस आगे देखत लागे सहज पुरंदर ॥

शब्दार्थ—बामण = ब्राह्मण। धजबंधी = ध्वजाबंध (जिसके पास एक करोड़ रुपया होता है वह अपने मकान पर ध्वजा लगा सकता है, जितने करोड़ रुपये हों उतनी ही ध्वजाएँ बँधाई जाती हैं) कुरंदर = दरिद्रता। सहज = हलका, तुच्छ। पुरंदर = इंद्र।

भावार्थ—ब्राह्मण चारों वेदों के वक्ता, शास्त्रों में नजर रखनेवाले और ज्ञान में प्रवीण हैं। सभी सेठ साहूकार ध्वजाबंध हैं और अन्य जाति वाले भी दरिद्रता से निर्लिप्त हैं। सभी मनुष्य सुख से रहते हैं, और अपने हृदय में और राजाओं की निंदा करते हैं। इस प्रकार की रामचद्र की प्रभा है कि जिसके संमुख इंद्र भी तुच्छ है।

निसाणी मारु लच्छन

फल षोडस द्वादस करे, म्होरे दुगुरु मिलाय।
मारु निसाणी तिंह मुणैं सुकब मंछ सरसाय॥

शब्दार्थ—मुणैं = कहते हैं।
भावार्थ—सरल है।

उदाहरण

धाम धाम जग होम बेद धुन रिष अभिराम ररंदे।
दयावंत अत साह मोम दिल, हित परपीड हरंदे॥
पवन अवर जिह सुखी अपारौं धन गृह पूर धरंदे।
अदल नीत जगजीत अयोध्या रघुवर राज करंदे॥

शब्दार्थ—रिष = ऋषिगण। साह = साहूकार। ताम = तमाम।

भावार्थ—घर-घर में यज्ञ और हवन होता है और ऋषिगण सुंदर वेदध्वनि कहते हैं। सब साहूकार दयावंत, मोम के सदृश दिल वाले और हितैषी हैं। वे दूसरों के दुःख हरते हैं। वायु और ही प्रकार का है, जिससे

अपार सुख होता है। सबके घरों में पूर्ण धन रखा हुआ है। न्याय और नीति से संसार को जीतकर रामचंद्र अयोध्या में राज्य करते हैं।

निसाणी सिंहचली लच्छन

दोहा

प्रोढ़ गीतरी रीत पढ़, ले पद सिंघविलोक।
सीहचली जिणनूँ समझ, आखै कवि रसओक॥

शब्दार्थ—सिंघविलोक = सिंहावलोकन। ओक = स्थान।

भावार्थ—रस के स्थान पर कविगण, प्रोढ़गीत के पद लेकर सिंहावलोकन कर जो छद बनाते हैं, उसे सिंहचली निसाणी कहते हैं।

उदाहरण

रघुवंस नायक क्रीत जिणरी कवण वरणै साज।
कुण साज वरणै क्रीत जो नर उदध बंधै पाज॥
दध पाज बंधै कवण लावै उतर मारग छेह।
मग छेह उत्तर करै गिणती बूँद सावण मेह॥

भावार्थ—रघुवंश नायक रामचंद्र की कीर्ति का कौन वर्णन कर सकता है? कौन मनुष्य कीर्ति का वर्णन कर सकता है? वह मनुष्य जो समुद्र के पाल बाँध सके। समुद्र के पाल कौन बाँध सकता है? वह जो उत्तर दिशा के मार्ग का अंत ले सके। उत्तर दिशा के मार्ग का कौन अंत ले सकता है? वह जो श्रावण के मेघों की बूँदों को गिन सके। अर्थात् रामचंद्र की कीर्ति का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता।

निसाणी झींगर लच्छन

कला अठारह चवद कळ, मोरा कर मगणाँण।
कहै निसाणी मंछ कवि, झींगर जिका सुजाण॥

भावार्थ—सरल है।

उदाहरण

खटतीसूँ बंस तणा खितधारी विग्रह रूप बरारा है।
धू नामें आय करै निजराणाँ ले धन जिके धरारा है॥
धर धर का हूँत चहुँ चक धूजैं दिल खळ पड़े दरारा है।
कवसल्यानंद जसी का रैणा ऐसा तेज करारा है॥

शब्दार्थ—खितधारी = क्षत्रिय। बरारा = जबरदस्त। धू = मस्तक। निजराणाँ = नजर, भेंट। धरारा = पृथ्वी का। धर = देह। धरका = भय से। चक = दिशा। दरारा = छिद्र। रैणा = पृथ्वी।

भावार्थ—कौशल्या के पुत्र रामचंद्र का पृथ्वी पर बड़ा भारी तेज है। उनके यहाँ छत्तीसों वंश के युद्ध में बड़े तेज हैं (जबरदस्त हैं) सब पृथ्वी के धन को लेकर और मस्तक नवाकर उन्हें भेंट देते हैं। उनके भय से चारों दिशाएँ कंपित होती हैं और दुष्टों के हृदय में छिद्र हो जाते हैं।

निसाणी दुमिला लच्छन

कळ चवदै अरु नव करै, गुरु लघु अंत गिणंत।
मोरा दुय इक पद मिलै, सो दुमिला कवि संत॥

भावार्थ—हे कवि संत, उसे दुमिला कहते हैं, जिसके प्रत्येक प्रथम पद में चौदह मात्राएँ और उसके आगे नव मात्राएँ होती हैं, अंत में गुरु लघु होता है और एक पद में दो तुकांत मिलते हैं अर्थात् चौदह मात्रा का और नव मात्रा का तुकांत मिलता है।

उदाहरण

दंड धजा के होत दार धनुबंका धार।
पळ छ सास पुणजै पुकार, छंद मदरा सार॥

चोरी परचित हरण नार नर जोरी नार।
ऐसा राज करे उदार कवसल कंवार॥

शब्दार्थ—दार=दारु, लकड़ी। पल छ सास=षट् श्वास का एक पल। मदरा=मदिरा, शराव; छंद विशेष।

भावार्थ—कौशल्या के पुत्र रामचंद्र ऐसा उदार राज्य करते हैं कि उनके राज्य में दंड तो है ही नहीं, केवल ध्वजा में लकड़ी का दंड है, वाँकपन केवल धनुष ने धारण किया है। किसी की भी वहाँ पुकार नहीं है। केवल एक पल के षट् श्वास ही की पुकार है। शराब का वहाँ नाम भी नहीं है, केवल मदिरा नामक एक विशेष छंद ही है। चोरी केवल दूसरों के चित्त के हरण करने की है; और स्त्री-पुरुषों की जोड़ी ही देखी जाती है; अर्थात् सब स्त्री-पुरुष की जोड़ियाँ समान वयस की हैं, वाल-वृद्ध की नहीं है।

निसाणी वार लच्छन

कर पहली पनरै कला, पनरे अवर प्रवेस।
रगण अंत मोरे ररै, वार निसाणी वेस॥

भावार्थ—सरल है।

उदाहरण

सेवैं ससि सूरज इंद सिव ब्रह्मादि ब्रह्म वृंदारका।
जंपै दुय रसण हजार सूँ हरिगुण नित सीस हजारका॥
कह कह सह थका मंछ कहै पंडत जन वारापार का।
वरणन कर कासूँ वरणऊँ, कवसलजिह राजकँवार का॥

शब्दार्थ—वृंदारका=देवगण। वारापार का=सब स्थानों के।

भावार्थ—मंछ कवि कहता है कि जिस कौशल्या के पुत्र रामचंद्र का यश सूर्य, चंद्र, इंद्र, शिव, ब्राह्मण, ब्रह्मादि देवगण, सब

स्थानों के पंडित और दो हजार जिह्वा से शेषनाग नित्य कहते हैं और सब कह कह कर थक जाते हैं, उनका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ?

इति निसाणियाँ

अथ कुंडलिया

कुंडलियो जात झडउलट

आठूँ दिस वरतै अदल, राघववाले राज।
सीख समाँपे सोहडा, कर मन वंछत काज॥
काज मन वंछता पूर सगला किया।
धवल हरि दुरग धन देस कितरा दिया॥
कीध अर निकंटक जीत रावण जिसा।
जमी पग फील जिम, दवे आठू दिसा॥

शब्दार्थ—सीख = शिक्षा। समाँपै = देते हैं। सोहडा = योद्धाओं को। धवल = अच्छे महल। दुरग = दुर्ग।

भावार्थ—रामचंद्र का राज्य आठों दिशाओं में फैला हुआ है। वे सब योद्धाओं को शिक्षा देते हैं; सबके मनोवांछित कार्य पूर्ण करते हैं। रामचंद्र ने कितने ही महल, दुर्ग, धन और देश उनको दिये हैं। रावण जैसे वैरी को, जिससे दिशाओं के हाथियों के समान पृथ्वी दबी हुई थी, जीतकर उन्होंने सबको निष्कंटक कर दिया।

विशेष—ग्रंथकर्त्ता ने कुंडलियों के लक्षण नहीं लिखे। अतः जो कुंडलियाँ आई है, उनके लक्षण क्रम से लिखे जाते हैं। उक्त 'झडउलट' कुंडलिया में प्रथम तो दोहा और फिर बीस-बीस मात्रा के चार पद होते

हैं और चौथे पद को पाँचवें पद में उलट देते हैं। जैसा ऊपर उदाहरण में है।

कुंडलियो राजवट

सियवर राज समापिया, पाट अवध लव पेख।
कुस नै समप कुसावती, बंधव सुताँ विशेष ॥
बंधव सुताँ विशेष, दोय सुत भरत सुदत्तिय।
तक्षक नै तखसली, पुकर नैं पुकर वत्तिय ॥
अंसी लिखमण ऊभय, अँगद नगरी अंगद नै।
चंद्रकेत चंद्रवती, सत्रघण सुताँ सुखद नै ॥
कनवज सुवाहु सत्रुघात कर पति मथुरा इम थापिया।
इण भाँत मंछ कह आठही सियवर राज समापिया ॥

शब्दार्थ—समप = समर्पण करके। तखसली = तक्षशिला। पुकर = पुष्कर। पुकरवत्तिय = पुष्करावती। अंसी = पुत्र। सुखद—शत्रुघ्न के पुत्र का नाम।

भावार्थ—मंछ कवि कहता है कि सीतापति (रामचंद्र) ने इस प्रकार आठ राज्य आठों को दिये—अयोध्या का सिंहासन लव को और कुश को कुशावती नगरी दी। और भाइयों के पुत्र—दो भरत के तक्षक और पुष्कर थे, उन्हे तक्षसिला और पुष्करावती, लक्ष्मण के दोनों पुत्र—अगद और चंद्रकेतु को अंगद नगरी और चंद्रावती, शत्रुघ्न के दोनों पुत्र—सुखद और सुवाहु को कन्नौज और मथुरापति स्थापित किया।

विशेष—उक्त राजवट कुंडलिया में प्रथम दोहा, फिर २४ मात्रा के छः पद होते हैं। प्रथम और अंतिम पद का चौथे और पाँचवें पद का सिंहावलोकन होता है।

शुद्ध कुंडलियो

जीव उधारे जगतरा, किता सुधारे काम।
भार उतारे भूमरो, धणी पधारे धाम ॥
धणी पधारे धाम, सुजस खाटे जगसारै।
राज कियो बड रीत, गिणे ब्रष सैंस इग्यारे ॥
रह्या जिते रघुराव, धरम मरजादा धारे।
आप पधारत ओक, अवधपुर जीव उधारे ॥

शब्दार्थ—खाटै = फैलाकर। ब्रष = वर्ष। सैंस = सहस्र।

भावार्थ—संसार के जीवों का रामचंद्र ने उद्धार किया तथा और भी कितने ही कार्यों का सुधार किया। स्वामी (रामचंद्र) भूमि का भार उतारकर अपने स्थान पर पधार गए। संपूर्ण संसार में यश फैलाकर स्वामी अपने स्थान पर पधारे। रामचंद्र ने श्रेष्ठ रीति से ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य किया और जबतक आप रहे, तब तक धर्म और मर्यादा को धारण किए रहे। आपने अपने स्थान को पधारते हुए अयोध्या के प्राणियों का उद्धार किया।

विशेष—उक्त शुद्ध कुंडलिया में प्रथम एक दोहा और फिर २४ मात्रा के चार पद होते हैं। और चौथे और पाँचवें पद में सिंहावलोकन होता है और प्रथम पद के आदि के शब्द तथा अंतिम पद के अंत के शब्द एक से होते हैं।

ग्रंथ को संवत्, गौत्र, जात, वास आदि वर्णनं

कुंडलियो दोहाळ

रूपक यह रघुनाथरो, पिंगळ गीत प्रमाण।
कहियो मंछाराम कवि, जोधनगर जग जाँण ॥

जोधनगर जगजाँण बास गूँदी त्रिसतारा।
वगसोराम सुजाव, जात सेवग कूवारा॥
संवत ठारैं सतक वरस तेसठो वखाणों।
सुकल भादवी दसम वार[1] ससि हर वरताणों॥
मत अनुसारै मैं कह्यो, सुध कर लिमो सुजाण।
रूपक यह रघुनाथरो पिंगल गीत प्रमोंण॥

शब्दार्थ—वास गूँदी=गूँदी का मुहल्ला। वगसीराम—पिता का नाम। सुजाव=पुत्र। जात=जाति। सेवग=जाति विशेष का नाम, इसे मारवाड़ में सेवग और भोजक, पूर्व में पांडे, जयपुर में व्यास, दिल्ली में मिश्र, और कृष्णगढ़ में पुष्कर ने सेवग कहते हैं। कूवार=कुवारा, गोत्र का नाम। तेसठौं=६३। वार ससि=चंद्रवार।

भावार्थ—सरल है।

विशेष—दोहाल कुंडलिया में प्रथम एक दोहा बाद में चौवीस-चौवीस मात्राओं के छ पद होते हैं। दोहे के चौथे पद का पाँचवे पद में सिंहावलोकन होता है। प्रथम पद और अंतिम पद एक ही होते हैं।

कुंडलनी

नाम इधकार

कीजै तीरथ कोटं, कोटं गोदान ताम दिज्जियकै।
अभय करै रख ओटं, कर वे विवाह किन्ना॥
किन्ना व्याहे कोडलो जु किन्यावल लेवै।
माल खजाना मुलक दुजाँ चदके दत देवै॥
राम राम इक तरफ दुवै तरफाँ सह दीजै।
तऊ न है सम तूल कोट जो तीरथ कीजै॥

---

१ पाठांतर—सुर गुरु

शब्दार्थ—नाम = सब । ओट = शरण । कित्रा = कन्या । किन्यावल = कन्या दान । दुजाँ = ब्राह्मण । उदके = पुण्य में । दत = दान ।

भावार्थ—करोड़ों तीर्थ करना, करोड़ों गायों का दान देना, अपना सर्वस्व देना, अपनी शरण में रखकर निर्भय करना, धर्मपुत्री बनाकर विवाह करना, कन्यादान लेना, धन, खजाना और देश ब्राह्मणों को दान करना, ये सब तो एक तरफ और "राम" "राम" दूसरी तरफ। फिर भी ये सब चीजें राम नाम के बराबर नहीं हो सकतीं।

विशेष—इस कुडलिनी छंद में प्रथम आर्या छंद होता है, बाद के चार पद काव्य छद के होते हैं। आर्या के चौथे पद का अंतिम शब्द काव्य छंद के प्रथम पद में आता है और आर्या छद का प्रथम पद काव्य छद के चौथे पद के अंत में उलट कर आता है; अर्थात् आर्या का प्रथम शब्द और काव्य का अंतिम शब्द एक ही होना चाहिए।

ग्रंथ महिमा

छंद गीया

कह मंछ श्री रघुनाथ रूपक पढ़े जो नर प्रीत सूँ।
सुरभूम भाषा तणों मारग रमैं आछी रीत सूँ॥
इण माँहि लघु गुरु दगध अच्छर सुभासुभगण साजिया।
दुगणादि वरणे दसे दोषण मित्त वरण समाजिया॥
अरु त्रिविध महोरा नवे वकताँ अवर नवरस ओपिया।
गिण दाषवे विध जथा ग्यारह रूप छंदाँ रोपिया॥
चहुँ जात दोहा, चार छप्पय जात बहुत्तर गीतरी।
दुय दवा वैताँ वचनका विध रची चारूँ रीतरी॥
नीसाणियाँ दस दोय निरमल कुंडल्या पंच केलवै।
इक आद गाथा छंद अंतह जुगत कर करे जेलवै॥

उर ज्ञान भगती नीत उपजै चातुरी लह चोजसूँ ।
अवधेस चिरताँ हुवैं वाकव मिलै सदगत मोजसूँ ॥
इण ग्रंथ मो रघुनाथ गुण अत भेद कविता भाखियो ।
इण हीज कारण नाम ओ रघुनाथ रूपक राखिओ ॥
मैं दाखियो अनुसार मतरै जोय सगला लीजियो ।
इण माँहि चूक हुवै सु ओलख कवी, माफ करीजियो ॥

शब्दार्थ—मुरभूम भाषा = डिंगल भाषा । रमै = रमण करना, जानना । आछी = अच्छी । वाकव = वाकिफ, जानकार, ज्ञाता । सद-गत = श्रेष्ठ गति । ओलख = पहचानकर । केलवै = सुधारकर । जेलवै = इकट्ठा करना ।

भावार्थ—सरल है ।

कवि वंछना

कवित्त

गुनको न लेस ताको बड़े गुनवान कहैं,
दानी कहत जाको कोडी करते ढरै नहीं ।
कहै रनधीर भग जाय पात खरका ते,
उदर गंभीर वात तनक करै नहीं ।
होय वदसूरत कहै है मैन मूरत सो,
कहत दयाल पाप पूर ते डरै नहीं ॥
एहो रघुराय यह कीजैं कृपा मंछ कहै,
ऐसेन पै जाय कछु कहनो परै नहीं ॥

शब्दार्थ—ढरै = गिरना । पात = पत्ता । जरै = हजम होना । मैन-मूरत = कामदेव का स्वरूप ।

भावार्थ—सरल है ।

संमृत पुरान वेद आगम अनेक पढ़े,
विरद तिहारो नाथ तारन तरन को।
मंछ कवि कहैं पुन सरन सधार व्रिद,
याही ते सरन लयो रावरे चरन को॥
गुन को निहारो तो भरो हूँ पूर अवगुन सों,
निज गुन धारो तुम असरन सरन को।
सुनिए धनुपधारी, अरजी हमारी यह
मेट दीजै भय भारी जामन मरन को॥

शब्दार्थ—संमृत = स्मृति। सरनसधार = शरणागतपाल। व्रिद = विरद, सुयश। जामन = जन्म।

भावार्थ—सरल है।

सोरठा

प्रभु गुण तणो न पार, पारन को गीतों प्रबँध।
बधै ग्रंथ विस्तार, कारण इह सूक्षम कह्यो॥

भावार्थ—सरल है।

इति उत्तरकांड नवम विलास समाप्त

इति रघुनाथरूपक भाषा कवि मुरधर देशवासी मंछारामकृत संपूर्ण

* शुभम् *

भंडारी उत्तमचंदजी कृत प्रशंसा

सोरठा

आछो कीध इसोह, रस ले साहित-सिंधुरो ।
जग सह पियण जिसोह, रूपक राम पयोध रुख ।।

शब्दार्थ—इसोह=ऐसा । सह=सब । पियण जिसोह=पीने योग्य । रूपक=कविता । रामपयोध=रामयश-समुद्र । रुख—तरफ ।

भावार्थ—(भंडारी उत्तमचदजी, जो जोधपुर नरेश के प्रधानों में से थे, पिंगल के अच्छे जानकार थे । वे रघुनाथरूपक के बारे में कहते हैं) साहित्यरूपी समुद्र का रस लेकर ऐसा (रघुनाथ रूपक) अच्छा बनाया हुआ रामचंद्र के यश-समुद्र का (यह) गीतकाव्य सब संसार के पीने योग्य है ।

दोहा

मनसा राम प्रबंध मझ, राखे मनसा राम ।
कियो भलो द्विज काम कवि, कियो भलो द्विज काम ।।

भावार्थ—भंडारीजी कहते हैं—मनसाराम ने इस प्रबंध में अपनी इच्छा राम में रखी, यह काम कवि ने श्रेष्ठ किया, बड़ा ही श्रेष्ठ किया ।

❀ इति सर्वग्रंथ रघुनाथरूपक सटीक संपूर्ण ❀

॥ श्री ॥

परिशिष्ट

(रघुनाथरूपक का)

बूँदी के कवि मुरारिदानजी कृत
डिंगल कोश से

छन्दों आदि के लक्षण

छंद निसाणी लक्षणम्

(प्रथम खंड पृ० ५)

दोहा

तेरह कळ दोहा तणी, इण अग दस कळ आँण ।
दो दो दो गुरु फेर हुव, जिको निसाणी जाँण ॥ १ ॥पृ० ५॥

अथ अनुप्रास वर्णनम्

(प्रथम खंड पृ० ३५ से)

दोहा

समता होवै सबदरी, ज्यूँ ही सुररी जाण।
ईहग इण बिध जो अखै, सो अनुप्रास बखाण ॥१॥पृ० ३५॥

अथ छेकानुप्रास वर्णनम्

दोहा

संहति व्यञ्जनरी सदा, समता सक्रत सुहात ।
इण विध जो अनुप्रास सो, कवियण छेक १ कुहात ॥१॥पृ० ३५॥

अथ व्रत्यनुप्रास कथनम्

दोहा

एक प्रकार अनेक अख, सबदां री समताह ।
असक्रत फेर अनेक धा, सक्रत एकरी साह ॥१॥
रीत यहै वरणां तणी, ताकव सदा तुलात ।
एण भांत अनुप्रास नूं, व्रत्ती २ नाम बुलात ॥२॥पृ० ३५॥

अथ श्रुत्यनुप्रास कथनम्

दोहा

दांत ताळवा आद है, एक थान उच्चार ।
सबदां री साद्रस्यता, श्रुति ३ अनुप्रास सुधार ॥१॥पृ० ३५॥

अथ लाटानुप्रास कथनम्

दोहा

सबद र अरथ समाज मैं, पुनरुकती पण पात ।
तात परज ही मात्रसूँ, भेद सु सदा भणात ॥१॥
जांणूँ सब कवि जण सदा, समझाँणूँ हिक सास ।
रीत प्रमाणूँ एरसी, नाम लाट अनुप्रास ॥२॥पृ० ३६॥

अथ अंत्यानुप्रास वर्णनम

दोहा

यथा वसथ व्यंजन अवस, सह आदी सुरआस ।
आव्रत्ती व्है अंत मैं, अंत्य आख अनुप्रास ॥१॥पृ० ३६॥

अथ यमक वर्णनम्

दोहा

सुर व्यंजन ।संहति सदा, प्रथक अरथ जो पाय ।
ईखो क्रम आव्रती, जमक नाम व्है जाय ॥१॥
यमकादिक मैं एकसा, व व ड ल लर व्है जात ।
अलंकार इणनूं अवस, कवियण सदा कुहात ॥२॥पृ० ३६॥

अथ गणागण वर्णनम्

दोहा

म १ न २ भ ३ य ४ स ५ र ६ ज ७ त ८ गण सुणूं,
चवु सुभ पहल विचार ।
बीजा च्यारूं असुभ बद, फेरूं डुगण प्रताप ॥१॥
भगण नगण दुव मित्र है, भगण यगण भ्रत भाव ।
उदासीन जत गण अवस, सर गण सत्रु सुणाव ॥२॥पृ० ३६॥

अथ गण स्वरूप वर्णनम्

दोहा

भगण तीन गुर SSS० रो सुदे, तेम नगण लघु तीन ।।।० ।
भगण आद गुर S।।० रो भणू, यगण आद लघु ।SS०ईन ॥१॥

सगण अंत गुर ।।ऽ० रो सदा, रगण बीच लघु ऽ।ऽ० राज ।
जगण बीच गुर ।ऽ।० जाँणणूँ, तगण अंत लघु ऽऽ।० ताज ।।२।।
।। पृ० ३७ ।।

अथ द्विगण फल वर्णनम्

दोहा

मित्र मित्र गण जो मिळ, तो रिद्धी व्है तास ।
मित्र दास सूँ त्रास मुण, जुध सूँ हुवै न जास ।।१।।
मित्र उदासक गण मुणैं, गोत दुःख हुव गाय ।
बळे मित्रसूं सत्रु बद, मीत बंधु मर जाय ।।२।।
दास मींत गण जो दखै, कारज सिद्ध करात ।
दास दास जो व्है दुरस, सरब जीव बस आत ।।३।।
दाखै दास उदास गण, होवै धन री हाण ।
दाखै बैरी दास सूँ, मित्तर दुसमण जाण ।।४।।
गण उदास सूँ मित्रगण, फळ जिणरो तुछ पात ।
अर उदास सूँ दास अख, खांवँद ताप दिखात ।।५।।
फेर उदास उदास पढ, सो न फळाफळ तास ।
जो उदास दुसमण जपै, पावै नहँ सुख पास ।।६।।
बैरी गण सूँ मित्र बद, जास अफळफळ जाण ।
सत्रू सूँ जो दास भण, होवै अवळा हाण ।।७।।
गण सत्रू र उदास गण, कुळरो होवै काळ ।
रिपु जोड़ै दाखै रिपू, नायक अंतक न्हाळ ।।८।।पृ० ३७।।

अथ दग्धाक्षर वर्णनम्

दोहा

ह ज ध र घन ख भ व्है अवस, ए दध आखर आठ ।
कूड़ो फरूँ बाकछळ, पढ्यो टाळर पाठ ॥१॥पृ० ३८॥

अथ दग्धाक्षर फल कथनम्

दोहा

देह जजो आखै दुखद, हहो करे हित हाण ।
धधो राजरो भय धरैं, खक्खो जस खप्पाण ॥१॥
भम्भो परदेसां भमैं, नरफळ सदा नकार ।
ररो नास धनरो करे, घट कर घात घकार ॥२॥पृ० ३८॥

अथ दस दोष निरूपणम्

दोहा

उकत पहल व्है ओरही, आगैं ओर अणात ।
अंध दोख १ तिणनूँ अवस, कवियण सदा कुहात ॥१॥
बिसतारै भाखा विरुध, कहै बले छबकाल २ ।
जात पिता जाहर न जप, हीण दोख ३ सोहाल ॥२॥
निनँग ४ जेण नूँ निरख तन, विण क्रमरो वरणाव ।
पंगु ५ दोख जोहै प्रगट, वध घट कळा वणाव ॥३॥
अवर अवर कळ गीत इम, अवस दुवाळै आण ।
नाम दोख तिणनूँ निपट, जात विरुध ६ सो जाण ॥४॥
ईखै नँहँ जिणरो अरथ, बिण हित सबद वणात ।
अपस ७ दोख इणनूँ अबैं, कवियण नाम कुहात ॥५॥

सोरठा

बैण सगायी बेस, मिल्यां तास दूखण मिटै ।
किणियक समैं कवेस, थपियो सगपण ऊथपै । २ ॥ ३९ ॥

अथ डिंगल कोश

(द्वितीय खंड । पृ० ४१ से ।)

संक्षेपतो शब्द निर्णय:

दोहा

रूढ र जोगिक मिसर रा, नामा रो कर नेम ।
सुकव रचूँ इण कोस मैं, प्रणमि सारदा प्रेम ॥ १ ॥
वर्णै नहीं जिण सबद री, व्युतपत्ति रु बाखाण ।
रूढ नाम तिणरो कहो, अखंडळ ज्यूँ आण ॥ २ ॥ पृ० ४१

अथ दोहा सोरठा का लक्षण

सोरठा

दोहा तुक दूजीह, सो पहली धरणी सुकव ।
परगट तुक पहलीह, इण रै आगैं आणणी ॥ १ ॥
आगै चोथी आण, इण आगळ तीजी अखो ।
जिका सोरठा जाण, नागराज रो मत नरख ॥ २ ॥ पृ० ४१

सोरठा का उदाहरण

जोगिक अनवय जाण, सो क्रिय गुण संबंध सूँ ।
बेखो एह बाखाण, कहैं पूर्व संभव कवी ॥ १ ॥

क्रिया स्रजादिक आण, गुण सु नीलकंठादि गण ।
सो संबंध सुजाण, स्वामी सेवक आदि सब ॥ २ ॥
जोवो नाम जमीन, पत आदिक आगै पढो ।
पाल रु मान प्रवीन, धण नेता इण आदि धर ॥ ३ ॥
जन्यागळ इम जाण, करता जनक विधात कर ।
बले जनक बाखाण, जै भव जोनी जाणजै ॥ ४ ॥ पृ० ४१,४२

दोहा

विश्वक करता विश्वकर, विश्व वधात विख्यात ।
विश्व जनक इम नाम वद, ऐ कारणरा आत ॥ ५ ॥
आतम जोनी आतमज, आतम भव इम आण ।
आतम सूती आतम सू, जनक नाम सूँ जाण ॥ ६ ॥

सोरठा

जळ वाचक जो नाम, सो पहली धारण सुकव ।
केवळ धीरो काम, याद राख करणूँ अठै ॥ ७ ॥
वेखो सबद बळेह, धुर केवल बडवा धरो ।
अगनी अगवांणेह, है जो नाम हुतासरा ॥ ८ ॥
भूपादिकां भणंत, सुकब सुणूँ इण कोस मैं ।
पलट दुनाम पढंत, रिधू सरब इण रीत सूँ ॥ ९ ॥
पढवो जाय पलटाण, सबद जिको इण मै सदा ।
जिणनूँ जोगिक जाण, कह इण रीत मुरार कबि ॥ १० ॥
सबद मिसर इम सोध, जोवण मैं जोगिक जिसो ।
वणै न जिणरो बोध, गीरवाण जिसड़ो गिणूँ ॥ ११ ॥

कवि रूढी हि कहंत, मिसर रूढ जोगिक महीं ।
मन मत्तै न मुणंत, कहियो ज्यूँ पूरव कन्यां ॥ १२ ॥ पृ० ४२

अथ संक्षेपतो गीत लक्षणानि

गीत छोटा साणोर को लक्षण

दोहा

परथम दोहा तुक पहल, अट्ठारह १८ कळ आण ।
तुक दूजी पनरा १५ तणी, युग अठ १६ तीजी जाण ॥ १ ।

सोरठा

चोथी झड चवुदाह १४, जोड़ण वाळां जाणज्यो ।
निसचै माई नाँह, इण दोहा मैं ईहगां ॥ २ ॥
परथम तुक सोला १६ पढो, मुहरां चवुदा १४ मेळ ।
दोहा दूजा री दुरस, इण ही रीत उजेळ ॥ ३ ॥
चोथा तीजा पांचवां, दोहा मैं इण दाय ।
पहली तीजी झड़ प्रगट, सोळह मत्त सुणाय ॥ ४ ॥
दूजा चोथी झड़ दुरस, दस चो १४ पनरै १५ दाख ।
तीजा दोहारी दुतुक, एण रीतसूँ आख ॥ ५ ॥
चोथा दोहारी चवाँ, सांकळ दू २ चो ४ सोध ।
तेरह १३ तेरह १३ कळ तुळं, वोलै एम प्रवोध ॥ ६ ॥
पंचम ५ दोहा कळ प्रगट, दसचवु १४ दूजी दाख ।
चोथी झड़ तेरह १३ चवो, रीत एरसी राख ॥ ७ ॥ पृ० ४३, ४४

अथ छोटो साणोर

दोहा

कहुँ गुर मोहरां लघु कहूँ, आंणै नेम न ओर ।
जंपै कव इण रीत जो, सो छोटो साणोर ॥ १ ॥ पृ० ४४

छोटे साणोर का पहला भेद—गीत जात वेलिया

दोहा

अट्ठारह १८ कळ आद तुक, दूजी पनरह १५ देख ।
तीजी तुक सोळा तणी, पनरह चोथी पेख ।। १ ।
दोहा दूजा सूं दुरज, सहक्रम जाण सु जाण ।
सोळह १६ पनरह १५ कळस कळ, एस वेलियो आण ।। २ ।।
मुहरावाली १५ तुक मही, मुहरा माहिं मुणन्त ।
वणै गीत इम वेलियो, आद गुरू लघु अंत ।। ३ ।। पृ०४४,४५.

तीसरा भेद

गीत सोहणा साणोर का लक्षण

दोहा

धुर अट्ठारह १८ कळ धरो, सम पर चउदह १४ सोय ।
विखम सरव सोलह १६ वणै, जिको सोहणू जोय ।। १ ।।
मोहरारी भड़ मांहिंनैं, अवस लघू गुर आण ।
नेम सोहणैं इम निपट, बीदग करै वखाण ।। २ ।। पृ० ४६

चोथा भेद

गीत जात जांगडा साणोर का लक्षण

दोहा

कळा पहल दस आठ १८ कर, जुग दस १२ दूजी जोय ।
सोळह १६ वारह १२ तुक सरव, दखां मेळ गुरु दोय ।। १ ।।
इण दोहामै ऋप अवसर, राखी जो यह रीत ।
सो छोटा साणोर रो, गणैं जांगड़ो गीत ।। २ ।। पृ० ४७

पांचवां भेद

गीत जात खुड़द साणोर का लक्षण

दोहा

प्रथम कला नव दूण १९ पढ, दूजी तेरह १३ दाख।
सोलह १६ तेरह १३ तुक सरव, अंत दोय २ लघु आख ॥ १ ॥
भेटिरी तुक भाणवां, उभै २ लघू आणोर।
रखै नेम इण रीतरो, सोहि खुड़द साणोर ॥ २ ॥ पृ० ४८

अथ बड़ा साणोर को लक्षण

दोहा

धुर पद कळ तेवीस २३ धर, दुतिय अठारह १८ देख।
बीस २० कला तीजी बणै, बले अठारा १८ बेख ॥ १ ॥
विखम वीस २० कल तुक बणै, अट्ठारह १८ सम आण।
मोहरै गुरु लघु नेम कर, बड साणोर बखाण ॥ २ ॥ पृ० ४९

बड़ा साणोर को दूजो भेद

गीत प्रहास को लक्षण

दोहा

कला प्रथम तेवीस २३ कर, दूजी सतरा दाख।
इण ही झड़रै अंत गुरु, रीत मेलरी राख ॥१॥
वीस २० कळा सतरा १७ बले, सरब गीत इण सोय।
भेद बड़ा साणोर भव, हद परिहास जु होय ॥२॥ पृ० ५०

बरण छंद—गीत सुपंखरा को लक्षण

दोहा

अखर अठारै १८ आद तुक, बीजी चवदा वेख १४ ।
बिखम अखर सोळह १६ बले, सम चवुदह १४ संपेख ॥ १ ॥
मेळ तणी झड़ मांहिनैं, गुरु लघु अंत गिणाय ।
पैखो गीत सुपंखरो, बीदग एम वणाय ॥२॥ पृ० ५१

मात्रा छंद—गीत बड़ा साणोर सावझड़ा को लक्षण

दोहा

धुर मात्रा तेवीस २३ घर, बाकी बीस २० वखाण ॥
मुहरा सम च्यारूँ मिलैं सावझड़ो सुभियाण ॥१॥ पृ० ५२

छोटा साणोर का सावझड़ा को लक्षण

दोहा

कळा अंक ९ दूणी करर, आद बिखम झड़ आण ।
सोलह १६ सोलह १६ तुक सकल, मुहराँ च्यार मिलाँण ॥१॥
सीखो बाँचा जो सुकब, धारो एम धड़ोह ।
सो छोटा साणोर रो, जाणूँ सावझड़ोह ॥२॥ पृ० ५३

अथ बड़ा छोटा साणोर को गीत पंखाळा को लक्षण

दोहा

सरब भेद साणोर री, राखी सो ही रीत ।
तबां दुवाळा तीनरो, गणूँ पँखालो गीत ॥ १ ॥ पृ० ५४

अर्द्ध सावझड़ा को लक्षण

दोहा

अरध सावझड़ में अवस, मुहरा द्वै सम मेल ।
पहली जो मात्रा १८।१६।१६ पढ़ो, वैही अठै बजेल ॥१॥ पृ०५४

गीत छोटा साणोर झडलुप्त को लक्षण

दोहा

आद अठारह १८ तुक अखो, सोलह १६ सब संपेख ।
पहल १ दुवै २ चोथे ४ पदै, दुरस मोहरा देख ॥१॥
तुकां मिळै नँहँ तीसरी, मोहरां सूं इण माय ।
रूपग जो इणरीत सूं, सो भड़लुपत सुहाय ॥२॥ पृ० ५५

गीत जात त्रंबकड़ा को लक्षण

दोहा

मात अठारा १८ प्रथम तुक १९, आगैं सोलह आण ।
सोलह १६ सोलह १६ तुक सकल, गीत त्रबकड़ै गाण ॥१॥ पृ० ५६

गीत सीहचला को लक्षण

दोहा

आद कला दसआठ १८ री, तेरह १३ मुहरां तोल ।
रगण इणीमै राखजे, सोलह १६ त्रिसम सुबोल ॥१॥
रिधू नाम इण गीतरो, सीहचलो संपेख ।
उदाहरण माहे अवस, दल नसचै कर देख ॥२॥ पृ० ५७

अथ गीतजात सालूर को लक्षण

दोहा

पहल अठारा १८ कल पढो, दाख बले खटदूण १२ ।
सोळह १६ बारह १२ तुक सकल, राखीजै इणरूँण ॥१॥
मेळ पहल १ चोथी ४ मिलै, मुहरा दु २ तिय ३ मिलंत ।
अधक गीत सालूर इम, गुणियक नाम गिणंत ॥२॥ पृ० ५८

अथ मात्रा गणबद्ध छप्पय छंद को लक्षण

दोहा

पहली गण खटकल SSS० पढ़ो, च्यार ४ बखत कल च्यार SS० ।
सुणूँ बले दुव मातरा, पुण चव ४ तुकाँ सुप्पार ॥१॥
चवो उलाला छंदरी, दुरस अंत तुक दोय ।
अट्ठावी २८ मात्रा अवस, इम क्रम छप्पय होय ॥२॥ पृ० ५९

अथ मात्रा गणबद्ध दोहा छंद का लक्षण की

दोहा

धुर खटकल दुव दोय धर, लघू एक कल दोय ।
कल खट दो कल गुरु कहो, हिक लघु दोहा होय ॥१॥ पृ० ५९

अथ डिंगल कोशे

चतुर्थ खण्ड पृ० १५१ से

अथ छंदसां लक्षणमाह

दोहा

बरण मातरा वाक्य मैं, नेम सदा निरधार ।
छंद नाम उणथी चवो, पण सो दोय प्रकार ॥१॥
तठै नेम बरणां तणूं, बरण छंद जो बोल ।
जिण ठामा मात्रा जपण, तिको छंद कल तोल ॥२॥
तीन भेद ओरूं तवो, बरण मातरा बीच ।
सम १ रु अरधसम २ विखम ३ सुण, ब्रत्त वार जिम बीच ॥३॥
सम च्यारूं झड़ होय सो, चवै सुकवि सम छंद ।
पहली तीजी तुक प्रगट, आणै सम कवियंद ॥ ४ ॥
सम दूजी चोथी सरस, जो आधो सम जाण ।
च्यारूं झड़ सम नहँ चवै, इसो बिखम कविआण ॥ ५ ॥
रटिया ऊपर छंद सब, कहड्यो दोय प्रकार ।
एक गवण गणबद्ध इम, इणमैं गवण उचार ॥ ६ ॥
उकता १ अति उकता २ अवर, मध्या ३ नाम मुणात ।
परतिष्ठा ४ चोथो प्रगट, सुप्रतिष्ठा ५ हु सुणात ॥ ७ ॥
गायत्री ६ उसणिक ७ गिणूं, ओर अनुष्टप ८ आण ।
ब्रहति ९ पंक्ति १० त्रिसटुप ११ ब्रवो, जगती १२ द्वादस जाण ॥ ८ ॥
सुण अतिजगती १३ सकरी १४, अतिसकरी १५ अनूप ।
असटी १६ अतिअसटी १७ अवर, भणै ध्रती १८ कविभूप ॥ ९ ॥

अतिध्रति१९क्रति२०प्रक्रति२१ अवर, आक्रति२२बिक्रति २३ ओर ।
संक्रति२४अर अभिक्रति २५ समझ, जाणूँ उतक्रति २६ जोर ॥१०॥
आखर बधताँ एक इक, छंद बणै छब्बीस ।
जाति छंद कहिया जिके, दंडक आगैं दीस ॥ ११ ॥
बणै फेर बिसतारसूँ, नाम छंद निरधार ।
ताकव इण बिसतार रो, पुणूँ नाम प्रस्तार ॥ १२ ॥

अथ गुरु लघु लक्षणम्

अ इ उ और याँ जुत अख्खर, जे सारा लघु जोय ।
इक संजोगी आदरो, कहै लघू पण कोय ॥ १३ ॥
बाकीरा गुर बोलणा, लघु सूधो कर लेख ।
बाँको गुर लिखणूँ बले, रीय यहै अवरेख ॥ १४ ॥
गुररी मात्रा दोय गिण, एक लघूरी आख ।
कठै कठै ए ओ अखर, भाषा मैं लघु भाख ॥ १५ ॥
अनुस्वार वालो अखर, कहै कठै लघु कोय ।
जोय छंद बिगड़ै जठै, गुरु लघु लघु गुरु गोय ॥ १६ ॥

अथ संख्या लक्षणम्

बरण कला रा भेद है, जिणनूँ संख्या जाण ।

अथ प्रस्तार लक्षणम्

तिके भेद प्रसतार तव, बणता छंद बरवाण ॥ १७ ॥

बरण संख्या करण सूत्रम्

बरणै संख्या बरण री, धरो प्रथम पर दोय ।
दूणाँ दूणाँ कर धरो, संख्या छेहलो सोय ॥ १८ ॥

उदाहरणम्

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	१०२४
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

मात्रा संख्या करण सूत्रम्

मात्रा मैं इण विध गुणों, एक दोय धर अंक ।
जोड़ पहल रा अंक जुग, आगैं धरो असंक ॥ १९ ॥
कला तणाँ संख्यांक सो, जो उदिष्ट रा जाण ।
राखो वैही नसटरा, और रीत नहँ आण ॥ २० ॥

मात्रा संख्या को उदाहरण

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४	२३३
।	।	।	।	।	।	।	।	।	।	।	।

प्रस्तार करण सूत्रम्

पहली सारा गुरु परठ, पहला तल लघु पोय ।
आगैं धर ऊपर इसा, सेस हु गुरू समोय ॥ २१ ॥
मात्रा रा प्रस्तार मैं, रहै बरण री रीति ।
बचीकला धरबा विषै, प्रथक समझ कर प्रीति ॥ २२ ॥
दोय कला रो गुरु धरो, विषम कला बिच भेद ।
पहलां लघु गुरु पाछलो, करो एम बिण खेद ॥ २३ ॥

उद्दिष्ट लक्षणम्

सारा भेदाँ माँहि सूँ, एक लिखे कोइ आय ।
तिणरी संख्या कब तवै, सो उद्दिष्ट सुणाय ॥२४॥

वर्णोद्दिष्टांक वर्णनम्

प्रथम वरण पर इक परठि, आगैं दूणाँ आँण ।
एही आँक उदिष्टरा, जिके नष्ट रा जाँण ॥२५॥

उद्दिष्ट करण सूत्रम्

संख्या पूरण अंक सूँ, गुररा अंक घटाय ।
सेस अंक उद्दिष्ट कह, भण मात्रा इण भाय ॥२६॥

नष्ट लक्षणम्

केवल संख्या ही कहर, बणवावै कोइ भेद ।
ततो नष्ट कर तुरत ही, कहै रूप विण खेद ॥२७॥

नष्ट करण सूत्रम्

पहलाँ सब लघु ऊपरा, अंक नसट रा आण ।
आगैं संख्या अंक धर, जिण बिध सबही जाण ॥२८॥
काढो पूछ्यो अंक कब, मेली संख्या माँहिं ।
सेस माँहि सूँ नसट रा, घटै स अंक घटाँहि ॥२९॥
घटिया जिण घर करहु गुरु, बरण नसट इम बोल ।
दोय लघूरो गुरु धरो, मात्रा माँहिं अमोल ॥३०॥
जिण घर घटियो एक जो, इक आगै रो आण ।
इण बिध दो लघुरो अवस, करो गुरु कवियाण ॥३१॥

वर्ण मात्रा नष्टोदिष्ट उदाहरणम्

१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८
।	।	।	।	।	।	।	०
S	S			S	S		७७
							५१

अब संख्या रा अंक १२८ मैं सूँ गुरु रा माथा रा ५१ काढ्या तो ७७ बाकी रह्या योही उदि्दष्ट हो गयो।

३२
१९
३
२
१
१

मात्रा रा नष्टोदिष्ट

१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	८९
।	।	।	।	।	।	।	।	।	।	६४
										२५
१		३				२१				२१
S		S				S				४
२		५				३४				३

अब संख्यांक ८९ मैं सूँ गुरुरा माथारा २५ घटाया तो बाकी रह्या ६४ यो ही उदि्दष्ट हुओ।

१
१

मेरु १ पताका २ मरकटी ३, अर सूची ४ अभिराम।
सो न धर्‍या संक्षेप सूँ, लिखिया केवल नाम ॥३२॥
बरण तणां प्रसतार बिच, तीन बरण गण तोल।
आठ भेद तिणरा अवस, बले नाम ये बोल ॥३३॥

गण नाम कथनम्

म य र स त ज भ न नाम ये, अंत सबद् गण आण ।
म य भ न च्याऊँ सुभ गुणूँ, जर सत खोटा जाण ॥३४॥

गण देवता कथनम्

मही १ वारि २ पावक ३ मरुत ४, नभ ५ रवि ६ हिमकर ७ नाग ८ ।
ऐ स्वामी गण आठ रा, भण ज्यो क्रमथी भाग ॥३५॥

गणानां फल कथनम्

श्री १ जय २ म्रत ३ दुख ४ अफळ ५ सुण, ताप ६ छेम ७ जस ८ ताम ।
ऐ फळ क्रमसूँ आठ रा, धरो हिये करि धाम ॥३६॥

मात्रा गण कथनम्

मात्रा मैं गण पाँच मित, पुण ट १ ठ २ ड ३ ढ ४ ण ५ प्रकास ।
खट ६ सर ५ चवु ४ गुण ३ जुग २ कला, भणिया पिंगळ भास ॥३७॥
एक एक रा भेद अब, तेरह १३ वसु ८ सर, ५ तीन ३ ।
जुग २ कळ रा जुग २ जाण ज्यो, क्रमथी सुकवि कुलीन ॥३८॥

टगण री छै मात्रा रा तेरा भेदां रा जुदा २ नाम

खिव १ विधु २ दिनपति ३ सुरपती ४, सेस ५ अही ६ सरसाव ।
SSS ॥SS ।S।S S॥S ॥॥S ।SS।
पोयण ७ धाता ८ कलि ९ पढ़ो, ससि १० ध्रुव ११ धरम १२ सुणात ३९
S।S। ॥।S। SS॥ ॥S॥ ।S॥। S॥॥
कहो बणे इम सालिकर १३, रिधू नाम दरसाव ।
॥॥॥
तवो सरब छै मातरा, तेरह भेद तणाव ॥४०॥

ठगण की पाँच मात्रा रा आठ भेदरा क्रम सूँ नाम

इंद्रासण १।ऽऽ० सूरो २ इसुध ३ ।।ऽ०,
हार ४ऽऽ। रु सेखर ५।।ऽ। होय ।
कुसुम ६।ऽ।। अहीगण ७ऽ।।।० ओर कह,
जेम पापगण ८।।।।।० जोय ।।४१।।

आदि लघु वाळी पाँच मात्रा रा नाम

।ऽऽ० सुर १ नरिंद २ उडुपति ३ सुणूँ, दंती ४ दंत ५ दिखाण ।
ऐरापत ६ घण ७ आद लघु, पंच कळा पहचाण ।।४२।।

मध्य लघुवाळी पांच मात्रा रा नाम

ऽ।ऽ० पंछि १ बिडाल २ म्रगेंद्र ३ पढ, अंम्रत ४ वीणा ५ आण ।।
सरप ६ गरुड ७ जोहल ८ सुण, जच्छ ९ बीच लघु जाण ।।४३।।

च्यार मात्रा वाला डगणरा पांच भेदरा नाम

ऽऽ गज १ रथ २ तुरग ३ पदाति ४ गिण, चोकळ नाम चवंत ।

द्विगुरु नाम

ऽऽ० रखो करण १ रस २ मनहरण ३, दो गुरु नाम दिपंत।।४४।।

अंत गुरु वाळी च्यार मात्रा रा नाम

ऽऽ० करतळ १ कमळा २ असनि ३ कर४, अभरण५ गज ६अभिराम।
च्यार कळा माहे चतुर, नरख अंत गुरु नाम ।।४५।।

मध्य गुरु वाली च्यार मात्रा रा नाम

।ऽ।० पढो भूपती १ गजपती २, असपति ३ नायक ४ आण ।
गिणूँ पयोधर ५ बीचगुर ६, च्यार कळा पहचाण ।।४६।।

आदि गुरु वाळी च्यार मात्रा रा नाम

ऽ।।० तात १ पितामह २ दहन ३ तव, पद ४ परयाग पढात ।
इण नामा सह आद गुरु, मात्रा च्यार सुणात ।।४७।।

अष्टापद ६ है आद गुरु, दुजवर १ चवु लघु ।।।। दाख।
कर २ बाहू ३ रा नाम कह, अलंकार ४ इम आख ।।४८।।
प्रहरण ५ भुजगामी ६ पढो, चवु लघु ।।।।० नाम चवंत।

ढगण रा तीन भेद होय तीमें आदि लघु ।ऽ रा नाम

चवो धुजा १ अर चिन्ह २ चिर ३, तुंबुरु ४ माळ ५ तवंत ।।४९।।
पवन ६ पत्र ७ ए नाम पढ, लघू आद कळ तीन।

आदि गुरु त्रिकल नाम

ऽ।० ताळ १ पटह २ करताळ ३ तव, आणँद ४ सुरपति ५ ईन।।५०।।
तूर ६ नाम निरवाण ७ तव, समदर ८ फेर सुणात।
आद गुरूरा नाम इम, मात्रा तीन सुणात ।।५१।।,

त्रि लघु नाम

।।।० तांडव १ सात्विक भाव २ तव, नारी ३ रस ४ कुळ ५ नाम।
गिणू नाम ये ढगण गण, मात्रा तीन तमाम ।।५२।।

दोय भेद वालो णगण तीमै प्रथम गुरु रा नाम

ऽ चामर १ नूपुर २ जीह ३ चव, सुण कंकण ४ मंजीर ५।
कुंडल ६ जिम ताटंक ७ कह, गुरू नाम गंभीर ।।५३।।

दोय मात्रा रा दोय लघुरा नाम

।।० संख १ मेरु २ काहल ३ कुसुम ४, करतळ ५ दंढ ६ कुहात।
सबद ७ गंध ८ बर ९ परस १० इम, सर ११ रव १२ रूप १३ सुहात५४

मात्रा गण बद्धमाह

मात्रा गणारो नियम सूं, बणै जठै बिश्राम।
बिच दो लघुरो गुरु न बग, लख गण बद्ध ललाम ।।५५।।

मात्रा गणबद्ध संख्या कथनम्

मात्रारी नावी मुणूँ, पण है अतरों फेर।
पहल बिरति रा अंत पर, होय अंक जो हेर ॥५६॥
आद आगला ऊपरा, धरो सुकब गुण धाम।
नियमित गुरु लघु पर न धर, तब इण रीत तमाम ॥५७॥
अंक यही उद्दिष्टरा, नष्ट माँहि यह नेम।
रह अंतर प्रस्तार मैं, मुणूँ सुकव् कर प्रेम ॥५८॥

मात्रा गणबद्ध प्रस्तार सूत्रम्

प्रथम गुरू तळ लघु परठ, सम आगैं सब रीत।
बची कळा विश्राम मैं, पूरों कवि कर प्रीत ॥५९॥
मात्रा ज्यूँ उद्दिष्ट मुण, सोही नष्ट सुजाण।
मात्रा मैं सब लघु मुण्यां, अठै नियत गुरु आण ॥६०॥

बरण गणबद्ध कथनम्

तीन बरण प्रस्तार मै, म १ य २ र ३ स ४ त ५ ज ६ भ ७ न ८ माण
कहि गण अंत प्रत्येक मैं, जिके नाम सब जाण ॥६१॥
दोय चरण रा भेद ये, करण १ धुजा २ सुभ काम।
ताल ३ संख ४ क्रमथी तवो, नियत अणांरा नाम ॥६२॥
एक बरण रा दो अवस, गुरु मंजीर गिणाय।
मुणूँ नाम लघु रो सरळ, भण पिंगळ रै भाय ॥६३॥
बरण छंद गण बद्ध मैं, नेम इसो निरधार।
गण जेता प्रसतार गत, किता दलै केइ बार ॥६४॥
रहै टाळियाँ पर रिधू, इता छंद मैं आण।
अनुक्रम थी धरजे अवस, जितनी संख्या जाण ॥६५॥

वरण गणवद्ध संख्या करण सूत्रम

विरति जिती है वृत्त मैं, वले तिणारा भेद ।
ले संख्या ऊपर लिखो, कवि जण सन बिण खेद ॥६६॥
नियमित पर कछु हिन लिखो, अंत सुधी करि एम ।
लिख्या अंक गुण थेट लग, संख्या कहो सप्रेम ॥६७॥

वरण गणवद्ध प्रस्तार करण सूत्रम्

पहला तळ दूजो परठ, क्रमथी सब गुण साच ।
वचथी सुगण पहलो विरच, सब प्रसतार सुवाच ॥६८॥

वरण गणवद्ध उद्दिष्ट सूत्रम्

नियम सहित करि गण नियत, गण संख्या तळ गोय ।
ऊपर गण क्रम अंक धर, करो एम सब कोय ॥६९॥
ऊपर रो दक्खण अखर, होठा मै कर हाण ।
ऊपर लारी ठाम अठ, एक ठाम इम आण ॥७०॥
ओ हेठळथी काढ अब, डावा थी गुण देय ।
ऊपर अंक घटाय अब, वळे सेस विनिधेय ॥७१॥
बाम अंक गुण जे वळे, काढ ऊपलो अंक ।
इण कमथी व्है अंत में, सो उद्दिष्ट निसंक ॥७२॥

वरण गणवद्ध नष्ट सूत्रम्

ऊपर सब गणरै अवस, धर गण संख्या धोर ।
क्यव पूछयोड़ा अंक मै, त्रवो रीत इम वीर ॥७३॥
पहली संख्यारो प्रगट, देर भाग फिर देख ।
सेस जितो गण सांच वो, लबध मांहि इक लेख ॥७४॥

आगळ वाळा अंकरो, वळे भाग इम बोल।
एण रीत थी अंत लों, ताकव कीजै तोल ॥७५॥
धरै अंतरो गण दुरस, सेस रहे नँहँ साह।
एण रीत सूँ नसट अब, निसचै कर कवि नाह ॥७६॥

अथ वर्ण वृत्तानि

छंद विद्याधर—SSSSSSSSSSSS
विद्याधारा बोलो छंदा दीर्घा बारा ॥७७॥

भुजंगप्रयात—ISS०ISSISS०ISS
पढै च्यार यं जो भुजंगी प्रयातम् ॥७८॥

लक्ष्मीधर—SIS०SIS०SIS०SIS०
छंद लच्छीधरं जच्छ च्यारूं करं ॥७९॥

तोटक—IIS०IIS०IIS०IIS०
सगणं चवु तोटक छंद सुणूं ॥८०॥

सारंग—SSI०SSI०SSI०SSI०
सारंग नामा सुणूँ चामरं च्यार ॥८१॥

मुक्तादाम—ISI०ISI०ISI०ISI०
दियै जगणा चवु मोतिय दाम ॥८२॥

मोदक—०SII०SII०SII०SII०
मोदक नूपुर च्यार सुणूँ अब ॥८३॥

तरल नयनि—III०III०III०III०
तरल नयनि चव नगण भणित तत ॥८४॥

चामर—SIS०ISISIS SISIS
दास्वणू, र, जा, र, जा, र, नाम छंद चामरं ॥८५॥

नाराच—ISIoSISoISIoSISoISIoSo

नराच छंद मैं जरा जरा जगू निभावणां ॥८६॥

चर्चरी—SISoIISoISIoSIoSIIoSISo

लावणां र स जा ज भा र सु छंद चर्चरि लेखजे ॥८७॥

गीतिका—IISoISIoISIoSIIoSISoIISoIoS स, ज,

जा, भ, रा, स, ल, गा, जठै सुहि गीतिका पहिचाणणी ॥८८॥

दुर्मिला—IISoIISoIISoIISoIISoIISoIISoIIS

चवुवीस २४ स, अंक, वसू, सगणं, जिंहि,

नामक, दुर्मिलिका चवणूँ ॥८९॥

तोमर—IISoISIoISIo स ज जा सु तोमर सोहि ॥९०॥

दोधक—दोधक भा भ भ दो गुरु दाखो ॥९१॥

प्रमाणिका—प्रमाणिका जरा लगू ॥९२॥

इति वर्ण वृत्तानि

मात्रा वृत्तानि

पद्धरी—चोबार चऊकळ गण बिचार, इण मांहिं जगण अंते उचार।

सोळाकळ सारी इम सुणात, जो छंद पद्धरी नाम जात ॥९३॥

पादा कुलक—अच्छर गुरु लघु नेम न आणूँ,

जिण माहे कळ सोळह जाणूँ।

पादाकुलक तथा चोपाई, सुणूँ नाम पिंगल मत पाई ॥९४॥

रोला—रोला छंद सु नाम नागपति पिंगळ राख्यो।

तुक तुक माहे चतुर कळा चवु विंसति भाख्यो ॥

हिक दस पर बिस्राम सरव जण चिंता हरणूँ।

भणूँ सदा इम सकळ बिमळ कवि कंठाभरणूँ ॥९५॥

मात्रा गण वद्धसम छन्दः

उद्धार—दो णगण लघु इक दाख, इम दो ण फेरूं आख ।
तव अंत गुरु लघु तास, जप नाम उद्धुर जास ॥९६॥

वेताळ—वेताल कळ छव्वीसरो धुर कळा इहिं क्रम धार ।
धरि णगण दो पुनि एक लघु थिर दोय णगण सुधार ॥
इक ढगण करि दो णगण ढगण हू णगण दो फिर आण ।
जिण अंत गुरु लघु च्यार पद सम नाग मत सुहि जाण ॥९७॥

हरिगीत—हरिगीत चवुदह दूण कळ भण राख क्रम इण राह सूं ।
चव दोय दोय कळा लघू इक द्वि कळ लघु धरि चाह सूँ ॥
चउ दोय दोय रु दोय लघु इक दोय दोय कळा चवै ।
गुरु लघुरु गुरु इम अंत नियमित चरणचो जगसै गवै ९८

त्रिभंगी—कळ वत्तिस आणू तिण मैं ठाणूं दस पर जाणूं विरति कहो ।
लखि अठ पर दूजै पनि अठ तीजै खटकळ दीजै सुखद लहो ॥
दो दो कळ थावै मेळ न पावै गुरु करि लावै अंत द्वयं ।
इम छंद त्रिभंगी जमक अभंगी राजभुजंगी कहत अयं ॥९९॥

काव्य—करि खट दो दो एक दोय इक दो दो कीजै ।
लेख च्यार दो कळा विरति ग्यारह पर लीजै ॥
सब कल चोइस २४ आण चरण च्यारूंसम आणूँ ।
जिको छंद भण काव्यनरा मत निहचे जाणू ॥१००॥

उल्लाल—उल्लाल छंद वसु दोय २८ कल बिरति पंच दस १५ ऊपरा ।
धर दोय दोय इक तीन दुव दोय एक दुव धूपरा ॥
कल तेरह दोहा सम सदा खट दो दो इक दोय कर ।
ओ नियम छोड़ पिंगल कहै आखर पण एक न उच्चर ॥१०१॥

मात्रार्द्ध सम छंदांसि

दोहा—दुतिय खंड में दाखियो, लच्छण दोहा लेख।
जिको अरध सम जाणणू, रीत यहै अवरेख ॥१०२॥
उप दोहा—लच्छण दोहा रो लिख्यो, अंतर अतरो आण।
गुरु लघु नियमित नहँ गिणै, जो उप दोहा जाण ॥१०३॥
चूडाल दोहा—आधा दोहा ऊपरा, पुणै कळा इम पाँच नागपत।
कला तीन लघु दोय करि, सो दोहा चूडाल सराहत ॥१०४॥

मात्रा गणबद्ध विषम छंदांसि

कुंडलिया—कुंडलिया इण विध कहो, पहली दोहा पात।
रोळा रा च्यारूँ चरण, दोहा अग्ग दिखात ॥१०५॥
दोहा अग्ग दिखात जिकण मैं सु ललित जमकं।
अष्ट पदी इणनूँ हि गिणै कबि कोसळ गमकं ॥
सोहि सदा सुखकार सुणूँ पंडित मंडळिया।
कुंडलि नायक भणै बिबुध करणैं कुंडळिया ॥१०६॥
गाथा—दो दो कळ चउ दो दो चउ दो दो एक दोय इक आणूँ।
दो दो नियमित गुरु इक, पूर्वार्द्ध मांहि कळा तीसू दे ॥१०७॥
अर दो दो चउ दो दो चउ, दो दो एक च्यार नियमित गो।
उत्तर दळ सत्ताइस, कुल सत्तावन कळा गाहा ॥१०८॥
छप्पय—काव्य छंद सारो कहर, अंत उलाळो आध।
छप्पय नामक छंद जो, गिण प्रस्तार अगाध ॥१०९॥
कोइ कोइ भाखा कबि करै, रोला पर उल्लाल।
तिणनूँ पण छप्पय तवै, चंडालिनि आ चाल ॥११०॥
अमृतध्वनि—दोहा आगैं काव्य दै, पुनि पुनि कर अनुप्रास।
अमरत धुनि तिणनूँ अवस, करो नाम परकास ॥१११॥

अथ गीतानि

छोटो साणोर बेलियो

च्यार नगण ऽ०ऽ०ऽ०ऽ० दो डगण ऽऽऽऽ० चव,
एक नगण ऽ० फिर आण ।
अट्ठारा कळ मैं इसो, वोदग नेम बखाण ॥११२॥
तीन डगण ऽऽ०ऽऽ०ऽऽ० गुरु लघु नियत, दूजी तुक मैं दाख ।
कळ पनरह इण विधि प्रकट, इसो नेम कवि आख ॥११३॥
डगण ऽऽ० आठ कळ ऽऽऽऽ० दो नगण
ऽ०ऽ०सोळह कळ मैं सोय ।
तीजी तुकरो तोल इम, कहै सुकब सब कोय ॥ ११४ ॥
दूजी सम चोथी दुरस, गिणूँ बेलियो गीत ।
सोळह पनरह सांपजै, पूरण लगकर प्रीत ॥११५॥

छोटो साणोर सोहणूँ

पहली तीजी पहल सम, दूजी इण बिध दाख ।
टगण ऽऽऽ० णगण ऽ० इक ढगण ऽ० तव,
अरल ।० ग ऽ० नियमित आख ॥११६॥
चोथी दूजी सम चवो, गीत सोहणूँ गोय ।
सोळह चवदह कळ सकळ, पूरण लग इम पोय ॥११७॥

छोटो साणोर खुडद

गीत खुड्द साणोर गिण, रख ऊपर जिम रीत ।
भेद इतो सब कळ प्रभण, सुण तेरह कळ मीत ॥११८॥

टगण ऽऽऽ० णगण ऽ० अर इक ढगण ।ऽ०।।०,
दो लघु अंतिम दाख ।
सोळह तेरह कळ सरस, रिधू थेट लग राख ।।११९।।

छोटो साणोर गीत जांगड़ो

गीत जांगड़ा मैं गहर, सम तुक इम सुभियाण ।
डगण ऽऽ० णगण दो ऽ०ऽ० दुव गुरू ऽऽ०,
इम बारह कळ आण ।।१२०।।

तवो पहल जिम पहल तुक, सोळह बारह सेस ।
पूरा लग पुण ज्यो प्रकट, एण नेम थी एस ।।१२१।।

छोटो साणोर

चविया ऊपर भेद चव, ज्यांरा दोहा जोर ।
आवै आपसमै अवस, सो छोटो साणोर ।।१२२।।

वड़ो साणोर

एक ढगण ।ऽ० चव ठगण ।ऽऽ०।ऽऽ।ऽऽ।ऽऽ० अख,
तब इम कळ तेवीस ।
तीन ठगण ।ऽऽ०।ऽऽ०।ऽऽ० गुरु ऽ० लघु ।० नियत,
दूजी तुक दे बीस ।।१२३।।

च्यार ठगण ।ऽऽ० तीजी चवो, बीस कला इम बेस ।
चोथी दूजी सम चवो, वड़ साणोर बिसेस ।।१२४।।

बीस २० अठारा १८ कळ वले, संपूरण लग सोय ।
सुकवि करो इणबिध सदा, बड़ साणोर बिजोय ।।१२५।।

परहास बड़ा साणोर रो दूजो भेद

पहली तीजो तुक प्रभण, ऊपर कथ जिम आण ।
सम दो तुक माहे सरस, जुदो नेम ओ जाण ॥१२६॥

दोय ठगण ।SS०।SS० ढगण ।S० रु दु गुर SS०,
सतरह १७ कल इम सोय ।
रिघू बड़ा साणोर रो, भेद प्रहास भणोय ॥ १२७ ॥

गीत त्रीकूट बद्ध

दोय S० दोय S० लघु ।० दोय S० दुव S०,
दोय S० लघू ।० गुरु S० दाख ।
इण सम चवदह १४ आगली,
इम पहली तुक आख ॥१२९॥

बीजी तुक छब्बीस री, अठै नेम भण एम ।
लखो णगण दुव S०S० इक लघू,
तीन णगण S०S०S० लघु तेम ॥१२९॥

णगण तीन S०S०S० लघु ।० दो णगण S०S०,
गुरु S० लघु ।० नियमित गोय ।
पहली सम तीजो पढो, सुण चोथी अब सोय ॥१३०॥

सत ऊपर चवदह ११४ सरस, लघु नियमित इम लाय ।
णगण S० लघू दो णगण S०S० ग S० ल ।०,
दस कल मुकुट दिखाय ॥१३१॥

सत ऊपर चोबीस ११४ कण, इती बड़ी तुक एक ।
त्रिकुट बद्ध इणनू तवो, बोदग करे बिबेक ॥१३२॥

वर्ण गणबद्ध विषम वृत्तस्तत्र सुपंखरा गीत

पहली तुक मैं छगण पढ, इण मैं नेम सु आए ।
पहला मै म SSS० य ।SS० र S।S प्रभण,
जँह दूजो इम जाण ॥१३३॥

म SSS० य ।SS० र S।S० त SS।० जगण।S। सु मानणां,
गुण ३ चउ ४ सर ५ इम गाय ।
नगण बिनां गण सब नरख, छठो दुवा जिम छाय ॥१३४॥

दूजी चोथी तुक दुरस, बरण चउदह १४ बोल ।
पहली गण म SSS० य ।SS० र S।S त SS। परठ,
तिय ३ दुव २ नगण न तोल ॥१३५॥

चौथे गण म SSS० य ।SS० र S।S० त SS।० चवो,
आगैं गुरु S० लघु ।० आख ।
तुक तीजी सोलह १६ तणी, रिघू नेम ओ राख ॥१३६॥

मSSS० य ।SS० र S।S० त पहलो दुज ।।।० बिमुख,
दूजा गणSSS० SSS०।S०।।S०SS।०।S।०S।।० मैं देख ।
तीजै मSSS० य ।SS० र S।S० त SS।० जगण।S।० तव,
पंचम SSS०।SS०S।S०SS।०।S।० इण सम पेख ॥१३७॥

पहला सम चोथो परठ, एक बरण अग आण ।
सोलह १६ चउदह १४ फिर सदा, सुपंखरो सुभियाण ॥१३८॥

मनोहर

एकतीस ३१ आखर अवस, अंत गुरू सह आण ।
मुण दंडकरा भेद मँहँ, जिको मनोहर जाण ॥१३९॥

घनाक्षरी

सब अच्छर बत्तीस ३२ सुण, लघू अंत सह लेख ।
निहचै भणियो नागपत, दुरस घनाच्छरि देख ॥१४०॥

उदाहरण मनोहर कवित्त को

मोहतम प्रबल निकंदन प्रकास रूप ॥१४१॥

उदाहरण घनाक्षरी को

सेस अमरेस ओ गनेस पार पावैं नांहिं ॥१४२॥

सारंग (इकतीस अर्थ)

हंस १ सरप २ वीणा ३ हरण ४, मोती ५ मोर ६ मुणाय ।
काच ७ नाद ८ आकास ९ सुक १०,
कोयल ११ कमल १२ कुहाय ॥१४३॥
वज्र १३ सँख १४ नारेल १५ बक,
केसर १६ मेह १७ कुहात ।
सीह १८ चंद १९ तरवार २० सुण,
सूरज २१ दीप २२ सुहात ॥१४४॥
परबत २३ हाती २४ खँग २५ पढ़,
चन्नण २६ अगन २७ चवंत ।
बाबहियो २८ पाणी २९ बळे,
गरड़ ३० गुजाब ३१ गिणंत ॥१४५॥

इति मिश्रण कवि मुरारिदान विरचित डिंगलकोशे
चतुर्थ खण्डे छंदादि लच्छणं समाप्तम् ।

बारहट बालाबख्श राजपूत-चारण-पुस्तकमाला

जयपुर के श्रीयुत बारहट बालाबख्शजी के दान से यह पुस्तकमाला काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित की जा रही है। इसमें राजपूताने के चारणों और भाटों आदि के उत्तमोत्तम प्राचीन ऐतिहासिक काव्य प्रकाशित किए जाते हैं। इस माला में अब तक नीचे लिखे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं—

१—बाँकीदास ग्रंथावली

पहला भाग

संपादक—श्रीयुत पंडित रामकर्ण

कविराज बाँकीदास डिंगल भाषा के महाकवि थे। उन्होंने उस भाषा में छोटे छोटे २४ ग्रंथ लिखे थे। उन्हींमें से सूर-छतीसी, सीह-छतीसी, वीर-विनोद, धवल पचीसी, दातार-बावनी, नीति-मंजरी और सुपह-छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में बाँकीदास जी की जीवनी और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पाद-टिप्पणियों में दिए गए हैं। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥) आठ आने।

२—बीसलदेव रासो

संपादक—श्रीयुत बाबू सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०

यह ग्रंथ सं० १६६९ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिंदी है। इसमें बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के

जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का वहुत उत्कृष्ट वर्णन है। कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। १७५ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ॥) आठ आना।

३—शिखर वंशोत्पत्ति

संपादक—पुरोहित हरिनारायण शर्मा, वी० ए०

कविवर गोपालजी रचित यह सीकर राज्य का छंदोवद्ध इतिहास है। इतिहास प्रेमियों के लिये यह एक अनूठी चीज है और संग्रहणीय है। मू० ॥।) वारह आने।

४—वाँकीदास ग्रंथावली

दूसरा भाग

संपादक—श्रीयुत रामनारायण दूगड़

जिन्होंने इसका प्रथम भाग देखा है उनको इस ग्रंथ की उपयोगिता के संवंध में वतलाने की आवश्यकता नहीं है। इसमें महाकवि वाँकीदास जी के अन्य उत्तमोत्तम काव्यों का संग्रह है। मूल्य ॥।) वारह आने।

५—व्रजनिधि ग्रंथावली

संपादक—पुरोहित हरिनारायण शर्मा, वी० ए०

इसमें जयपुराधीश स्वर्गीय श्री सवाई प्रतापसिंह जी देव 'व्रजनिधि' रचित २३ काव्य-ग्रंथ संग्रहीत हैं। राधाकृष्ण के प्रेम-विषयक एक से एक वढ़कर उच्चकोटि की कविताएँ भरी पड़ी हैं। आरंभ में विद्वान संपादक लिखित लंवी प्रस्तावना

और 'व्रजनिधि' जी का जीवन चरित्र भी है। पृष्ठ-संख्या लगभग पौने पाँच सौ, मूल्य केवल ३) तीन रुपए।

६—ढोला मारूरा दूहा

संपादक—श्रीरामसिंह एम० ए०, श्री सूर्यकरण पारीक एम० ए०, श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए०

यह काव्य कोई ५०० वर्ष पहले राजस्थानी भाषा में लिखा गया था। राजपूताने में घर घर मे इसका आदर है। किंतु ऐसा अच्छा ग्रंथ अब तक मुद्रित न होने के कारण अन्य प्रांत वाले हिंदी भाषियों के लिये तो सुलभ था ही नहीं, राजपूताने वालों को भी वास्तविक रूप मे अप्राप्य ही था। इस कारण अन्य प्रांतो मे इसका प्रचार नहीं हो पाया। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ दुर्लभ स्थानो से प्राप्त करके तीन विद्वानों ने परिश्रम पूर्वक इसको संपादित करके तथा पांडित्यपूर्ण बृहत् भूमिका, हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित मूल दूहे, अन्य प्रतियों के पाठ, शब्दार्थ, शब्द-कोष, और मूल दूहो की प्रतीकानुक्रमणिका देकर प्रस्तुत किया है। इस प्रेमगाथा काव्य में नरवर के राजकुमार ढोला और उसकी प्रियतमा पूगल की राजकुमारी मारूवणी तथा मालवे की राजकन्या मालवणी के प्रेम की अनोखी कहानी बड़े सुंदर रूप में कही गई है। इसकी शब्दयोजना बहुत ही उत्कृष्ट है, कविता में रसों का अच्छा परिपाक हुआ है और वर्णनशैली आलंकारिक है। इसके कथोपकथन इतने सजीव और मर्मस्पर्शी हैं कि पढ़नेवाला आत्मविस्मृत हुए बिना नहीं रहता।

पृष्ठ संख्या ९०० से ऊपर; प्राचीन राजपूत-कलम के तिरंगे तीन चित्र, सुंदर जिल्द, मूल्य ४) चार रुपए मात्र।

७—बाँकीदास ग्रंथावली

तीसरा भाग

संपादक—बारहट कविया मुरारिदान अयाचक
बा० महताबचंदजी खारैड "विशारद"

इस भाग में बांकीदासजी के नौ ग्रंथ और एक संग्रह प्रकाशित हुए हैं। प्रारंभ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए० की ६६ पृष्ठों की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि भी दिए गए हैं। पृ० सं० २३३ है, सजिल्द, मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

८—रघुनाथरूपक गीताँरो

संपादक—श्री महताबचंद खारैड, विशारद

डिंगल भाषा के महाकवि मंछ (मनसाराम) का यह प्रसिद्ध ग्रंथ सं० १८६३ वि० में लिखा गया था। इसमें श्री रामचंद्र जी की कथा का बड़ा कवित्वपूर्ण वर्णन है और साथ ही यह डिंगल भाषा का अत्यंत प्रामाणिक रीति ग्रंथ है। खारैडजी ने डिंगल छंदों का हिंदी में शब्दार्थ और भावार्थ देकर इस ग्रंथ का बड़ी योग्यता के साथ संपादन किया है। आरंभ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, विद्याभूषण की लिखी हुई महत्वपूर्ण भूमिका है। पृ० सं० ३६०; सजिल्द; मू० २) दो रुपए।